a Samaj Foundation Chenna

भास-कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में वैदिक-संस्कृति

डॉ० वीना विश्नोई शर्मा

main. Gurukul Kangri Coll

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास-कालिदास
एवं
भवभूति के नाटकों में वैदिक-संस्कृति

डॉ० वीना विश्नोई शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८४०
३५६:६

137826

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८४०
३५६:६

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आगत संख्या........

वर्ग संख्या........

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास-कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में वैदिक-संस्कृति

वीना विश्नोई शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास-कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में वैदिक-संस्कृति

137826

137826

डॉ० वीना विश्नोई शर्मा

प्रवक्ता– संस्कृत विभाग
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय हरिद्वार
(गु० का० विश्वविद्यालय हरिद्वार)

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

अम्बिका पुस्तक सदन

हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक

अम्बिका पुस्तक सदन

शंकर आश्रम, ज्वालापुर

हरिद्वार, उत्तराञ्चल

८४०
३५६:६

अन्य प्राप्तिस्थान

परिमल पब्लिकेशन्स

27/28 शक्ति नगर

दिल्ली 110007

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य 250.00

प्रथम संस्करण २००४

मुद्रक

हिमांशु लेजर सिस्टम

४६, संस्कृत नगर, सैक्टर 1४

रोहिणी, दिल्ली - 110085

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

जहां वैदिक समाज एक आदर्श समाज था, वहीं आधुनिक-समाज में बदलते परिवेश व सामाजिक मूल्यों के कारण अनेकों विसंगतियां उत्पन्न हुई हैं, जो समाज को विघटन की ओर ले जा रही हैं। इन सबका मूल कारण है, वैदिक-संस्कृति के प्रति मानव की अनभिज्ञता व अव्यावहारिकता। यदि मनुष्य वेदों में वर्णित धर्म-कर्म व कर्तव्यों का अनुसरण करे तो उसका समग्र जीवन कल्याणकारी व सुखी बन सके। इस निमित्त सत्यवेत्ता ऋषियों ने जीवन-वृत्तियां निश्चित करने हेतु मानव-जीवन को चार आश्रमों व चार वर्णों में विभक्त कर चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया है। संस्कृत-साहित्य में भास, कालिदास व भवभूति आदि कवियों का स्थान नितान्त महनीय एवं उदात्त है। इन कवियों ने अपने नाटकों में स्थान-स्थान पर वैदिक-संस्कृति को मानव-जीवन से संयुक्त किया है। वेद-शास्त्रादि ग्रन्थों में वर्णित संस्कृति उक्त कवियों की नाट्य-कृतियों में यथास्थान प्रतिबिम्बित हुई है। यह कहा जाता है कि वैदिक-संस्कृति में मानव जीवन की सच्ची उन्नति निहित है। अतः इस आधुनिक युग में वैदिक-संस्कृति को शिक्षित समाज के समक्ष रखने के लिए मेरे अन्तर्मन ने प्रेरित किया तथा परम पूजनीय गुरु श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी ने मुझे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया, जिनकी कृपा से मैंने यह कार्य करने का दुस्साहस किया।

गुरु ही मनुष्य का सच्चा मार्गदर्शक होता है। प्रत्येक कार्य की पूर्णता मार्गदर्शक के अभाव में असम्भव है, इसलिए मैं सर्वप्रथम अपने गुरु व निर्देशक श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी के चरणों में अपना सादर प्रणाम अर्पित करती हूं क्योंकि गुरु ही साक्षात् ब्रह्म होने से सदा पूजनीय है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।

गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

तत्पश्चात् गुरु पत्नी श्रीमती पुष्पलता बिश्नोई के चरणों में अपनी श्रद्धा अर्पित करती हूं, जिन्होंने सदैव मुझे पुत्री तुल्य समझ कर्तव्यबोध कराया एवं आशीर्वाद प्रदान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे परम पूजनीय माता श्रीमती डॉ. कुसुम बिश्नोई व पिता श्री कृष्ण गोपाल बिश्नोई भी, जिन्होंने सदैव पुत्री के उज्ज्वल भविष्य की कामना की, श्रद्धा के अधिकारी हैं, क्योंकि उनकी शुभकामनाएं ही मेरे कार्य की पूर्ति में सम्बल बनीं। मैं उनके सौहार्द्रपूर्ण सहयोग के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं।

मैं अपने प्रेरणा-स्रोत, पग-पग पर उत्साहित करने व सहयोग देने वाले पति डॉ॰ मनमोहन जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूं, जिन्होंने मेरे इस कार्य को पूर्ण करने में अपार सहयोग प्रदान किया। अत: मैं अपनी सम्पूर्ण कार्यकृति उन्हीं को समर्पित करती हूं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के समस्त गुरुजनों व संस्कृत-विभाग के गुरुजनों के पूर्ण सहयोग के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूं।

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय के समस्त अधिकारी वर्ग व कर्मचारीगणों ने इस कार्य में जो अपूर्व योगदान दिया उसके लिए वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है इस रूप में मेरी यह कृति धर्मनिष्ठ आदर्शवादी वैदिक-संस्कृति में आस्थावान शिक्षाविदों को निश्चय ही आह्लादकारी होगी।

—वीना विश्नोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयुक्त ग्रन्थीय-संक्षेप

क्र०सं०	संक्षेप	ग्रन्थ
1.	अवि०	अविमारक
2.	अभि०ना०	अभिषेक-नाटक
3.	अभि०शा०	अभिज्ञान-शाकुन्तलम्
4.	अथर्व०सं०	अथर्ववेद-संहिता
5.	अभि०भा०	अभिनव-भारती
6.	आपस्त०-धर्मसू०	आपस्तम्ब-धर्मसूत्र
7.	अरि०थ्यो० आ० पो०एं०फा०आर्ट०	अरिस्टोटिल थ्योरी आफ पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट
8.	उरु०	उरुभङ्गम्
9.	उ०रा०चरि०	उत्तररामचरितम्
10.	ऋ०सं०	ऋग्वेद-संहिता
11.	कर्णभा०	कर्णभार
12.	का० प्रदी०	काव्यप्रदीप
13.	का०सू०	कामसूत्र
14.	गोभि०स्मृ०	गोभिल-स्मृति
15.	ग्रिफि०	ग्रिफिथ
16.	चारु०	चारुदत्त
17.	चि०सू०	चित्रसूत्र
18.	छान्दो०उप०	छान्दोग्य उपनिषद
19.	दू० वा०	दूतवाक्यम्
20.	दू०घटो०	दूतघटोत्कचम्
21.	द.रू०	दशरूपक
22.	ना०स्म०	नारद-स्मृति
23.	ना०शा०	नाट्यशास्त्र
24.	पंच०	पंचतंत्र
25.	प्रति०ना०	प्रतिमा-नाटकम्
26.	प्रति०यो०	प्रतिज्ञा-योगन्धरायण
27.	बो०धर्मसू०	बोधायन-धर्मसूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28.	बा॰चरि॰	बालचरितम्
29.	ब्रह्मवे॰-पु॰	ब्रह्मवेवर्तपुराण
30.	भग॰गी॰	भगवद्गीता
31.	मध्य॰व्या॰	मध्यमव्यायोग
32.	मालविका॰	मालविकाग्निमित्र
33.	माल॰माध॰	मालती-माधवम्
34.	महा॰चरि॰	महावीर-चरितम्
35.	मनुस्मृ॰	मनुस्मृति
36.	मुण्ड॰उप॰	मुण्डकोपनिषद
37.	महा॰	महाभारत
38.	यजु॰-सं॰	यजुर्वेद-संहिता
39.	याज्ञ॰स्मृ॰	याज्ञवल्क्य-स्मृति
40.	व्या॰-स्मृ॰	व्यास-स्मृति
41.	विक्रमोवं॰	विक्रमोर्वशीयम्
42.	शारदा॰	शारदातनय
43.	शत॰ब्रा॰	शतपथब्राह्मण
44.	सोसा॰	सोसायटी
45.	संस्कृ॰सा॰का इति॰	संस्कृत साहित्य का इतिहास
46.	सा॰दर्प॰	साहित्य दर्पण
47.	साम॰सं॰	सामवेद-संहिता
48.	सुश्रु॰ग्र॰	सुश्रुत-ग्रन्थ
49.	स्वप्न॰	स्वप्नवासवदत्तम्
50.	हि॰धर्म	हिन्दू धर्मकोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	पृष्ठांक
प्रथम अध्याय :	**1-50**
नाटकों का स्वरूप एवं उद्भव का सामान्य परिचय	**1**
नाटक का उद्भव–धार्मिक भावना, मृतकपूजावाद या वीरपूजावाद; पुत्तलिका नृत्यवाद, छायावाद, मे-पोलवाद; यूनानी नाट्यकलावाद, लोकप्रिय-स्वांगवाद;	
भारतीय मत-सिद्धान्तवाद–	**4**
परम्परा का द्युलोकवाद, संवादसूक्तवाद व वैद्धिकानुष्ठानवाद, महाभारत एवं रामायण में नाटकीय संकेत, कृष्णोपासनावाद, बौद्ध जैन एवं वात्स्यायन के कामसूत्र में नाटकीय संकेत, निष्कर्ष	
कालिदास के नाटकों का सामान्य परिचय	**8**
विक्रमोर्वशीयम् की संक्षिप्त कथा, मालविकाग्निमित्र का कथानक, अभिज्ञान शाकुन्तलम्	
भवभूति के नाटकों का सामान्य परिचय	**17**
मालतीमाधव, महावीरचरित, उत्तररामचरित	
भास के नाटकों का सामान्य परिचय	**26**
दूतवाक्यम, कर्णभारम्, दूतघटोत्कच, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र, उरुभङ्ग, अभिषेक नाटक, बालचरित, अविमारक, प्रतिमानाटक, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता, चारुदत्त	
द्वितीय अध्याय :	**51-79**
वर्ण-व्यवस्था	
वर्ण व्यवस्था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णेत्तर जातियां	
तृतीय अध्याय :	**80-95**
आश्रम-व्यवस्था	
आश्रमव्यवस्था–ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय : **96-115**

यज्ञ-परम्परा

1. नित्य यज्ञ-(क) ब्रह्मयज्ञ, (ख) देवयज्ञ, (ग) भूतयज्ञ, (घ) अतिथियज्ञ, (ङ) पितृयज्ञ

2. नैमित्तिक यज्ञ-(क) संस्कारात्मक यज्ञ (ख) अश्वमेधादि यज्ञ

पंचम अध्याय : **116-135**

धार्मिक-कर्मकाण्ड

धार्मिककर्मकाण्ड-1. तप, 2. दान, 3. पुरश्चरण, 4. व्रत, 5. प्रायश्चित, 6. अन्य कर्मकाण्ड

षष्ठ अध्याय : **136-141**

सामाजिक न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

सप्तम अध्याय : **142-192**

सामाजिक एवं पारिवारिक कर्तव्य

1. राजा का कर्तव्य 2. प्रजा का कर्तव्य 3. माता का कर्तव्य 4. पिता का कर्तव्य 5. भ्राता का कर्तव्य 6. पुत्र का कर्तव्य 7. पति का कर्तव्य 8. पत्नी का कर्तव्य 9. मित्र का कर्तव्य 10. गुरु का कर्तव्य

अष्टम अध्याय : **193-205**

उपदेश-परम्परा

1. पिता का उपदेश 2. माता का उपदेश 3. मित्र का उपदेश 4. गुरु का उपदेश

नवम अध्याय : उपसंहार **206-207**

संदर्भ-ग्रन्थसूची **208-210**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

नाटकों का स्वरूप एवं उद्‌भव का सामान्य-परिचय
कालिदास के नाटकों का सामान्य परिचय
भवभूति के नाटकों का सामान्य परिचय
भास के नाटकों का सामान्य परिचय

नाटकों का स्वरूप एवं उद्‌भव का सामान्य-परिचय

कलाकारों की मानसिक व हृदयोद्‌गारों की अभिव्यक्ति ही कला है। अभिव्यक्तियों के मूर्त आधारों पर कलाकृतियों को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है–प्रथम उपयोगी कला व द्वितीय ललित कला। ललित कला भी वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला एवं काव्यकला–पांच अंगों में विभक्त होती है।

काव्यकला के दो प्रमुख भेद माने गये हैं–गद्यकाव्य एवं पद्यकाव्य। नाटक दोनों ही के अन्तर्गत आता है। नाटक ही काव्य का ऐसा अंग है जो श्रवणेन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय दोनों ही के द्वारा मन को आनन्दित करने की क्षमता रखता है। इस प्रकार तृप्तिविधान के आधार पर काव्य के श्रव्य एवं दृश्य पुनः दो भेद हो जाते हैं। नाटक को हम नाट्यकला भी कहते हैं।

क्षेत्र के व्यापक आधार पर काव्यों में नाट्यकला को सर्वाधिक रम्य माना गया है–'काव्येषु नाटकम् श्रेष्ठम्'। संस्कृत में दृश्यकाव्य को रूपक माना जाता है। दृश्यकाव्य की सौन्दर्यानुभूति में चक्षुओं की ही प्रमुखता होती है और इसका प्रभाव भी हृदय पर साक्षात् रूप से पड़ता है। 'सद्यः पर निर्वृत्ति' का झटिति अनुभव दृश्यकाव्य के माध्यम से ही हो सकता है। विभिन्न भूमिकाओं के आरोप (अभिनय) के कारण ही इसका नाम 'रूपक' भी है–'तद्‌रुपारोपात्तुरुपकम्' इसके दस भेद होते हैं।[1] इन रूपकों के साथ 18 उपरूयकों का भी वर्णन मिलता है।[2] पाश्चात्य जगत् में नाटक को

1. नाटकमथ प्रकरणं, भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईडामृगाङ्क वीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।। सा० द० 6/3
2. नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकरण का रूप अरस्तु ने ही नहीं वरन् अरस्तु से पूर्व ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने भी इसी अनुकरण के आधार पर काव्य का तिरस्कार किया था व सत्य से दूर मान उसकी अवहेलना की थी।[3] बुचर के अनुसार अरस्तु के अनुकरण शब्द का अर्थ है–"अवस्थानुकृतिनाट्यम्, रूपकं तत्समारोपात्"–अर्थात् सादृश्य विधान का पुनः उत्पादन, सांकेतिक उल्लेख नहीं। एटकिन्स ने प्रायः पुनः सृजन का ही दूसरा नाम अनुकरण माना है।[4] स्टोक जोन्स की दृष्टि में अनुकरण से अभिप्राय है नाटक में जीवन का वस्तुपरक अंकन, जिसे हम जीवन का कल्पनात्मक पुनः निर्माण कह सकते हैं।[5]

भारतीय काव्यशास्त्र के लिए अनुकरण शब्द नया नहीं है अपितु आचार्य भरत के नाटक को लोकस्वभाव का अनुकरण[6] या लोकवृत्त का अनुकरण[7] माना है। स्वभाव व वृत्त शब्द के अन्तर्गत यहां लोक-जीवन के समस्त अन्तर्बाह्यरूपों का–वेशभूषा, कार्यव्यापार, वाणी, व्यवहार, भावादि सभी का समावेश है। भरत ने विस्तार से रंगमंच पर इसके अनुकरण का विधान किया है यथा वेशभूषा, क्रियाकलाप आदि बाह्यरूपों का ही नहीं वरन् नाना अनुभावों द्वारा स्थायी, संचारी आदि मानसिक विकारों के सूक्ष्म अभिनय का भी विधान है। किन्तु वास्तव में यहां अनुकरण अभिनय ही है जैसा भरत के अनुयायी धनञ्जय ने दशरूपक में स्पष्ट किया है।[8]

अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है। जहां काव्य में वर्णित धीरोदात्त या धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त प्रकृति के नायकों का आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक इन चार ढंग के अभिनयों के द्वारा अवस्थानुकरण

संलापकम् श्री गदितं शिल्पकञ्च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च।।
अष्टादश प्राहुरूपरूपकाणि मनीषिणः।
विना विशेषं सर्वेषाम् लक्ष्म नाटकवन्मतम्।। सा० द० 6/6

3. Art is imitation. -Aristotle.
4. Aristotle's theory of poetry and Fine Art, Page 118
5. Aristotle on the theory of poetry. Preface, Page 8
6. लोकस्वाभावानुकरणाच्च नाट्यस्य सत्त्वमीप्सितम्–ना० शा० (काव्यमाला पृ० 10)
7. लोकवृत्तानुकरणम् शास्त्रमेतन्मया कृतम्। –वही, पृ० 10
8. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। द०रू ० –अ० 1/6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है, वह नाट्य है।[1] यही नाट्यरूप रूपक है।[2] जिस प्रकार रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्रमा का आरोप किया जाता है वैसे ही नाट्य में नट पर रामादि पात्रों की अवस्था का आरोप किये जाने से नाटक रूपक है।[3] भरतसूत्र के व्याख्याता भट्टलोल्लट ने शृंगारादि रस के विभिन्न भावों के माध्यम से अनुकार्य रामादि का आभास नट में यथावत् आरोपित मान्ता है।[4] गोविन्द ठाकुर ने इस मत को थोड़ा संशोधित कर और स्पष्ट कर दिया।[5] अभिनव गुप्त ने भी अभिनय भारती में अनुकार्य शब्द का प्रयोग नटकर्म के लिए ही किया है।[6] इस प्रकार इन उद्धरणों में रामादि के लिए अनुकार्य, अभिनेता के लिए अनुकर्ता और अभिनय के लिए अनुकरण शब्द का प्रयोग किया है। विश्वनाथ ने इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि रामादि अनुकार्य की रति आदि का उद्बोध रस नहीं हो सकता।[7] अर्थात् काव्य को दिव्य प्रतिभाजन्य अलौकिक सिद्धि माना गया है, कला नहीं। काव्य विधा है—वरन् विधाओं में भी श्रेष्ठ किन्तु अभिनय कला उपविधा है।

"अत: अभिनेतृभ्य: क्वीन् एव बहुमन्यामहे, अभिनयेभ्य: काव्यमेवेति—भोज,श्रृंगार-प्रकाश।"

---

1. काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाट्यम्। द०रू ० पृ० 5
2. रूपकम् तत्समारोपात्– वही पृ० 4
3. नटे रामाद्यवस्थारोपेण ..... दर्शित:। वही पृ० 4
4. एतद्विवृण्वते, विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणं रत्यादिकोभावो जनित:। अनुभाव: कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभि: कार्यै: प्रतीति योग्य: कृत: व्यभिचारिभि: निर्वेदादिभि: सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसंधानात्... प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लट प्रभृतय।—का० प्र०
5. रामादिगतसीता विषयकरत्यादिरेव रस: सहृदयेन काव्योपात्तलिङ्गेरादावनुमीयते। ततस्तस्य कमनीयविभावाद्यभिनयप्रदर्शनऽनिपुणे रामाद्यनुकारिणि नटे सादृश्यज्ञानरपदोषादरोप: साक्षात्कारात्मको धर्म्यंशे लौकिक आरोप्यांशे त्वलौकिको रामोऽयं सीता विषयकर तिमानित्याकारकचमत्कृतिरिति हेतु:। —का० प्र०
6. नहि नटो रामसादृश्यं स्वात्मन: शोकं करोति, सर्वथैव तत्र तस्याभावात् भावेनाननुकारत्वात्। अभि०भा० पृ० 37
7. अनुकार्यस्य रत्यादेरुद्बोधो न रसो भवेत्। सा० पृ० 3/48

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य की इसी बहुमान्यता के कारण 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग काव्य के लिए नहीं अपितु कला अर्थात् अभिनय, नृत्त, चित्र आदि के लिए किया गया है।[8]

फलत: हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि काव्य और कला दोनों अलग-अलग तत्व हैं। इस दृष्टि से अरस्तु और भारतीय आचार्यों का मूल मन्तव्य तत्त्वत: भिन्न नहीं है वरन् लक्ष्य तक पहुंचने वाले मार्ग भिन्न हैं। अत: नाटक केवल बाह्य प्रकृति का ही नहीं अपितु मानव की अन्त:प्रकृति व मानसिक भावों की भी पूर्व अनुकृति करते हैं। किसी भी नाटक की सफलता ही, नाटककार द्वारा पात्रों की आभ्यन्तर प्रकृति को सुन्दर व मार्मिक रूप में अभिव्यक्त करने में ही है। दृश्यकाव्य के क्षेत्र में इसकी आत्मरूप में प्रतिष्ठा भरतमुनि के भी बहुत पहले नन्दिकेश्वर या अन्य कई आचार्यों द्वारा हो चुकी थी। इस प्रकार नाटक का एक मात्र लक्ष्य मानव तथा मानवेतर प्रकृति का चित्रण है।

नाटक का उद्भव-

नाटकों के उद्भव के विषय में विभिन्न भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने अपने बुद्धि-चातुर्य से विविध कल्पनाएं कीं। भारतीय मतों से पूर्व कुछ विदेशी विद्वानों की धारणाएं वर्णित हैं-

१. धार्मिक भावना, मृतकपूजावाद या वीरपूजावाद

डॉ० रिजवे के अनुसार सारे संसार में नाटकों की उत्पत्ति मृतात्माओं के प्रति प्रकट की हुई श्रद्धा से हुई।[9] इनकी मान्यतानुसार जिस प्रकार ग्रीक देश में नाटक का जन्म दिवंगत पुरुषों के प्रति किए गये सम्मान के परिणामस्वरूप हुआ, उसी प्रकार भारतवर्ष में भी नाटकों की उत्पत्ति वीरपूजा का परिणाम है। रामलीला और कृष्णलीलाएं भी वीर पूजा का ध्वंसावशेष हैं। परन्तु इस मत को बहुत से यूरोपियन विद्वान भी नहीं मानते हैं।

२. पुत्तलिका नृत्यवाद

जर्मन विद्वान पिशेल ने पुत्तलिका नृत्य से नाटक की उत्पत्ति मानी है। उनकी मान्यता का आधार "सूत्रधार" शब्द है। डोरी पकड़कर पुतली नचाने

---

8. यथा नृत्ते तथा चित्ते त्रैलोक्यानुकृतिः स्मृता। चि० सू०
9. स०सा०का० इति-बी०पी० सक्सेना, पृ० 91

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले को उन्होंने सूत्रधार सम्बोधित किया जबकि भारतीय नाट्यशास्त्र में "सूत्र" शब्द का एक विशिष्ट अर्थ है–

"नाट्योपकरणादीनि, सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यये, सूत्रधारो निगद्यते।।"

शारदातनय के अनुसार कथावस्तु नायक, रसादि का सूत्र पकड़ने वाला सूत्रधार है।[1] अत: सूत्रधार के कमजोर अर्थ पर यह मत निराधार है।

३. छायानाटकवाद

डॉ॰ पिशेल के एक दूसरे मत के अनुसार इसकी उत्पत्ति छाया-नाटक से हुई। डॉ॰ लूडर्स व डॉ॰ कोनो भी इस मत के समर्थक हैं। पहले प्राय: छाया के द्वारा बहुत सारे खेल दिखाने की प्रथा प्रचलित थी। लेकिन डॉ॰ कीथ ने इसका विरोध किया व नाटकों की उत्पत्ति छाया खेल दिखाने वाली प्रथा से पूर्व ही स्वीकार की। अत: इस वाद का भी कोई औचित्य सिद्ध नहो सका।

४. मे-पोलवाद

डॉ॰ कीथ ने ऋतु-परिवर्तन के समय होने वाले उत्सवों, नृत्यगान से नाटकों की उत्पत्ति मानी है। पाश्चात्य विद्वान इसे मे-पोलवाद कहते हैं। पाश्चात्य देशों में मई मास में आनन्दाविभोर होकर स्त्री-पुरुषों द्वारा सामूहिक नृत्य किया जाता है जो भारतवर्ष के इन्द्रध्वज उत्सव के समान होता है। इससे सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति वसन्त आगमन पर मनाये जाने वाले त्यौहारों से हुई होगी क्योंकि सुखद वसन्तागमन पर सभी सभ्य जातियां उत्सव मनाती हैं।[2] परन्तु मे-पोल उत्सव वसन्त में व इन्द्रोत्सव भारत में वसन्त की समाप्ति पर होता है अत: यह मत भी आधार रहित रखा।

५. यूनानी नाट्यकलावाद

कुछ विद्वानों ने नाट्यकला की उत्पत्ति यूनानी नाट्यकला से ही मानी है। इसके प्रमाण में 'यवनिका' शब्द उपस्थित कर 'यवन' शब्द से इसकी

---

1. सूत्रयन् काव्यनिक्षिप्तवस्तुनेतृकथारसान्।
   नान्दी श्लोकेन नान्द्यन्ते सूत्रधार इति स्मृत:।। –शारदातनय, भा॰ प्र॰
2. अयं ध्वजमह: श्रीमान् महेन्द्रस्य प्रवर्तते।
   अत्रेदानीमयं वेदोनाट्यसंज्ञ: प्रयुज्यताम्।। ना॰शा॰ 1/54

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्ति मानते हैं जबकि संस्कृत नाटकों में यवनिका शब्द का व्यवहार होता है जिसका अर्थ है पर्दा (ढकने वाला)। अतः यह मत भी अग्राह्य है।

६. लोकप्रिय-स्वांगवाद

प्रो॰ हिलवेंट तथा स्टेनकोनो का विचार है कि नाटक की उत्पत्ति भारतवर्ष में प्रचलित स्वांगों से हुई। उनका मत है कि नाटकों में संस्कृत के साथ प्राकृत का प्रयोग, गद्य-पद्य का मिश्रण, रंगशालाओं में आडम्बर-शून्यता और सादगी तथा विदूषक जैसे लोकप्रिय पात्र की कल्पना प्रचलित स्वांगों के आधार पर ही हुई, परन्तु डॉ॰ कीथ का कहना है कि नाटकों से पहले स्वांगों की स्थिति का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। अतः पुष्ट प्रमाण के अभाव में यह मत स्वतः धराशायी हो जाता है।

भारतीय-मत (सिद्धान्त-मत) – ये मत निम्न हैं–

१. परम्परा का द्युलोकवाद

भारतीय परम्परा के अनुसार नाटक का उद्भव त्रेतायुग में ब्रह्मा द्वारा देव और दानवों की प्रार्थना से, दुःखी मनुष्यों के क्षणिक मनोरंजन हेतु किया गया। इसके लिए ब्रह्मा ने चतुर्वेदों की सहायता से नाट्यवेद को प्रकट किया। ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस ले, भगवान शिव पार्वती व विष्णु से नृत्य व चारों वृत्तियों का कलात्मक समावेश करा, पंचम वेद सम्बोधित कर नाट्य-वेद की सृष्टि की।[1] इस प्रकार विभिन्न देवी देवताओं द्वारा शिक्षित यह कला द्युलोक से भरतमुनि द्वारा मृत्युलोक में पहुंची। इस भरत उपाख्यान में भारतीय-परम्परा नाटकों को दैवी उत्पत्ति मानती है।

२. संवादसूक्तवाद व वैदिकानुष्ठानवाद

ऋग्वेद में संवाद सूक्तों में यम-यमी संवाद, उर्वशी-पुरुरवा संवाद, सरमा-पाणि आदि संवाद मिलते हैं। 1869 ई॰ में प्रो॰ मेक्समूलर ने संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति का बीज इन संवाद सूक्तों में माना। सामवेद में

---

1. जग्राह पाट्यम् ऋग्वंदात् सामभ्यो गीतमंव च।
यजुर्वंदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। – भरत. नाः शाः 1/17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत-तत्त्व की सत्ता से, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य के विधान से नाटकीय तत्त्वों की वेदमूलकता में कोई सन्देह नहीं है।

३. महाभारत एवं रामायण में नाटकीय संकेत

वेदों के पश्चात् आदि ग्रन्थों रामायण व महाभारत में भी अभिनय के संकेत मिलते हैं। डॉ॰ कीथ के अनुसार नट शब्द के आधार पर ही नाटकों का अस्तित्व नहीं माना जा सकता। रामायण में 'नाटक' व 'नट' शब्द का प्रयोग मिलता है। रामायण में महर्षि बाल्मीकि द्वारा वर्णित वहां नाटक की मण्डलियां तथा वेश्याएं थीं।[1] राम के राज्याभिषेक में भी नटों व नर्तकों का उपस्थित होना।[2] महाभारत में 'नट' 'शलूण' जैसे शब्दों का प्रचुर प्रयोग हमारी नाट्यकला की उन्नति का द्योतक ही है।

४. कृष्णोपासनावाद

इस सिद्धान्त के अनुसार कृष्ण राम आदि की उपासना व इसके निमित्त रथयात्रायें, नृत्य गीत आदि लीलाएं भी इसके उद्‌भव की परिचायक हैं परन्तु बाद में इसकी उपेक्षा की गई।

५. बौद्ध-जैन एवं वात्स्यायन के कामसूत्र में नाटकीय संकेत

वात्स्यायन के कामसूत्र में वर्णित कथन–

"कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणमेषां दधुः। द्वितीये हनि तेभ्यः पूजानियतं लभेरन्। ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गों वा।

व्यसनोत्सवेषु तेषां परस्परेककार्यता॥"[३]

नाटकों के उद्‌भव का संकेत करता है। इसमें भी बहुत पहले पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्रों में भी शिलाली तथा कृशाश्व के नटसूत्रों का उल्लेख

1. वधूनाटकसंघश्च संयुक्ताम्। वाःराःअःकाः
2. नटनर्त्तकसंघानां गायकानाश्च गायताम्।
   यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः॥ वाःराःअःकाः
3. काःसूः 1/4/28-31

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है।[1] महाभाष्यकार पतंजलि ने तो स्पष्ट रूप से 'कंसवध' तथा 'बलिवध' दो कथाओं से सम्बन्ध नाटकों का उल्लेख किया है।[2]

निष्कर्ष–

अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय नाटकों के उद्‌भव में किसी पाश्चात्य विद्वान का अन्वेषण हठधर्मिता व दुराग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं है। संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति मूल रूप से वेद से ही है। तब से लेकर आज तक इसके विशाल साहित्य की समृद्धि का श्रेय भरत को दिया जा सकता है। यह कला भारत में तभी विकसित हो गई थी जबकि आज सभ्य कहने वाले देश अन्धकार में ही पड़े हुए थे।

कालिदास के नाटकों का सामान्य-परिचय

प्रकृति में आत्मा को प्रवेश करा कर उसका सजीव चित्रण करने वाले व उसमें अपनी कला के रंग भरने वाले प्रकृति नटी के सफल चितेरे कालिदास ने संस्कृत-साहित्य को अद्वितीय भेंट दी है। उनकी अनेक कृतियां काव्यों के विभिन्न रूप में उपलब्ध हैं, जिनमें से नाटक अत्यन्त भावपूर्ण एवं रसमय होने के साथ-साथ अभिनय द्वारा जनमानस के हृदय के अत्यन्त समीप होने के कारण उन्हें प्रभावित करते रहे हैं। उन्होंने अपनी काव्यमयी सृष्टि से तीन नाटकों का उद्‌गम किया जो निम्नलिखित हैं–

1. विक्रमोर्वशीयम, 2. मालविकाग्निमित्रम्, 3. अभिज्ञानशाकुंतलम्।

१. विक्रमोर्वशीयम की संक्षिप्त कथा

यह पांच अंकों में समाप्य राजा पुरुरवा व उर्वशी की कथा पर आधारित है। इस नाटक की कथावस्तु का मूल आधार ऋग्वेद का दशम मण्डल का पंचानवा सूक्त है। कालिदास ने इसमें नाटकीयता का समावेश कर कुछ परिवर्तन के साथ कथावस्तु को प्रस्तुत क्रिया है।

---

1. क. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। 4/3/110
   ख. कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। 4/3/111
2. इह तु कथं वर्त्तमानकालता कंसं घातयति वलिं बन्धयतीतिचिरहते कंसे चिरवद्धे च वलौ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अंक : नान्दी पाठ के उपरान्त सूत्रधार द्वारा विक्रमोर्वशीयम् नाटक के अभिनय व अप्सराओं के आर्तनाद की सूचना दी जाती है। सूर्योपस्थान से लौटा हुआ राजा रक्षा के लिए पुकारती हुई अप्सराओं को आश्वासन देकर किसकी रक्षा करनी है इस विषय में पूछता है। राजा कुबेर के भवन से लौटी हुई उर्वशी को केशी नामक दैत्य से मुक्त कर हेमकूट पर्वत पर उसकी सखियों के पास पहुंचाता है। चित्रलेखा के उपचार से उर्वशी की मूर्च्छा दूर होती है, तथा वह राजा को देखती है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे को देखकर मुग्ध होते हैं तथा सखियां राजा का धन्यवाद करती हैं। इन्द्र का दूत गन्धर्वराज चित्ररथ राजा से स्वयं उर्वशी को इन्द्र के पास पहुंचाने को कहता है लेकिन राजा अभी वहां जाने से इन्कार कर देता है। इसके बाद अप्सराएं गन्धर्व के साथ आकाश मार्ग में उड़ती हैं लेकिन उर्वशी राजा को देखने के लिए वैजयन्तीमाला झाड़ी में उलझने का नाटक करती है व उसकी सखी चित्रलेखा हंसी करते हुए माला छुड़ा देती है।

द्वितीय अंक : राजा उर्वशी के प्रेम में आसक्ति से उदास रहता है। इस कारण रानी अपनी दासी निपुणिका द्वारा विदूषक से राजा की उदासी का पता लगा लेती है। राजा प्रमदवन में विदूषक के साथ बैठे हुए उर्वशी से मिलने का उपाय सोचते हैं तभी उर्वशी चित्रलेखा के साथ आकर तिरस्करिणी से आच्छन्न हो राजा की प्रियामिलन की बातें सुनकर विचलित हो जाती है तथा एक भोजपत्र पर प्रेमपत्र लिखकर राजा के सम्मुख भेजती है। राजा प्रेमपत्र पाकर प्रसन्न होता है तथा उर्वशी व चित्रलेखा स्वयं को प्रकट कर देती है। तब ही देववाणी द्वारा इन्द्रलोक में आठ रसपूर्ण नाटक के अभिनय हेतु उर्वशी को लौटने की सूचना मिलती है। उर्वशी के जाने से राजा पुनः शोकातुर होते हैं तथा राजा को खोजती हुई रानी वहां आती है व उनके हाथ में प्रेमपत्र पड़ जाता है लेकिन वह बिना पढ़े ही राजा को लौटा देती है। रानी क्रुद्ध है व दासियों सहित वहां से चली जाती है।

तृतीय अंक : भरतमुनि के दो शिष्य गालव और पेलव का प्रवेश होता है। गालव द्वारा पेलव से इन्द्र सभा के विषय में पूछने पर वह, उर्वशी के मुख से प्रमादवश अभिनय में पुरुरवा का नाम निकलने का वृत्तान्त बताता है। उर्वशी से लक्ष्मी अभिनय के मध्य जब यह पूछा गया कि तुम्हें तीनों लोकों में सबसे अधिक प्रिय कौन है तो उसके मुख से पुरुरवा का नाम सुनकर भरतमुनि अप्रसन्न हुए व पृथ्वी पर रहने का शाप दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंचुकी द्वारा वहाँ आकर महारानी का संवाद सुना जाता है। मणिहर्म्य भवन की छत पर रानी परिजनों सहित आकर प्रियानुप्रसादन व्रत का संकल्प करते हुए कहती है कि आज से आर्यपुत्र जिस स्त्री पर आसक्त हों या जो उन पर आसक्त हो उससे मेरा प्रेमपूर्ण व्यवहार होगा। उर्वशी अभिसारिका रूप में आकर रानी के वचनों से प्रसन्न होती है तथा रानी के चले जाने पर चित्रलेखा व उर्वशी स्वयं को प्रकट करती हैं। राजा उर्वशी को स्वीकार कर लेता है तथा चित्रलेखा विदा होकर चली जाती है।

चतुर्थ अंक : सहजन्मा के पूछने पर चित्रलेखा उर्वशी के संकट में पड़ने का कारण बताती है कि गन्धमादन पर्वत पर राजा के द्वारा गन्धर्व बाला को देर तक देखते रहने से, नाराज होकर कुमार वन में प्रवेश कर लता बन गई है।

राजा अपनी प्रिया के वियोग में विक्षिप्त होकर बादल को राक्षस समझता है व पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों से वन-वन में प्रिया का पता पूछता है। इसी प्रकार ढूंढते हुए उसे एक लालमणि मिलती है जिसे तर्क-वितर्क के पश्चात् उसे छोड़कर राजा आगे बढ़ना चाहता है लेकिन दिव्य वाणी द्वारा उसे इस मणि के संगमनीय मणि होने का ज्ञान होता है। राजा मणि को लेकर ज्यों ही आगे बढ़ा तब ही एक लता को देखकर लिपट जाता है तथा मूर्च्छित हो जाता है। होश आने पर उर्वशी राजा से अपने संगमनीय मणि से उद्धार की बात गुरुजी ने कही थी, यह बताती है। तदुपरान्त राजा उर्वशी सहित प्रतिष्ठानपुर चला जाता है।

पंचम अंक : राजधानी में रहते हुए राजा संगम स्नान को जाता है तथा दासी के हाथ से एक गिद्ध संगमनीय मणि को ले उड़ता है। जब तक राजा उसका पीछा करे, वह पक्षी दूर निकल जाता है। राजा पक्षियों के निवास, वृक्षों पर खोजने का आदेश देता है।

इसी समय कंचुकी द्वारा गिद्ध को बाण से घायल करने का समाचार मिलता है तथा बाण पर लिखी लिपि से राजा को अपने पुत्र आयु का पता चलता है। राजा आश्चर्यचकित होता है। इसी समय तापसी कुमार को लेकर आती है तथा गिद्ध को मारना-यह आश्रम विरुद्ध-कर्म करने से च्यवन ऋषि द्वारा त्यागे जाने व क्षत्रियोचित संस्कार कराये जाने की सूचना देती है।

तापसी उर्वशी से यह कहकर कि कुमार कवच धारण करने योग्य, एवं शिक्षित हो गया है। इसी से तुम्हारे स्वामी के सम्मुख सौंपने आई है। तापसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जाने पर उर्वशी रोती है व राजा को बताती है कि अभिनय में मुनि द्वारा शापित होने पर पृथ्वी पर आते समय इन्द्र ने पुत्र का राजा द्वारा मुख देखने तक ही पृथ्वी पर रहने को कहा था। अत: अब हमारा साथ नहीं रहेगा। इस पर राजा उदास होकर कहता है कि तुम स्वर्ग जाओ और मैं पुत्र को राज्यगद्दी सौंपकर वन जाता हूं। तब ही देवर्षि नारद देवासुर संग्राम का समाचार व उर्वशी का जीवनपर्यन्त राजा के साथ रहने का सन्देश देते हैं। सभी प्रसन्न होकर नारद से पुत्र का राज्याभिषेक कराते हैं। भरतवाक्य द्वारा नाटक समाप्त होता है।

२. मालविकाग्निमित्रम् का कथानक

प्रेस-प्रसंग पर आधारित पांच अंकों में समाप्य कालिदास का यह ऐतिहासिक नाटक है।

प्रथम अंक : प्रस्तावना के पश्चात् नाटक की कहानी बकुलावलिका तथा कौमुदिनी नामक दो सखियों से प्रारम्भ होती है। बकुलावलिका गुरु गणदास के पास शिष्या मालविका का समाचार ज्ञात करने के लिए रानी धारिणी की आज्ञा से जा रही थी व कौमुदिनी सुनार के पास से राजमुद्रित अंगूठी लेकर लौट रही थी। दोनों के वार्तालाप से ही मालविका के सौन्दर्य व उसे राजा से दूर रखने के रानी के प्रयत्न का पता चलता है। लेकिन राजा चित्र में देखकर उसके सौन्दर्य पर मोहित होकर राजकुमारी वसुलक्ष्मी के माध्यम से 'उसका नाम मालविका' है ऐसा जान लेता है। बकुलावलिका गणदास के पास जाकर मालविका की कला निपुणता ज्ञात करती है व गणदास को रानी के भाई द्वारा मालविका भेंट में देने का वृत्तान्त सुनाती है। दूसरे दृश्य में राजा अग्निमित्र का विदर्भ से आये पत्र पर मंत्री के साथ विचार-विमर्श होता है तदुपरान्त राजा, रानी धारिणी के भाई को विदर्भ देश पर आक्रमण कर शत्रु को पराजित करने के लिए भेज देता है। तब राजा विदूषक से मिलकर मालविका से भेंट का उपाय सोचने को कहता है व नाट्याचार्य गणदास तथा हरदत्त की शिष्याओं की निपुणता का प्रदर्शन रानी व परिव्राजिका के साथ रंगशाला में देखने का निश्चय हुआ।

द्वितीय अंक : इस अंक में वृद्ध होने के कारण गणदास को पहले अपनी शिष्या का नृत्य दिखाने का अवसर दिया जाता है क्योंकि राजा मालविका को देखने के उत्सुक थे। मालविका के सौन्दर्य, नृत्य व प्रेम-गीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से राजा उस पर और अधिक मुग्ध हो जाते हैं। राजा के मन में हरदत्त की शिष्या का नृत्य देखने की इच्छा समाप्त हो गई। अत: भोजन का समय बताकर दूसरी शिष्या का नृत्य फिर कभी देखने का निर्णय लिया गया। राजा मित्र विदूषक से मालविका को मिलाने का प्रयत्न करने को कहते हैं। विदूषक बकुलावलिका के साथ मिलकर मालविका के हृदय में भी राजा के लिए प्रेम बीज बोने को कहता है।

तृतीय अंक : अग्निमित्र के अन्त:पुर में प्रमदवन था जिसमें अशोक का तपनीय वृक्ष था। उसके दोहद के लिए रानी मालविका को आमंत्रित करती है क्योंकि वह स्वयं पैर में चोट लगने से पीड़ित थी। रानी अशोक के फूलने पर मालविका को मनमांगी वस्तु देने का वचन देती है। विदूषक राजा को बकुलावलिका के विषय में बताकर प्रमदवन भेजता है जहां रानी इरावती ने राजा को झूला-झूलने के लिए आमन्त्रित किया है लेकिन मार्ग में मालविका को देखकर राजा रुककर वार्तालाप करता है। तब ही रानी इरावती राजा को खोजती हुई वहां आती है तथा वस्तुस्थिति समझकर रूठ कर जाने लगती है। राजा के पैर पकड़ने से भी नहीं मानती व रानी धारिणी को भड़काकर मालविका व बकुलावलिका को कैद करा देती है तथा विश्वासपात्र दासी को पहरेदार नियुक्त कर धारिणी की सर्पमुद्रा देखकर ही मुक्त करने का आदेश देती है।

चतुर्थ अंक : विदूषक से मालविका व बकुलावलिका के कारागार के विषय में जानकर राजा चिंतित हुआ व विदूषक से उन दोनों को मुक्त कराने का उपाय सोचने के लिए कहा। विदूषक ने केतकी कण्टक से अपने हाथों पर सर्प-दंशन का सा चिह्न बना लिया व मिथ्या सर्पदंशन का शोर करता हुआ रानी धारिणी के लिए फूल लेकर पहुंचा। रानी ने इसका दोषी स्वयं को मानकर उसे वैद्य ध्रुवसिद्धि के समक्ष भेजा। वैद्य ने सर्पमुद्रित वस्तु उपचार हेतु मांगने पर रानी ने अपनी मुद्रा भेज दी। विदूषक ने कारागार रक्षिका को दिखाकर व स्वयं को रानी धारिणी द्वारा प्रेषित बताकर दोनों को मुक्त करा दिया तथा कैदियों की मुक्ति का कारण राजा की ग्रहदशा विपरीत होना बताया। राजा व मालविका गर्भगृह में मिले तथा विदूषक व बकुलावलिका पहरा देने लगे तभी वहां विदूषक का हाल जानने निपुणिका के साथ इरावती वहां आई तथा इस स्थिति में राजा को मालविका के साथ देखकर, रानी धारिणी को पक्षपाती समझती हुई, रुष्ट होकर वहां से चली गई। राजा ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया लेकिन इरावती पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसी समय दासी अन्तःपुर से बन्दर द्वारा राजकुमारी वसुलक्ष्मी के निरन्तर रोतें रहने का समाचार लेकर उपस्थित हुई। रानी ने डरकर राजा से राजकुमारी को आश्वासन देने की प्रार्थना की। राजा व सभी के जाने के बाद मालिन मालविका को अशोक वृक्ष के पांच दिनों में फूलने का समाचार देती है तथा वह यथाकथित पारितोषिक प्राप्त करने चली जाती है।

पंचम अंक : इस अंक में रानी धारिणी राजा को रक्ताशोक के पास पहुंचने की प्रार्थना करती है। राजा ने विदर्भ सैनिकों के यज्ञसेन पर विजय प्राप्त करने की सूचना प्राप्त करने के उपरान्त विदूषक सहित प्रमदवन में प्रवेश किया। वैवाहिक वेश में सुसज्जित मालविका परिव्राजिका कौशिकी व परिजनों सहित रानी भी वहां पहुंचती है। उसी समय अग्निमित्र के पिता पुष्यमित्र का दूत कुमार वसुमित्र के कुशलतापूर्वक अश्वमेध-यज्ञ की पूर्णता व परिवार सहित निमन्त्रण का सन्देश लेकर आता है। धारिणी ने भी इस शुभ सूचना के अनुरूप पारितोषिक स्वीकार करने की प्रार्थना की। माधवसेन द्वारा भेजी दो शिल्प कन्याएं राजकुमारी मालविका को व परिव्राजिका को पहचान कर उपस्थित सभी को आश्चर्यचकित कर देती है। कौशिकी ने पहचानने पर भी न बताने का कारण सिद्धपुरुष की, "एक वर्ष तक मालविका के दासी के रूप में रहने की", भविष्यवाणी बताई। इसके उपरान्त रानी धारिणी ने इरावती की अनुमति से कौशिकी से पूछकर राजकुमारी मालविका का विवाह राजा से कर दिया।

३. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

यह कालिदास का अन्तिम तथा सर्वश्रेष्ठ सात अंकों में समाप्य संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसमेंशृंगार-रस की प्रधानता है। पद्म-पुराण में दी गई सीधी-सादी शकुन्तला की कथा को लेकर अपनी काव्यात्मक प्रतिभा व कल्पनाशक्ति द्वारा कालिदास ने उसे सर्वोत्कृष्ट नाटक के रूप में परिवर्तित कर दिया।

प्रथम अंक : इस अंक का प्रारम्भ सूत्रधार व नटी के वार्तालाप के माध्यम से बहुत ही नाटकीयता से हुआ है। नटी के सुमधुर गीत को सुनकर सूत्रधार कहता है कि जिस प्रकार हरिण के द्वारा राजा दुष्यन्त बलात् दूर ले जाये गये थे उसी प्रकार मैं तुम्हारे गाने से दूर आकृष्ट किया गया हूँ। इस प्रकार नाटक का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ हो जाता है। रथ पर बैठा हुआ राजा दुष्यन्त हरिण का पीछा करते हुए आश्रम के समीप पहुँचता है। इसी बीच दो शिष्यों सहित एक तपस्वी उस मृग को आश्रम का मृग बताते हुए न मारने की प्रार्थना करते हैं तथा महर्षि कण्व के सोमतीर्थ, शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य को शान्त कराने हेतु जाने का वृत्तान्त बताकर, कण्व की पुत्री शकुन्तला द्वारा आतिथ्य सेवित आश्रम में अतिथि सत्कार ग्रहण करने की प्रार्थना करते हुए राजा को चकवर्ती पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देकर समिधाएँ लेने हेतु वन में प्रस्थान करते हैं। दुष्यन्त आश्रम में जाकर शकुन्तला के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं तथा उसकी सखियों से कण्व द्वारा उसके लिए योग्य वर की खोज का व मेनका की पुत्री होने का समाचार सुनकर उसके प्रति आशावान होकर वहीं रहने के इच्छुक हो जाते हैं। इसी बीच नेपथ्य से सैनिकों द्वारा आश्रम को घेरने की सूचना मिलती है अतः दुष्यन्त प्रियंवदा व अनसूया को आश्रमवासियों की रक्षा का आश्वासन देकर चले जाते हैं।

द्वितीय अंक : इस अंक में दुष्यन्त की मृगया का विस्तृत वर्णन है। राजा के मन में मृगया को लेकर अन्तर्द्वन्द चलता है तथा अन्त में वह मित्र विदूषक के सानुनय आग्रह व ऋषि पुत्री में आसक्ति से मृगया का विचार छोड़ देते हैं। राजा विदूषक को अपने प्रेम की बात बताकर वहाँ कुछ दिन और रहने का उपाय ढूंढने को कहते हैं तब ही आश्रम से दो ऋषि कुमार आश्रम में रहकर यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले राक्षसों से रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं, जिसको राजा उत्साह से स्वीकार कर लेते हैं। इसी बीच हस्तिनापुर से सन्देशवाहक करभक माता द्वारा उपवास समाप्ति पर शीघ्र राजधानी पहुंचने का संदेश लेकर आता है। राजा दुविधा में पड़ जाते हैं तथा अन्त में माता द्वारा पुत्र रूप में समझे जाने वाले विदूषक को, अपनी शकुन्तला में आसक्ति के कथन को मिथ्या बताकर, सैनिकों सहित राजधानी भेज देते हैं। इसी इतिवृत्त के साथ अंक समाप्त होता है।

तृतीय अंक : इस अंक में यजमान का शिष्य, दुष्यन्त की तपोवन में उपस्थिति से यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति की उद्घोषणा करता है। राजा दुष्यन्त कामदेव व चन्द्रमा को लक्ष्य कर अपनी कामव्यथा को प्रदर्शित करता है एवं शकुन्तला को मालिनी तट पर सखियों सहित मध्याह्न की तीव्र गर्मी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यतीत करते हुए, पाषाण-खण्ड पर शैय्या बनाकर लेटे हुए देखता है तथा छुपकर उसकी स्थिति एवं अस्वस्थता का पता लगाता है। शकुन्तला द्वारा सखियों पर दुष्यन्त के प्रति प्रेम प्रकट करने पर दुष्यन्त प्रसन्न होकर स्वयं को प्रकट कर देता है। वहीं दोनों गान्धर्व-विवाह करते हैं। शकुन्तला के स्वास्थ्य-समाचार को जानने के लिए आई गौतमी के साथ सायंकाल हो जाने से सब चले जाते हैं तथा राजा प्रेयसी की बातों का स्मरण करते वहीं पर खड़ा रहता है।

चतुर्थ अंक : इस अंक में प्रियंवदा व अनसूया के परस्पर वार्तालाप से राजा के राजधानी लौटने का समाचार मिलता है। उधर राजा के वियोग में एवं संशय की स्थिति में शकुन्तला अपने दिन व्यतीत करने लगी। एक दिन अकस्मात् यह आवाज सुनाई देती है–"जिसके ध्यान में तूने मुझ तपस्वी का अनादर किया है वह पौन्पुन्येन स्मरण कराने पर भी तेरे साथ गन्धर्व-विवाह को भूल जायेगा।"–ऐसा अभिशाप देकर दुर्वासा लौट जाते हैं। प्रियंवदा द्वारा क्षमा मांगने पर वह अभिज्ञान आभूषण के दिखाने से शाप निवृत्त हो जायेगा–ऐसा कहकर चले जाते हैं। जो अंगूठी राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को दी थी उसका स्मरण कराये जाने पर शापमुक्त हो जायेगी इस बोध से आश्वस्त होकर वह चुप रहती है और यह बात शकुन्तला को भी नहीं बताती। आश्रम से लौटकर व अदृश्य वाणी शकुन्तला के विवाह होने तथा गर्भवती होने का वृत्तान्त ज्ञात होने पर कण्व ने आशीर्वाद सहित शकुन्तला को शिष्यों सहित पतिगृह भेजकर निश्चिन्तता प्रकट की।

पंचम अंक : राजा राजधानी में विदूषक के साथ वार्तालाप में व्यस्त हैं तथा हंस पदिका द्वारा भ्रमर को आलम्बन करते हुए गाये गये गीत को सुनकर व्याकुल होता है। उसी समय कंचुकी महर्षि कण्व के स्त्रियों सहित दरबार में उपस्थित होने का समाचार देता है। राजा उनका शास्त्रसम्मत स्वागत करता है तथा उनके आने का कारण जानना चाहता है। तदनन्तर आशीर्वादपूर्वक शकुन्तला को लक्ष्य कर शार्ङ्गधर महर्षि कण्व के सन्देश को निम्न शब्दों में राजा को सुनाता है–"क्योंकि तुमने गान्धर्व विधि से मेरी पुत्री के साथ विवाह कर लिया है अत: इसका मैं हृदय से अनुमोदन करता हूं। सम्प्रति यह गर्भवती है। इसे धर्माचरण के लिए स्वीकार कीजिए।" राजा दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को न पहचानते हुए पर-स्त्री को स्वीकार करना अपराध है, ऐसा समझता है। शचीतीर्थ में पानी पीते समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिज्ञान-स्वरूप राजा दुष्यंत के नाम वाली वह अंगूठी भी पानी में गिर गई थी। अतः राजा से अस्वीकृत व ऋषि कुमारों द्वारा वहीं छोड़ दी गई शकुन्तला विलाप करती है तभी उसे एक दिव्य ज्योति उड़ा ले गई। तदनन्तर वह हेमकूट पर्वत पर अपनी माता मेनका के साथ अपने वियोग के दिन व्यतीत करने लगी।

षष्ठ अंक : सिपाहियों द्वारा पकड़े गये मछुआरे से प्राप्त अंगूठी देखकर राजा को शकुन्तला की याद आती है तथा वह अपने विस्मरण से तिरस्कृत शकुन्तला की याद में व्याकुल रहने लगते हैं। उनकी विरहावस्था को देखकर बसन्त ऋतु में भी बसन्तोत्सव नहीं मनाया जाता है। शकुन्तला की सखी सानुमती तिस्करिणी विद्या द्वारा छिपकर राजा की विरहावस्था व शकुन्तला वियोग को देखकर सुख का अनुभव करती है। राजा मित्र विदूषक के साथ शकुन्तला की बातें करता हुआ शकुन्तला के चित्र को देखकर ही विरह के दिन व्यतीत करता है। इन्द्र का दूत राजा के पास इन्द्र की सहायता का निमन्त्रण लेकर उपस्थित होता है।

सप्तम अंक : इस अंक में राजा ने इन्द्र-शत्रु का संहार कर स्वर्ग में इन्द्र द्वारा विशिष्ट सत्कार प्राप्त किया। वहां से लौटते समय दुष्यन्त मारीच-आश्रम में मारीच के दर्शनों की इच्छा प्रकट कर मातलि से रथ रुकवाते हैं। मातलि राजा के आगमन की सूचना देने महर्षि के समीप जाते हैं। उसी समय राजा को शुभ शकुन होता है एवं एक बालक को शेर के साथ खेलते देखता है। राजा उसके प्रति आकृष्ट होते हैं तथा उसका स्पर्श कर असीम शान्ति का अनुभव करते हैं। राजा द्वारा उस बालक का रक्षाकरण्डक उठा लेने से तपस्विनी स्त्रियां आश्चर्यचकित होती हैं। वे बताती हैं कि ऋषि, इसके माता-पिता के अतिरिक्त अन्य किसी के स्पर्शमात्र से ही यह रक्षाकरण्डक सर्प बनकर डस लेता है तथा राजा को उन्हीं से बालक के पुरुवंशी तथा शकुन्तला-पुत्र होने का पता चलता है। राजा शकुन्तला के पैरों में गिर कर अपने दुर्व्यवहार की क्षमा याचना करता है तथा अंगूठी पुनः शकुन्तला को पहना देता है। महर्षि मारीच दोनों को आशीर्वाद देते हैं वह 'शापवश यह सब हुआ' ऐसा कहकर शंका न करने का आदेश देते हैं। राजा महर्षि मारीच का आशीर्वाद पाकर पत्नी शकुन्तला व पुत्र सर्वदमन के साथ पृथिवीलोक पर अपनी राजधानी हस्तिनापुर वापिस आ जाता है जहां सभी प्रजाएं उनका अभिनन्दन करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति के नाटकों का सामान्य-परिचय

संस्कृत रूपकों में कालिदास व भवभूति दोनों ही अनुपम कवि हैं। कालिदास अपने कमनीय कौशल से जहां सत्यं शिवं सुन्दरम् को चित्रित करने में सफल हुए हैं वहीं भवभूति ने अपनी मनोहर प्रतिभा के बल पर पूर्वोक्त विषय में वैशिष्ट्य स्थापित कर अलौकिक, अद्‌भुत और भयानक पदार्थ की भी अवतारणा कर विद्वानों के चित्त को आकृष्ट किया है। भवभूति ने मालती माधव नाटक में अन्य अंगी रसों के साथ प्रधानभूतशृंगार रस का समावेश किया है। कालिदास की तरह भवभूति ने अपना परिचय प्रस्तुत करने में 'कार्पण्य' नहीं दिखाया, अपितु नाटकों के प्रारम्भ में ही अपने वंशादि का वर्णन प्रस्तुत किया है। मालतीमाधव नाटक पूर्ण नाटकीय गुणों से युक्त दस अंकों में समाप्य विस्तृत नाटक है।

मालती-माधव

प्रथम अंक : प्रथम अंक के प्रारम्भ में सूत्रधार अपने सहायक नट को मालती-माधव प्रकरण के कर्ता भवभूति का परिचय देता है।

प्रस्तावना

भुरिवसु और देवरात नाम के ब्राह्मण कुमार छात्रावस्था में ही घनिष्ठ मित्र होते हैं तथा एक के कन्या व दूसरे के पुत्र उत्पन्न होने पर वे उन दोनों का विवाह करने का निश्चय करते हैं। उनका यह परामर्श बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकी व उनकी शिष्या सौदामिनी को भी विदित है। कालान्तर में दोनों मित्रों को पदमावती-पति व विदर्भ राजा का मन्त्रिपद प्राप्त हुआ एवं दोनों में से भूरिवसु को मालती नाम की पुत्री और देवरात को माधव नामक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ।

माधव अतिशय सुन्दर व सब विद्याओं में निपुण हुआ। उसकी सत्कुल प्रसूत मकरन्द से परम मित्रता हुई। उसी तरह मालती परमसुन्दरी, आज्ञाकारी व सर्वगुण सम्पन्न विवाहयोग्य हुई।

दोनों मंत्रियों के वचन पूरा करने में अड़चन, राजा पद्मावती का नर्मसचिव नन्दन, बना जिसने अपनी वचनकौशलता से कुसुम सदृश मालती से विवाह करने का वचन लेने में सफलता प्राप्त की। मंत्र भूरिवसु को विवश होकर कुरुप नन्दन से मालती के विवाह की अनुमति देनी पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्री देवरात ने प्रतिज्ञा याद दिलाने हेतु पुत्र माधव को न्यायशास्त्र से अध्ययनार्थ पद्मावती भेजा लेकिन भूरिवसु उदासीन बने रहे।

बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकी मित्रों की प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए अपनी शिष्या अवलोकिता से मिलकर दोनों में प्रणय सम्बन्ध स्थापित कराने के लिए माधव को भूरिवसु के भवन में के निकट मार्ग में परिसंचरण कराने लगी, तथा माधव का एक चित्र मालती ने बनाया और अनुराग प्रदर्शन हेतु चित्र लवंगिका ने, जो मालती की धाय की पुत्री थी माधव के नौकर कलहंस की प्रेमिका मंदारिका को दे दिया। इस प्रकार दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो गये। तत्पश्चात् अवलोकिता द्वारा मदनोद्यान उत्सव में भेजे गये माधव बकुल वृक्ष के पुष्पों की माला बना रहे थे। वहीं मालती हथिनी पर सवार होकर अपनी सखी के साथ आई और दोनों ने एक दूसरे को देखा। लवंगिका वह माला माधव से मालती के निमित्त मांगकर ले ·ई।

मालती के जाने पर विरह का अनुभव करते हुए माधव के पास उसका मित्र मकरन्द आया। दोनों प्रणय के विषय में वार्तालाप करते हैं तथा कलहंस द्वारा लाये गये मालती के चित्र को देखकर माधव भी चित्र बनाते हैं। इसी समय चित्र ढूंढती हुई मन्दारिका वहां आती है। मालती माधव के प्रेम के विषय में जान लेती है। इस प्रकार सब लोग चले जाते हैं।

द्वितीय अंक : इस प्रकार मालती माधव के प्रणय अंकुरित करने में कामन्दकी सफल हो जाती है तथा वह राजा की आज्ञा पालन में तत्पर भूरिवसु पर मालती के हृदय में अश्रद्धा उत्पन्न कराने में तत्पर होती है, जिससे वह स्वेच्छा से माधव से विवाह कर सके। इसके लिए वह मालती से मिलकर उसे शकुन्तला, वासवदत्ता आदि कुलीन स्त्रियों के गन्धर्व-विवाह प्रसंगों को सुनाती है। मालती माधव पर आसक्त है, लेकिन पिता के निश्चय से नन्दन से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने की विवशता के कारण दुखी होते हुए भी पितृ-आज्ञा का उल्लंघन करने में असमर्थ है। कामन्दकी ने अपने उपाय कौशल का अवलम्बन कर मालती को अपने पिता में श्रद्धा रहित व माधव से विवाह करने को उद्यत कराया।

तृतीय अंक : इसी प्रकार कामन्दकी ने नन्दन की बहन मदयन्तिका के साथ माधव के मित्र मकरन्द का विवाह कराना चाहा। इस कार्य हेतु अपनी शिष्या बुद्धरक्षिता को मदयन्तिका के पास पहले ही रखवाया। माधव को शिवमन्दिर में बैठाकर कामन्दकी ने मालती को कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर पर अभीष्ट कार्य की सिद्धि हेतु देव अर्चन के लिए भेजा। वहीं मदयन्तिका को लेकर बुद्धरक्षिता भी आती है। माधव मालती को देखकर कामविष्ट होता है एवं कामन्दकी मालती को माधव की विरहावस्था का वर्णन सुनाती है। लवंगिका भी मालती की विरहावस्था का वर्णन करती है।

ऐसे अवसर पर पिंजड़े से भयानक सिंह निकल पड़ा। उसने देखते देखते मनुष्य, बैल व घोड़ों को मार डाला। चारों ओर भगदड़ मच गई। देवयोग से मदयन्तिका वहीं पास में थी। सिंह उस पर लपका। सब परिजन वहां से भाग गये। असहाय मदयन्तिका को मकरन्द प्राणों पर खेलकर बचाते हैं तथा स्वयं घायल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। माधव मकरन्द की सहायता के लिए आते हैं तथा मित्र की अवस्था देखकर स्वयं भी संज्ञाशून्य हो गये।

चतुर्थ अंक : कामन्दकी ने पुत्र-तुल्य दोनों का उपचार किया। मदयन्तिका के प्रयत्न से मकरन्द व मालती के प्रयत्न से माधव दोनों होश में आ गये तथा मदयन्तिका व मकरन्द दोनों ने एक-दूसरे को देखा तथा दोनों में प्रेम-संचार हुआ। उसी अवसर पर एक पुरुष ने आकर नन्दन व मालती के विवाह की तैयारी पूर्ण होने की सूचना दी जिससे मदयन्तिका मालती को भाभी के रूप में पाने की कल्पना से प्रसन्न हुई व माधव पर वज्रपात हुआ। कामन्दकी की सान्त्वना से भी दोनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वैवाहिक वेशभूषा से सुसज्जित करने के लिए मालती को बुलवाया गया। दुखी मालती माधव को नैराश्य के समुद्र में गोता लगाते हुए छोड़कर कामन्दकी व मदयन्तिका तथा लवंगिका के साथ चली गई।

माधव कामन्दकी के आश्वासन को निःसार समझने लगे। उसे वामाचार के अनुसार श्मशान में पिशाचों को महामांस के विक्रय में अपनी आशा पूरी होने की संभावना होने लगी। मकरन्द ने माधव से मदयन्तिका के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित किया। अनन्तर दोनों मित्रों ने साथ-साथ नगरी की ओर प्रस्थान किया।

पंचम अंक : भयंकर वेशवाली कापालिकी कपालकुण्डला अपने गुरु अघोरघण्ट के पुरश्चरण की सफलता हेतु बलिपात्र की खोज में आकाश मार्ग से भ्रमण करने लगी। उस समय श्मशान में एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में नरमांस लिए माधव को देखा।

इति विष्कम्भक।

आधी रात के समय कराला देवी के मन्दिर के पास वाले श्मशान में मालती के वियोगजन्य दुख से दुखी माधव हाथ में नरमांस लिए घूमता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन कोई पिशाच महामांस खरीदने को नहीं प्रस्तुत हुआ। उसी समय उसे किसी युवती का परिचित करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। मालती पिता से उपालम्भ करती हुई बंधी हुई खड़ी थी तथा देवपूजा में बलि होने को तत्पर मालती को देखकर माधव बीच में कूद पड़ा। कपालकुण्डला ने माधव का परिचय अपने गुरु को दिया तथा माधव व अघोरघण्ट में वार्तालाप के पश्चात् युद्ध छिड़ गया।

षष्ठ अंक : कपालकुण्डला ने गुरु का वध देखकर माधव से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। इति विष्कम्भक।

विवाह के अवसर पर मालती के खो जाने से उसका अन्वेषण होता है तथा कामन्दकी के परामर्श से भूरिवसु की आज्ञा से मन्दिर को घेर लिया गया वहां माधव से बचाई मालती मिल गई।

अनन्तर मालती के विवाह की तैयारियां होने लगीं। मालती बहुत दुःखी थी। कामन्दकी ने एक उपाय सोचा व माधव को मन्दिर में छिपा दिया। तथा मालती को माता की आज्ञा से मन्दिर जाने की अनुमति मांग कर मन्दिर भेजा जहां मालती के लिए विवाह वस्त्राभूषण लेकर लवंगिका आती है। मालती उसके पैर पकड़कर माधव से एक बार मिलकर प्राण त्यागने की प्रार्थना करती है। तब लवंगिका चली जाती है। व माधव उपस्थित होता है। माधव को मालती बकुल पुष्प की माला पहनाना चाहती है। लेकिन वह पिता की आज्ञा के उल्लंघन में असमंजित होती है। कामन्दकी ने अवस्थानुकूल कार्य करने के लिए दोनों को समझाकर विवाह का उपक्रम किया।

सप्तम अंक : नन्दन के विवाह की कठिनता को देखकर कामन्दकी वधू रूप बनाकर मकरन्द के साथ नन्दन का विवाह सम्पन्न करा देती है। उद्यान में मालती व माधव का भी विवाह हो गया। नन्दन मकरन्द को नवविवाहिता वधू जानकर उसके पास जाते हैं लेकिन मकरन्द द्वारा ताड़ित होकर "कौमारबन्धकी आदि कठोर शब्द कहकर बाहर चले जाते हैं व मकरन्द भी चला जाता है।"

नन्दन की अप्रतिष्ठा को जानकर मदयन्तिका भाभी मालती को उपालम्भ देने मालती के पास जाती है लवंगिका द्वारा नन्दन के अवगुणों को जानकर खिन्न होती है। व लवंगिका मकरन्द के सिंह-रक्षा आदि प्रसंगों की चर्चा करती है क्योंकि वह मदयन्तिका की मकरन्द में आसक्ति को जानती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८८
३५६ : ६

उसी समय मकरन्द शैया से उतरकर मदयन्तिका का कर ग्रहण कर प्रेमालाप करते हैं। तदनन्तर सब मालती माधव के निवास स्थान उद्यान को जाते हैं।

अष्टक अंक : अवलोकिता ने नन्दन भवन से लौटी कामन्दकी को अभिवादन कर नववधू मालती माधव के पास जाने का उपक्रम किया। (इति प्रवेशक)

137826

मालती माधव के पास जाते हुए मकरन्द का पहरेदारों के साथ युद्ध होता है तथा इनका इंतजार करते हुए अधिक समय व्यतीत हो जाने पर माधव जाते हैं तथा अकेले मकरन्द को लड़ते देखकर युद्ध करते हैं। कुछ समय बीतने पर चिन्तित मालती ने अवलोकिता व बुद्धरक्षिता को कमन्दकी के पास एवं लवंगिका को माधव का वृत्तान्त जानने के लिए भेजा। उद्यान में केवल मालती व मदयन्तिका रह गई। उचित अवसर जानकर कपालकुण्डला मालती को श्रीपर्वत पर उठा कर ले गई।

उधर माधव व मकरन्द व कलहंस का राजभटों के साथ युद्ध होते जानकर राजा ने सिपाहियों को भेजा व स्वयं उनका युद्ध महल की छत से देखने लगे। दोनों कुमारों की बहादुरी देखकर राजा ने उन्हें अभयदान देकर महल में बुलवाया व परिचय जानकर अति प्रसन्न हुए। महाराज की सदाशयता की प्रशंसा करते हुए दोनों कुमार उद्यान में पहुंचकर मालती को लापता पाते हैं। मदयन्तिका व लवंगिका को उन्हें खोजते पाकर माधव को कपालकुण्डला की प्रतिज्ञा स्मरण होता है तथा मालती के जीवन से निराश माधव को मकरन्द सान्त्वना देते हैं।

नवम अंक : माधव मालती के विरह में विक्षिप्त विन्ध्य पर्वत पर विचरण करने लगे। उनके मित्र मकरन्द उनके साथ थे। माधव की विक्षिप्तावस्था को देखकर मकरन्द स्वयं भी पर्वत पर चढ़कर प्राण त्यागने के लिए जन्मान्तर में भी मित्र का साहचर्य प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना कर कूदना चाहते है तब ही एक योगिनी सी महाप्रभाव सम्पन्न स्त्री ने आकर माधव द्वारा बनाई बकुलमाला उन्हें दिखाकर मालती के जीवन का प्रमाण दिया। यह स्त्री सौदामिनी थी जो सिद्धि हेतु श्रीपर्वत पर रह रही थी। इन्होंने कपालकुण्डला से मालती को बचाकर अपने पास रखा व माला को लेकर माधव की खोज में निकल पड़ी। वायु वेग से होश में आकर माधव प्राण त्यागना चाहते थे परन्तु तभी सौदामिनी ने माला दिखाकर माधव को योगबल से श्रीपर्वत ले गयी तथा यह समाचार देने मकरन्द कामन्दकी के पास गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशक अंक : उधर कामन्दकी लवंगिका और मदयन्तिका मालती के अभाव में जीवन व्यर्थ जानकर मधुमती नदी के प्रवाह में प्राण त्यागने के लिए कूदना चाहती हैं उसी क्षण मकरन्द उनके समक्ष सौदामिनी की प्रशंसा करते हुए उपस्थित हुए।

अमात्य भूरिवसु भी मालती का वृत्तान्त सुनकर अपना सब कार्य छोड़ कर राजा की प्रार्थना ठुकराकर अग्निप्रवेश करना चाहते थे। उन्हें भी सौदामिनी ने बचाया। उसी समय माधव मालती को लेकर आते हैं। पिता की अवस्था जानकर मालती मूर्च्छित हो गई व मालती की दशा देखकर कामन्दकी व लवंगिका बेहोश हो गई। कुछसमय पश्चात् सब होश में आ गये व अत्यन्त हर्षीभूत हुए। सौदामिनी ने माधव के नाम, राजा का, मकरन्द व मदयंतिका के विवाह के विषय में एक पत्र दिखाया तथा इस प्रकार कामन्दकी के प्रयत्न से दोनों मित्रों की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।

इसके बाद हर्षविभोर होकर अवलोकिता बुद्धरक्षिता और कलहंस आदि सब नृत्य गीतादि से परम उल्लास का प्रदर्शन करने लगे।

महावीर चरित

महावीर चरित की कथा रामायण की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। इसमें नाटक की दृष्टि से परिवर्तन व परिवर्धन कर कुछ काव्यात्मक चमत्कार उत्पन्न किए गये हैं।

इस नाटक में भवभूति ने प्रधान रूप से वीर रस का अन्यान्य रसों के साथ निपुणता पूर्वक उद्भावन किया है। सात अंकों में समाप्य यह नाटक नाटकीय गुणों से ओतप्रोत, सूर्यवंशियों के आदर्शों को प्रस्तुत करने में पूर्णतया सफल हुआ है।

प्रथम अंक : महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ होने वाला है। उन्होंने यज्ञ की रखवाली हेतु राम व लक्ष्मण को लाकर रख लिया है। यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए कुशध्वज के साथ सीता और उर्मिला भी जाती हैं। कुशध्वज राम एवं लक्ष्मण का परिचय पाकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं। इसी मध्य राम अहिल्योद्धार करते हैं। राम की महिमा देखकर कुशध्वज को सीता स्वयंवर की प्रतिज्ञा से खेद होता है। इसी मध्य रावण ने सीता से मंगनी के लिए दूत भेजा। उसके प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया जाता। राम ने ताड़का वध किया। दूत राक्षस पुनः खेदपूर्वक प्रस्ताव रखता है लेकिन उसे विश्वामित्र व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा द्वारा पुनः टाल दिया जाता है। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को दिव्यास्त्र दिये। राजा को उत्कण्ठित देखकर विश्वामित्र ने हर चाप मंगवाया। जिसे राम ने भंग किया। इस प्रकार चारों भाईयों की शादियां जनक तथा कुशध्वज की पुत्रियों के साथ निश्चित हुई। राम ने सुबाहु व मारीच का भी वध किया।

द्वितीय अंक : दूत राक्षस ने लंका लौटकर सारा वृत्तान्त लंकाधिपति मंत्री से सुनाया। उसकी चिंता बढ़ गई। उसने शूर्पणखा से राय ली, इसी समय दण्डकारण्यवासी निशाचरों से ऋषियों की रक्षा के लिए परशुराम का संदेश आया यह सुअवसर जानकर हरचाप भंजन राम के वध के लिए परशुराम को उकसाने का निश्चय हुआ। राम कन्यान्तःपुर में थे। दशरथ आदि उनके अभिभावक जनक का आतिथ्य ग्रहण कर रहे थे। इसी समय परशुराम ने आकर गुरु चापभंजन-राम को देखने की इच्छा प्रकट की।

राम को देखकर परशुराम को प्रीति हुई। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा-वश वे राम का वध करना चाहते हैं। इस अमंगल वृत्त से जनक व शतानन्द को बहुत दुःख हुआ। दशरथ ने परशुराम को समझाया फिर भी वे शान्त नहीं हुए। जनक अस्त्र ग्रहण करने पर व शतानन्द शाप देने पर उतारु हो गये। राम को अन्तःपुर में बुला लिया गया व सभी दशरथ विश्वामित्र के पास गये।

तृतीय अंक : परशुराम के क्रोध को शांत करने के लिए वशिष्ठ व विश्वामित्र ने उनके गुणों की तथा कुल एवं परम्परा आदि की भी प्रशंसा की। लेकिन परशुराम ने कहा कि आप हमारे श्रेष्ठ हैं, मान्य हैं, फिर भी मैं गुरु अपमान करने वाले इस क्षत्रिय का वध करूंगा। यह सुनकर दशरथ ने भी क्रोधित होकर अस्त्रों का आलम्बन करना चाहा, इसी समय राम आये। उन्होंने परशुराम वध की प्रतिज्ञा सुनाई।

चतुर्थ अंक : पराजित परशुराम ज्ञानोदय होने से तप करने चले गये। राम के अभ्युदय से राक्षसराज के मंत्री माल्यवान चिंतित होकर शूर्पणखा से परामर्श कर उसे मन्थरा बना मिथिला भेजते हैं। मंथरा ने कैकेयी के दो वरदान याद दिलाये। जिसमें भरत को राज्यगद्दी व राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास मांगा तथा राम-सीता व लक्ष्मण सहित वन चले गये। भरत के आग्रह से राम ने चरणपादुका दे दी, जिन्हें नन्दीग्राम में स्थापित कर भरत ने राज्य कार्य संभाला। राम वन की ओर चले। वहां खर आदि को मारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अंक : रावण ने सीता का हरण किया। उसकी खोज में भटकते राम-लक्ष्मण की जटायु से भेंट हुई जिसे रावण ने सीता की रक्षा करने से मृत्यु-प्रतीक्षा बना कर छोड़ा था। जटायु से सारी स्थिति ज्ञात कर राम-लक्ष्मण किष्किंधा की ओर बढ़ते हैं तथा रास्ते में विराध का वध करते हैं। वहां पहुंचकर सुग्रीव से मैत्री की तथा रावण द्वारा प्रेरित बाली का वध कर वानरों को सीता की खोज में भेजते हैं। मरने के समय बाली ने भी राम व सुग्रीव की मैत्री में दृढ़ता का बन्धन डाला।

षष्ठ अंक : बाली के मरने से चिंतित माल्यवान ने अपना पक्ष दुर्बल जानकर रावण को समझाने का प्रयत्न किया। लेकिन गर्वित रावण ने अपने पराक्रम को अजेय व सागर को दुस्तर कहकर चिंता को हृदय में स्थान नहीं दिया। राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी। राम-रावण का घोर युद्ध हुआ जिसमें एक-एक करके अनेक वीर कटने मरने लगे। मेघनाथ-लक्ष्मण युद्ध में मेघनाद-प्रयुक्त शक्ति से आहत लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। राम पक्ष में विषाद छा गया। हनुमान संजीवनी हेतु अनभिज्ञानवश पर्वत उठा लाये। औषधि से लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई। तदनन्तर घोर युद्ध हुआ जिसमें मेघनाद रावण आदि सभी मारे गये एवं सीता का उद्धार हुआ।

सप्तम अंक : रावण की मृत्यु के उपरान्त पूर्व प्रतिज्ञानुसार राम ने विभीषण को लंकाधिपति बनाया। विभीषण ने राजा बनते ही देव बन्दियों को मुक्त किया। लंका काण्ड समाप्त कर अग्नि शुद्ध की गई सीता को लेकर राम अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। विमान से राम सीता को मार्ग में आये समुद्र व अन्य रम्य स्थानों का परिचय देते हुए जा रहे थे। मार्ग में विश्वामित्र का आश्रम मिला। लेकिन उनके द्वारा शीघ्र अयोध्या पहुंचने का आदेश पाकर वे वहां रुके नहीं। तथा अयोध्या पहुंचकर भरतादि बन्धुओं से मिलने के बाद वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि पूज्य महर्षियों ने राम का राज्याभिषेक किया। इस प्रकार राम का वीरचरित समाप्त हुआ।

उत्तररामचरितम्

करण रस से ओतप्रोत भवभूति का यह सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें कवि ने कल्पना का प्रयोग कर राम के उत्तर चरित्र का वर्णन करके अद्भुत कलासृष्टि की है। सात अंकों में विभक्त यह नाटक महावीर-चरित का ही उत्तर भाग जान पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अंक : प्रारम्भ में ऋष्यशुंग के यज्ञ का वृत्तान्त मिलता है। राम को दुर्मुख नामक दूत से सीतापवाद विषयक सूचना मिलती है। और वे प्रजानुरंजन के लिए गर्भवती सीता का परित्याग कर देते हैं। इस भूमिका को अत्यन्त कुशलता व भावचातुर्य से भवभूति ने प्रयुक्त किया है। 'चित्रदर्शन' के अवसर पर सीताजी स्वयं ही गंगादर्शन की इच्छा व्यक्त करती हैं। माता की आज्ञा से गर्भवती सीता की इच्छा का पालन-रूप आदेश ही अनजाने में सीता का राम से बिछुड़ जाना होता है।

द्वितीय अंक : दूसरे अंक का प्रारम्भ बारह वर्ष के बाद होता है। आत्रेयी नामक तापसी तथा वासन्ती नामक वनदेवी के सम्भाषण से ही राम द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ व महर्षि बाल्मीकि द्वारा पालित दो प्रखर बुद्धि बालकों का पता चलता है। राम दण्डक वन में प्रवेश कर तपस्या कर रहे शूद्र शम्बूक का वध कर उसका उद्धार करते हैं। शम्बूक इसे तपस्या का फल मानता है।

तृतीय अंक : तपसा व मुरला दो नदियों के वार्तालाप से परित्यक्त सीता द्वारा प्राण विसर्जन हेतु नदी में कूदने व वहीं दो बालक लवकुश के जन्म देने के विषय में ज्ञात होता है। गंगा जी ने पुत्रों की रक्षा कर उन्हें बाल्मीकि को समर्पित किया। आज उनकी बारहवीं वर्षगांठ के अवसर पर भागीरथी ने सीता को उपास्यदेव सूर्य की उपासना करने की आज्ञा दी है। सीता को वरदान है कि उन्हें पृथ्वी पर देवता भी नहीं देख सकते- फिर पुरुष तो क्या? गंगादेवी जानती है कि राम अगस्त्याश्रम में लौटकर आते हुए पंचवटी जायेंगे, तथा पूर्व अनुभूत दृश्यों का स्मरण कर विक्षिप्त न हो जाएं इसलिए राम दर्शन कराने हेतु तपसा के संरक्षण में सीता को भेजा है। अनन्तर भगवान राम पंचवटी में सीता का स्मरण कर विक्षिप्त होते हैं जहां सीता उन्हें अदृश्य स्पर्श से प्रबुद्ध करती है। छाया नामक इस अंक में सीता के हृदय की शुद्धि हो जाती है।

चतुर्थ अंक : बाल्मीकि आश्रम में जनक, कौशल्या, वसिष्ठ आदि का आगमन होता है। कौशल्या व जनक आपस में मिलते हैं तथा सीता के कारण दुःखी होते हैं। वहां पर एक क्षत्रिय बालक लव को देखकर भावविह्वल होते हैं। जनक सीता का बाल्यकाल स्मरण करते हैं। अन्य ब्रह्मचारियों से यज्ञाश्व का समाचार सुनकर वह बालक भाग जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अंक : इस अंक में यज्ञाश्व के रक्षक चन्द्रकेतु से लव का वाद-विवाद होता है। दोनों बालकों में भ्रातृ स्नेह वश एक-दूसरे को देखकर भ्रातृजन्य प्रेम उत्पन्न होता है। लेकिन क्षत्रिय धर्म का स्मरण कर दोनों युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं।

षष्ठ अंक : एक विद्याधर युगल द्वारा दोनों के युद्ध का वर्णन मिलता है। इसी बीच रामचन्द्र जी के आ जाने से युद्ध रुक जाता है। कुश भी सूचना पाकर आ जाता है। राम के हृदय में बालकों को देखकर अत्यन्त प्रेम उमड़ पड़ता है, परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं हो पाता कि ये उनकी सन्तान हैं।

सप्तम अंक : इस अंक में गर्भांक नाटक का प्रयोग होता है। वहीं बाल्मीकि की योजना से सीता राम का मिलन होता है।

भास के नाटकों का सामान्य-परिचय

अलंकार-विहीन परन्तु रसयुक्त भावाभिव्यंजना करने में निपुण भास ने संस्कृत-नाट्य-साहित्य में प्रसाद, माधुर्य व ओज गुणों से परिपूर्ण तेरह नाटकों का अभूतपूर्व योगदान दिया। इनके सभी नाटकों में नवरसों का समावेश हुआ है तथा वैदिक संस्कृति की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि इन नाटकों के मूल कथानक प्राचीन ग्रन्थों पर ही आधारित हैं। भास के सभी नाटकों का शीर्षक भी स्वयं कथावस्तु का परिचय देता हुआ सा प्रतीत होता है। जो इस प्रकार है–

1. दूतवाक्य, 2. कर्णभार, 3. दूत घटोत्कच, 4. मध्यमव्यायोग, 5. पंचरात्र, 6. उरुभंग, 7. अभिषेक नाटक, 8. बालचरित, 9. अविमारक, 10. प्रतिमानाटक, 11. प्रतिज्ञायोगन्धरायण, 12. स्वप्नवासवदत्ता, 13. चारुदत्त।

उपरोक्त नाटकों में से प्रथम 6 नाटकों का आधार महाभारत है एवं अभिषेक नाटक एवं प्रतिमानाटक रामायण पर आधारित हैं जबकि बालचरित भागवत पर आधारित है। केवल चारुदत्त रूपक कल्पित कथामूलक है।

दूतवाक्यम्

इस महाभारतीय आख्यान के अनुसार उत्तरा व अभिमन्यु के परिणय के अवसर पर कौरवों व पाण्डवों के समझौते व कौरवों द्वारा पाण्डवों का राज्य वापिस कराने का पूर्ण प्रयास किया गया परन्तु पूर्णतः असफल होने पर युधिष्ठिर यह कार्य श्रीकृष्ण पर ही छोड़ते हुए, उन्हें ही दूत बनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तिनापुर भेजते हैं। गुरुजनों व समागत राजाओं के साथ मन्त्रणा करने हेतु दुर्योधन मन्त्रणागृह में प्रवेश करता है तभी कंचुकी पाण्डव-सेना से दूत बनकर आये नारायण कृष्ण के पधारने का सन्देश देता है। कृष्ण को नारायण सुनकर दुर्योधन कंचुकी को डांटता है व सभी उपस्थित राजाओं को कृष्ण के आगमन पर स्वागतार्थ खड़े होने पर, दण्ड देने का आदेश देकर स्वयं द्रौपदी-चीरहरण का चित्र देखते हुए पाण्डवों पर व्यंग्य कसा जाता है।

कंचुकी के साथ कृष्ण के प्रवेश करते हुए उपस्थित राजा सम्मान में उठ जाते हैं व दुर्योधन भी राजाओं को दण्ड का स्मरण दिलाता हुआ स्वयं सिंहासन से गिर पड़ता है। कृष्ण चित्रपट देखकर दुर्योधन से कहते हैं कि संसार में एतादृश क्षुद्र अन्य कौन होगा तो अपना ही दोष परिषद के सामने प्रस्तुत करे। दुर्योधन चित्रपलक हटाने का आदेश देकर स्वयं केशव से पाण्डव भाईयों का कुशलक्षेम पूछता है। केशव कुशलता के उपरान्त दुर्योधन से धर्मानुमोदित पाण्डवों के पिता का दाय लौटाने को कहते हैं। कृष्ण के साथ अनेकानेक प्रसंगों पर वाद-विवाद होता है तथा दुर्योधन कहता है कि राज्य का उपभोग बल से होता है अतः पौरुष दिखाकर ही राज्य दिया जा सकता है। कृष्ण के अनेक प्रकार से समझाने पर व पाण्डवों का पराक्रम वर्णित करने पर भी दुर्योधन पर कोई प्रभाव नहीं होता। कृष्ण परुषाक्षरों से भी दुर्योधन को भयभीत करते हैं। इस पर दुर्योधन उन्हें नीच कहकर सम्बोधित करता है। यह सुनकर कृष्ण जाने को उद्यत होते हैं। अतः दुर्योधन उन्हें बन्दी करने का प्रयास करता है। तब कृष्ण अपना विश्वरूप दिखाकर सबको जृम्भित कर देते हैं तथा सुदर्शन का आह्वान कर दुर्योधन को मारने की बात कहते हैं। इस पर सुदर्शन चक्र कहता है—प्रभो! आप धराभार को उतारने के लिये आये हैं अतः इसके अभी मर जाने से सभी क्षत्रिय युद्ध से विरत रह जायेंगे व आपका कार्य सिद्ध नहीं होगा। उसकी बात सुनकर, कृष्ण शांत होकर, पाण्डवशिविर में जाने के लिए तैयार होते हैं। इसी समय धृतराष्ट्र आकर भगवान को अनुनय-विनय से मनाते हैं तथा भगवान की आज्ञा से लौट जाते हैं। इसके बाद भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णभारम्

इस नाटक में युद्ध स्थान का वर्णन है। सूत्रधार कर्ण से अर्जुन के आगे बढ़ने का निवेदन करने को कहता है व भट युद्ध में अपराजेय अर्जुन के आगे बढ़ने व नागकेतु दुर्योधन के भी युद्ध के लिए प्रस्थान करने का समाचार कर्ण को देता है।

कर्ण सारथि शल्य से रथ अर्जुन के सामने ले चलने को कहता है व स्वयं अपने अस्त्रों के व्यर्थ सिद्ध होने पर चिंतित है। इस प्रकार सोचते हुए कर्ण शल्य से परशुराम द्वारा ब्राह्मणरूप में अस्त्र प्राप्ति व परशुराम के आराम हेतु वज्रमुख नामक कीड़े के काटने पर भी धैर्य धारण करने से क्षत्रियोचित गुणों के द्वारा परशुराम द्वारा शापित होने से अस्त्र व्यर्थता का वर्णन करता है। कर्ण की अस्त्र व्यर्थता से शल्य चिंतित होते हैं व पश्चात्ताप करते हैं। इस पर कर्ण शल्य को–'जीतने पर यश मिलेगा व मरने पर स्वर्ग; दोनों ही संसार में प्रशंसित हैं'–इस कथन से आश्वस्त होकर युद्ध की ओर चलने को प्रेरित करते हैं।

इसी समय नेपथ्य से भिक्षा मांगने का स्वर सुनाई देता है जिसे सुनकर कर्ण आश्चर्यचकित हो ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को प्रणाम करते हैं। उत्तर में इन्द्र असमंजस में पड़कर यशस्वी होने का आशीर्वाद देते हैं। आयुष्मान् होने का नहीं, जिससे आश्चर्यचकित हो कर्ण पहले तो कारण जानना चाहते हैं फिर स्वयं ही, यही उपयुक्त जानकर कहते हैं कि–धर्म तो साध्य है, व लक्ष्मी चंचल, प्रजा पालक राजा मृत्यु के पश्चात् यश से ही जीवित रहता है अतः आप अपना प्रयोजन बताइये। इन्द्र ने कर्ण से बड़ी भिक्षा देने को कहा लेकिन कर्ण के द्वारा दी जाने वाली क्रमशः सहस्त्रों गायों, अश्वों, हाथियों व स्वर्ण, सम्पूर्ण पृथ्वी तथा अग्निष्टोम यज्ञ का फल; अन्ततोगत्वा शिर सभी वस्तुओं के लिए इंकार किये जाने पर कर्ण जन्म के साथ ही प्राप्त कवच व कुण्डल देना चाहते हैं जिसे सुनकर इन्द्र अपनी कार्यसिद्धि पर प्रसन्न हो मांग लेते हैं। शल्य द्वारा रोके जाने पर भी कर्ण उन्हें दान की महत्ता समझाते हुए कवच, शरीर से काटकर, इन्द्र को दे देते हैं। इन्द्र के चले जाने पर शल्य कर्ण से इन्द्र के द्वारा ठगे जाने की बात कहते हैं जिस पर कर्ण इन्द्र को ही स्वयं के द्वारा उपकृत मानकर ठगे हुए सिद्ध करते हैं। तभी इन्द्र का भेजा हुआ देवदूत एक पाण्डव को मारने में समर्थ विमला नामक अमोघ शक्ति लेकर आता है, जिसे कर्ण दान का प्रतिग्रहण मानकर अस्वीकार करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पुनः देवदूत ब्राह्मण का वचन स्वीकार करने को कहते हैं। कर्ण ब्राह्मणाज्ञा मानकर स्वीकार कर लेते हैं, फिर देवदूत चला जाता है।

कर्ण और शल्य कृष्ण के शंख की ध्वनि सुनते हुए अर्जुन के रथ की ओर बढ़ते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

दूत-घटोत्कच

इस नाटक में अभिमन्यु मरणोपरान्त की घटनाओं का वर्णन है। अर्जुन को संशप्तकगणों के द्वारा दूर हटाकर व छल-कपट से कौरवों द्वारा निहत्थे व एकाकी अभिमन्यु को मार डाला गया। यह वृत्तान्त सुनाने के लिए भट जयत्रात धृतराष्ट्र के पास जाता है। वहीं बैठी गान्धारी भी यह वृत्तान्त सुनकर धृतराष्ट्र के साथ शोक करती है। तथा बेटी दुश्शला भी बैठी है, जो कहती है कि उत्तरा को वैधव्य देने वाले ने अपनी पत्नी को भी विधवा कर दिया। धृतराष्ट्र-गान्धारी कुल-नाश निकट जानने लगते हैं तथा भट से पाण्डवों रूपी अग्नि का स्वयं को ईंधन बनाने वाले का नाम पूछते हैं, और इसका निमित्त जयद्रथ को जानकर उनका मारा जाना निश्चित मान लेते हैं। बेटी दुश्शला को रोती जानकर दोनों उसे समझाते हैं। लेकिन वह कहती है कि कृष्ण संरक्षण में पले, बलराम को प्रसन्नता देने वाले, देवतुल्य पराक्रमी पांडवों के प्रीति प्राप्त अभिमन्यु को मारकर कौन जीवित रह सकता हैं। दुर्योधन व शकुनि अभिमन्यु के वध को अपनी जीत व पाण्डवों की पराजय मानकर प्रसन्न होते हैं तथा दुर्योधन पिता को अभिवादन करने जाना चाहते हैं। शकुनि उन्हें रोकते हैं लेकिन दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास जाते हैं। धृतराष्ट्र के इस कार्य की भर्त्सना करने पर दुर्योधन यह कार्य छल से भीष्म पितामह को मारने का प्रत्युपाय बताते हैं लेकिन धृतराष्ट्र उसे अर्जुन के पराक्रम एवं शोक से मिश्रित क्रोध का स्मरण कराते हैं तथा उसका पराक्रम विभिन्न प्रकार से वर्णित कर प्रमाण देते हैं। दुर्योधन इस पर कर्ण के पराक्रम की बात कहते हैं। धृतराष्ट्र उसकी दयालुता व शापित होने की बात बताते हैं। शकुनि कहता है कि आप सदैव हमारी अवमानना किया करते हैं लेकिन धृतराष्ट्र शकुनि को द्यूतक्रीडा द्वारा बोई गई वैराग्नि की याद दिलाते हैं तथा इस अग्नि को शिशु-आहुति से भी शान्त न होने की बात कहते हैं। इसी बीच अर्जुन की सूर्यास्त तक जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा का समाचार मिलता है जिसे सुनकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्योधन आदि प्रसन्न होते हैं एवं द्रोण द्वारा रची हुई व्यूह रचना से जयद्रथ के छिपने व अर्जुन के चिंतारूढ़ होने की आशा करते हैं लेकिन धृतराष्ट्र अर्जुन के बाणों से आकाश, पाताल अथवा पृथ्वी पर कहीं भी जयद्रथ का बच पाना असम्भव बताते हैं।

इसी समय हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच श्री कृष्ण का सन्देश लेकर कि एक पुत्र के मरने से अर्जुन जब इतना दुखी है तो सौ पुत्रों के वध से आपको कितना कष्ट होगा अतः आप सम्पूर्ण सेना युद्ध से विरत कर दें। 'ऐसा कहता हुआ उपस्थित होता है। ज़िसे सुनकर धृतराष्ट्र उसके प्रति सम्वेदना प्रकट करते हैं व दुर्योधन आदि हंसते है।। तथा कृष्ण व पाण्डवों का उपहास करते हैं। इस पर घटोत्कच उन्हें राक्षसों से भी क्रूर कहता है। दुर्योधन उसे डांटता है, कि पृथ्वी पर समस्त राजा जिसका आदेश मानते हैं उसेक समक्ष तुम संदेश लेकर उपस्थित हुए हो। घटोत्कच उसे श्रीकृष्ण का पराक्रम व क्षत्रियों के विनाश से पृथ्वी हल्की होने की बात सुनाता है। इस पर दुर्योधन से उसका विवाद बढ़ जाता है, जिसे धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। अन्त में चलते हुए वह कृष्ण का सन्देश इस प्रकार सुनाता है—

"धर्म का आचरण करो, स्वजनों की उपेक्षा न करो, जो कुछ तुम्हारे मन में अभीष्ट हो सभी इस पृथ्वी पर कर डालो, क्योंकि अर्जुन रूपधारी यमराज तुम्हारे पास सूर्य की किरणों के साथ अनुकल उपदेश की तरह आयेंगे।"

मध्यम-व्यायोग

कुरुजांगल प्रदेश के यूपग्राम का निवासी माठरगोत्रीय अध्वर्यु केशवदास अपने मातुल यज्ञबन्धु के पुत्र के उपनयन संस्कार में शामिल होने के लिये परिवार सहित उस जंगल में होकर जा रहा है जहां पाण्डव निवास करते हैं। मार्ग में हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच साक्षात् मृत्यु के समान उनका पीछा कर रहा है। डरे हुए ब्राह्मण व उसके परिवार को देखकर राक्षस मन में सोचता है कि यद्यपि ब्राहाण पृथ्वी पर अवध्य है तथापि माता की आज्ञावशात् मुझे यह अकरणीयकर्म करना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणी अपने पति से सहायतार्थ किसी को पुकारने को कहती है। ब्राह्मण वन को निर्जन जानकर चिन्तातुर होता है। तभी उसे युद्धप्रिय, दयालु व शरणागतवत्सल पाण्डवों का स्मरण होता है। लेकिन परस्पर वार्तालाप से उनके भी अनुपस्थित होने की बात जानकर ब्राह्मण राक्षस से ही मोक्ष का उपाय पूछता है। राक्षस माता की आज्ञा से भोजन हेतु मानव ले जाने की बात कह तीनों पुत्रों में से एक पुत्र को देने की बात कहता है। यह सुनकर ब्राह्मण पुत्रों की अपेक्षा स्वयं को उसे अर्पण करना चाहता है, पतिव्रत धर्म का पालन कर ब्राह्मणी पति के बदले स्वयं जाना चाहती है लेकिन राक्षस कहता है कि मेरी माता को स्त्री अभीष्ट नहीं है। इस पर ज्येष्ठ पुत्र परिवार की रक्षा हेतु जाना चाहता है। छोटा भाई दोनों बड़े भाइयों की रक्षा करना अपना कर्तव्य मानकर जाने को उद्यत होता है। इस पर ज्येष्ठ पुत्र आपदग्रस्त पिता व परिवार की रक्षा करना अपना धर्म बताकर स्वयं जाना चाहता है लेकिन वृद्ध ब्राह्मण ज्येष्ठ पुत्र अतिप्रिय होने की बात व कनिष्ठ पुत्र माता को प्राणों से प्रिय होने की बात कहता है। अन्त में मध्यम पुत्र माता-पिता का अनिष्ट न चाहते हुए उन सभी से आज्ञा लेकर व क्रम से प्रणाम कर राक्षस के साथ चल देता है। चलते समय मध्यम पुत्र घटोत्कच से समीपवर्ती जलाशय में जलपान करने की आज्ञा मांगता है जिसे घटोत्कच शीघ्र लौटकर आ जाने की अनुमति देकर मान लेता है और स्वयं वहीं रुक जाता है।

मध्यम पुत्र के लौटने में विलम्ब जानकर घटोत्कच उसे मध्यम कहकर पुकारता है। पास ही वन में भीम अर्जुन द्वारा स्वयं को पुकारा जाना समझ कर वहां उपस्थित होते हैं। अपने ही समान बलशाली व सुपुष्ट शरीरवाले को वहां देखकर वह आश्चर्यचकित होता है तथा घटोत्कच भीम के दर्शनीय व्यक्तित्व को देख, ठिठक कर पूछता है—आप मध्यम हैं? वे कहते हैं—हां मैं ही मध्यम हूं। ब्राह्मण उनका पाण्डव भीम होना समझ कर प्रसन्न हो जाता है। इतने में ब्राह्मण पुत्र मध्यम आता है व घटोत्कच के साथ चल देता है। ब्राह्मण भीम से रक्षा की प्रार्थना करता है तथा अपना वृत्तान्त सुनाता है। भीम उसे आश्वासन देकर घटोत्कच को ब्राह्मण वध पाप है, यह समझाते हैं। लेकिन राक्षस माता की आज्ञा के समक्ष साक्षात् पिता की आज्ञा को भी अस्वीकार करने की बात कहकर अपनी माता हिडिम्बा का नाम बताता है। भीम उसे पहचान कर उसकी मातृभक्ति से प्रसन्न होकर ब्राह्मण पुत्र के बदले में स्वयं को ले जाने की बात कहते हैं। घटोत्कच पहले उनसे बाहुयुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा माया युद्ध करता है लेकिन जब कोई प्रभाव नहीं देखता तो उसके वचनों का स्मरण करा कर उन्हें माता के समक्ष ले जाता है। हिडिम्बा उन्हें पहचान कर पुत्र का परिचय कराती है व घटोत्कच भी क्षमा मांग कर प्रणाम करता है। भीम भी उसे गले लगा लेते हैं। अन्त में ब्राह्मण के चरणों में भी घटोत्कच नत मस्तक होता है व मंगलवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

पंचरात्र

यह तीन अंकों में समाप्य महाभारत के विराटपर्व पर आधारित नाटक है।

प्रथम अंक : द्यूत में पराजित पाण्डव तेरह वर्षों के अज्ञातवास में विराट के यहां छद्मवेश में अज्ञातवास कर रहे हैं। कुरुराज दुर्योधन यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञ पूर्ण समारोह के साथ समाप्त होता है। युद्ध समाप्ति के उपरान्त दुर्योधन गुरु द्रोणाचार्य से दक्षिणा मांगने का आग्रह करता है। बहुत आग्रह करने पर द्रोण कहते हैं कि किसी वस्तु की मुझे अपेक्षा नहीं है पर यदि दक्षिणा देना ही चाहते हो तो वन में इधर-उधर भटकने वाले पाण्डवों को उनका राज्य दे दो। दुर्योधन शकुनि व मित्र कर्ण से मन्त्रणा करता है। कर्ण भ्रातृ हिस्से में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे परन्तु शकुनि कुटिलता पूर्ण वाक्यों से कहते हैं कि यदि पांच रातों के भीतर पाण्डवों का पता लग जाये तो वह उनका भाग देने को प्रस्तुत है। विराट नगर से विराट को लेने गया हुआ दूत आकर सन्देश देता है कि विराट के सम्बन्धी सौ कीचक भाईयों को किसी व्यक्ति ने बाहों से ही उठाकर मार डाला अतः शोकातुर वे यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुए। यह सन्देश सुनकर भीष्म व द्रोण यह कार्य पाण्डवों द्वारा किया हुआ जानकर दुर्योधन की शर्त मान लेते हैं। भीष्म पाण्डवों को प्रत्यक्ष करने के उद्देश्य से कौरवों को विराट के गोधन हरण की सलाह देकर आक्रमण कर देते हैं।

द्वितीय अंक : यह अंक विराट के गोधन की निवास भूमि से प्रारम्भ होता है। गोपालक विराट के जन्म दिवस की खुशी में नाच रहे हैं। तभी कौरव आकर गोधन का हरण कर लेते हैं। भट द्वारा यह समाचार पाकर विराट भगवान नामक ब्राह्मण जो स्वयं युधिष्ठिर थे उन्हें युद्ध का सन्देश देकर युद्ध के लिए चलने को तैयार होते हैं। तभी उन्हें पता चलता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार उत्तर वृहन्नला को सारथि बनाकर युद्ध के लिए जा चुके हैं। वृहन्नला को सारथि बनाकर जाना सुनकर राजा चिंतित होते हैं लेकिन भगवान बने युधिष्ठिर उन्हें ढांढस बंधाते हैं। भट उन्हें रथ के श्मशान की ओर जाने व कौरव सेना में अभिमन्यु को छोड़कर, अन्य सभी के परास्त होने की सूचना देता है। तदनन्तर गोधन की रक्षा होने व धृतराष्ट्र के परास्त होने की सूचना मिलती है। विराट बृहन्नला को युद्ध का वृत्तान्त जानने हेतु बुलाते हैं। इसी समय भोजन बनाने में नियुक्त भीमसेन अभिमन्यु को पकड़कर वहां उपस्थित होते हैं। अभिमन्यु राजा विराट से निर्भीकता से बात करते हैं तथा अपने मध्यम पिता द्वारा छुड़ाकर ले जाने की बात करते हैं। राजकुमार उत्तर-प्रवेश कर युद्ध का वृत्तान्त सुनाते हैं तथा सभी पाण्डवों का भेद विराट पर प्रकट हो जाता है। सब प्रसन्नता से मिलते हैं। राजा विराट अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन से करना चाहते थे। लेकिन अर्जुन अभिमन्यु के लिए उत्तरा को स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रस्ताव का सभी अनुमोदन करते हैं। एवं राजकुमार उत्तर को यह सन्देश देने भीष्म पितामह के पास भेजते हैं।

तृतीय अंक : इस अंक में सूत कौरवों के दरबार में अभिमन्यु के पकड़े जाने का समाचार लेकर जाता है। इसे सुनकर द्रोण भीष्म आदि उत्तेजित हो जाते हैं तथा बाहुओं से अकेले पकड़कर ले जाने वाले को भीम ही बताते हैं, लेकिन शकुनि व दुर्योधन यह सुनकर क्रोधित हो जाते हैं तथा कहते हैं कि आपको केवल पाण्डव ही बलवान दिखते हैं। सूत कहता है कि जिस बाण ने आपकी ध्वजा को विद्ध किया वह अर्जुन के नाम वाला ही बाण था। दुर्योधन इसे भी कोई अन्य अर्जुन बताता है व प्रत्यक्ष देख लेने के बाद ही राज्यांश देने को कहता है।

इसी समय दूत रूप में राजकुमार उत्तर, आकर युधिष्ठिर को अभिमन्यु व उत्तरा के विवाह-उत्सव रूपी सन्देश को सुनाते हैं। द्रोण तत्काल दुर्योधन को गुरु दक्षिणा का स्मरण कराते हैं तथा दुर्योधन यह कहकर स्वीकार कर लेते हैं कि सत्य बना रहेगा तो मरने के बाद भी हम यश-शरीर से जीवित रहेंगे।

भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उरुभङ्ग

यह नाटक महाभारत-युद्ध के अन्तिम अंश भीम व दुर्योधन के गदा युद्ध से सम्बन्ध रखता है। समस्त कौरव सेना विनष्ट हो चुकी है। केवल दुर्योधन बचा है। सूत्रधार युद्ध स्थल का वर्णन करने के उपरान्त गदायुद्ध की ओर संकेत करता है।

युद्धभूमि में कुपित पराक्रमी भीम व गदायुद्ध में निष्णात दुर्योधन गदायुद्ध कर रहे हैं व बलराम तथा कृष्ण सहित समस्त व्यक्ति दर्शक बने हैं, सहसा दुर्योधन के गदाघात से भीम मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं जिसे देखकर विदुरादि खिन्न हो जाते हैं। बलराम शिष्य की निपुणता से प्रसन्न होते हैं। तभी कृष्ण भीम को कुछ संकेत करते हैं। भीम पुनः उठकर दुर्योधन की जंघा पर गदाप्रहार कर उनकी जंघा तोड़ देते हैं। वह जमीन पर गिर पड़ता है। बलदेव शिष्य की यह अवस्था देखकर तथा मर्यादा के विपरीत गदाप्रहार को देखकर क्रोधित होकर हल से भीम का वक्षस्थल चीरने की बात कहते हैं। यह सुनकर दुर्योधन उन्हें शान्त करते हुए कहते हैं कि मैं छल से मारा गया हूं, आपका यह समझना ही मेरे लिए पर्याप्त है, कुरुकुल को जलांजलि देने के लिए पाण्डवों को जीवित रहना चाहिए क्योंकि वैर-वैर की कथा व हम लोग तो अब नष्ट हो चुके हैं। मुझे भीम ने नहीं अपितु क्षीरसागरशयी भगवान कृष्ण ने गदा में प्रविष्ट कर मुझे काल का ग्रास बनाया।

इसी समय धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुर्योधन की पत्नियां व पुत्र भी वहां आकर शोक करते हैं। दुर्योधन सबको वीरोचित सान्त्वना देते हैं व अपनी शान का वृत्तान्त सुनाकर दुख त्यागने को कहते हैं तथा अपने पुत्र को जलांजलि देने के समय युधिष्ठिर के साथ बैठने का उपदेश देते हैं।

इसी समय गुरु पुत्र अश्वत्थामा आकर पाण्डवों को मारने का वचन देता है लेकिन दुर्योधन उन्हें शान्त कर अपने भाईयों–पितामह, कर्ण आदि के वध की बात सुनाकर धनुष त्यागने की बात करते हैं। गुरु पुत्र अश्वत्थामा के व्यंग्य करने पर कहते हैं कि मैंने जितने अपमान पाण्डवों के किये हैं उसकी अपेक्षा मेरे साथ किया गया यह व्यवहार कम है। अतः क्रोध त्याग दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वत्थामा दुर्योधन पुत्र दुर्जय का वहीं राज्याभिषेक कर देता है। तथा धृतराष्ट्र व गांधारी वनों को चले जाते हैं। अश्वत्थामा भी धनुष लेकर सौप्तिक गणों के वध के लिए चले जाते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

अभिषेक नाटक

भास का यह नाटक राम कथा पर आधारित है। इस नाटक में राम के वनगमन के उपरान्त सीताहरण के पश्चात् की घटनाओं का वर्णन है। इस नाटक में छः अंक हैं।

प्रथम अंक : नाटक का प्रारम्भ किष्किन्धा प्रदेश में सुग्रीव व राम की मैत्री से होता है। सुग्रीव को उसके भाई बालि ने राज्य से निर्वासित कर उसकी पत्नी व धन का हरण कर लिया है। राम उससे मैत्री कर बालि को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। राम ने सात वृक्षों को एक ही बाण से गिराकर धराशायी कर दिया, उसके इस पराक्रम से सुग्रीव आश्वस्त होकर बालि को युद्ध के लिए ललकारते हैं। युद्ध के आह्वान को सुनकर बालि उत्तेजित हो जाता है तथा तारा के बहुत समझाने पर भी लक्ष्मण व हनुमान से युद्ध करता है। बालि की सबलता देखकर श्रीराम उस पर बाण चलाकर उसे मूर्च्छित कर देते हैं। बाण पर श्रीराम का नाम खुदा हुआ देखकर व सामने राम को साक्षात् पाकर बालि कहता है, भगवन्! आप राजधर्म में पारंगत होकर भी मुझे इस प्रकार छल व अन्याय से मारकर अपकीर्ति के पात्र बने। राम कहते हैं कि तू अगम्या गमन के कारण दोषी है क्योंकि तूने भातृनारी का अभिमर्षण किया है इसलिए तुम वध्य हो। बालि द्वारा सुग्रीव को भी इसी अपराध का दोषी बताने पर राम कहते हैं कि ज्येष्ठ भाई की स्त्री का अभिमर्षण कहीं कहीं होता है।

इसी समय अंगद व स्त्रियां वहां पहुंचते हैं। अंगद को बाली राम व सुग्रीव के हाथों सौंपकर प्राण त्याग देता है। राम लक्ष्मण को सुग्रीव का अभिषेक करने की आज्ञा देते हैं।

द्वितीय अंक : इस अंक के प्रारम्भ में सभी दिशाओं को सीता की खोज में निकले वानर तो लौट आये लेकिन दक्षिण दिशा से अभी नहीं आये तथा जटायु से सीता का समाचार प्राप्त कर हनुमान समुद्र पार कर लंका पहुंच गये। लंका में अशोक वाटिका में राक्षसियों से घिरी सीता बैठी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान पेड़ पर छिपकर यह दृश्य देखते हैं। रावण सीता से प्रणय का प्रस्ताव करता है लेकिन वे अस्वीकार कर देती हैं। स्नानवेला होने से रावण वहां से चला जाता है। यही उचित अवसर जानकर हनुमान प्रकट हो जाते हैं। तथा राम की वियोगावस्था का वर्णन करते हैं। हनुमान जी शीघ्र ही राम को लाने का विश्वास देकर सीता से अनुमति लेते हैं तथा अपने आने का समाचार रावण को देने के लिए चित्रकूट पर्वत को उजाड़ते हैं।

तृतीय अंक : हनुमान के उपवन विध्वंस का वृत्तान्त शंकुकर्ण नामक अनुचर रावण से कहता है। रावण उसे बांध देने की आज्ञा देते हैं। लेकिन अनुचर बताता है कि वानर ने पांच सेनापतियों सहित कुमार अक्ष को भी मुट्ठी में भरकर मार डाला। यह सुनकर रावण स्वयं उसे मारने के लिए जाना चाहते हैं लेकिन शंकुकर्ण कहता है कि इन्द्रजित उसे मारने गये हैं। आपकी आवश्यकता नहीं है। रावण को हनुमान के बांधे जाने का सन्देश मिलता है, वे विभीषण को दरबार में बुलवाते हैं तथा हनुमान को लेकर राक्षस भी वहां आ जाते हैं। हनुमान स्वयं को राघवेन्द्र राम का दूत बताकर उनसे सीता को छोड़ने का प्रस्ताव रखते हैं जिसका समर्थन विभीषण भी करते हैं। रावण रुष्ट होकर राम तथा विभीषण का कटु वचनों से सत्कार करते हैं तथा हनुमान व विभीषण दोनों को निकलवा देते हैं। विभीषण भी श्रीराम की शरण में जाने के लिए चल देता है।

चतुर्थ अंक : यह अंक राम के शिविर से प्रारम्भ होता है। हनुमान से सीता का सन्देश प्राप्त कर समस्त वानर सेना समुद्र पार करने के लिए समुद्र के निकट आ जाती है और इसी समय आकाश से विभीषण उतरते दिखाई पड़ते हैं। हनुमान उन्हें पहचान कर श्रीराम की शरण में ले जाते हैं। राम सत्कारसहित उनको आश्रय देते हैं। समुद्र पार करने की मंत्रणा होती है। विभीषण की सलाह से दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर समुद्र से मार्ग मांगने के लिए राम शरसंधान करते हैं तभी वरुण देव प्रकट होकर सेना को मार्ग दे देते हैं तथा सेना का शिविर सुबेल पर्वत पर बनाया जाता है। सेना में शक व सारण नामक राक्षस बन्दर का वेश बनाकर गुप्तरूप से मिलते हैं। राम उन्हें पहचानकर व रावण को यह सन्देश देकर विदा करते हैं कि मैं युद्ध का अतिथि बनकर आ गया हूं।

पंचम अंक : इस अंक के प्रारम्भ में कंचुकी के द्वारा युद्ध प्रारम्भ होने व कुम्भकर्ण आदि प्रमुख वीरों के युद्ध में मारे जाने का सन्देश मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रजित लड़ने के लिए निकल चुका है। रावण के निर्देश से विद्युज्जिह्व नामक राक्षस राम व लक्ष्मण के सिर की प्रतिकृति लाता है। राक्षसीगणों से परिवृत्ता सीता के पास जाकर रावण राम-लक्ष्मण को मारने व उनके सिरों की प्रतिकृति दिखाकर अपना वरण करने की बात कहता है। सीता रावण का तिरस्कार कर राम के लिए विलाप करती है। तभी एक राक्षस आकर तापसियों के द्वारा इन्द्रजित के मारे जाने का निवेदन करता है जिसे सुनकर रावण मूर्च्छित हो जाता है और सचेत होने पर विलाप करने लगता है तथा क्रुद्ध होकर सीता को ही मारना चाहता है तभी वहां उपस्थित राक्षस उसे स्त्री वध से रोकता है। रावण युद्ध के लिए चल देता है।

षष्ठ अंक : इस अंक में राम-रावण युद्ध का दृश्य तीन विद्याधर देखते हुए वर्णित करते हैं। इस भयानक युद्ध में दोनों वीर लड़ रहे हैं। राम के लिए इन्द्र का सारथि मातलि दिव्य रथ लाता है जिस पर चढ़कर राम रावण को मार देते हैं व विभीषण लंका राज्य का अधिकारी होता है। सीता अग्निपरीक्षा देकर राम से मिलती है। नेपथ्य में दिव्य गन्धर्व भगवान राम को नारायण कहकर स्तुति करते हैं। समस्त देवता देवर्षि और ऋषिगण भगवान राम का अभिषेक करते हैं। भरत, शत्रुघ्न और प्रजाजन भी उपस्थित होते हैं। अभिषेक के अवसर पर दशरथ भी वहां उपस्थित रहते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

बाल चरित

यह नाटक भगवान कृष्ण की बाललीलाओं पर आधारित, पुराणों के प्रसंग पर बना पांच अंकों में समाप्य नाटक है।

प्रथम अंक : इस अंक में देवर्षि व देवताओं की उपस्थिति में भगवान कृष्ण का जन्म होता है। वसुदेव इस अद्‌भुत बालक को लेकर मथुरा से बाहर निकलते हैं लेकिन सघन अन्धकार व जल-परिपूर्ण यमुना से मार्ग नहीं मिलता। वे तैरकर यमुना पार करना चाहते हैं। तभी आश्चर्यजनक घटना होती है। यमुना दो भागों में विभक्त होकर मार्ग दे देती है। वसुदेव यमुना पार कर नन्दगोप पर पूर्व किये उपकार का स्मरण कर वहीं जाना चाहते हैं लेकिन रात्रि होने से न्यग्रोध वृक्ष के नीचे बैठकर प्रात:काल होने की प्रतीक्षा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवलीला से उसी रात नन्दगोप की पत्नी यशोदा कन्या को जन्म देकर प्रसववेदना से मूर्च्छित हो जाती है तथा कन्या भी मृत्यु को प्राप्त हो जाती है जिसे लेकर नन्द यमुना में विसर्जित करने जाते हैं तथा तर्क-वितर्क व सन्ताप कर रहे हैं जिसे सुनकर वसुदेव उन्हें पहचानकर पुकारते हैं। पहले तो नन्द भूत की आशंका कर उनके पास नहीं जाते परन्तु पुनः पहचाने जाने पर जाते हैं। वसुदेव अपनी करुण कथा सुनाकर नन्द से बालक को ले जाने की बात करते हैं। पहले तो नन्द कंस के भय से इन्कार करते हैं लेकिन बाद में वसुदेव के उपकारों का स्मरण कर बालक को ले जाते हैं तथा वसुदेव भी कन्या को लेकर यमुना मार्ग से घर लौटते हैं। रास्ते में कन्या जीवित हो जाती है। मथुरा में सभी पूर्ववत् सोये हैं। वसुदेव अपने घर चले जाते हैं।

द्वितीय अंक : यह अंक कंस के राजमहल से प्रारम्भ होता है। उसे चाण्डाल युवतियां दिखाई पड़ती हैं जो उसका परिहास करती हैं। कंस उन्हें भगाता है। मधूक ऋषि का शाप अलक्ष्मी, खलति, कालरात्रि, महानिद्रा और पिंगलाक्षि कंस की राजलक्ष्मी भी उन्हें रोकती है लेकिन विष्णु की आज्ञा समझ कर चली जाती हैं। कंस ज्योतिषियों से इसका अर्थ पूछता है। ज्योतिषी बंताते हैं कि लोकोपकार के लिए कोई दैवी प्राणी भूतल पर अवतरित हुआ है। राजा कंचुकी से पूछता है कि आज रात को किस व्यक्ति के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ है।-अनुचर देवकी के कन्या उत्पन्न होने का समाचार देता है। कंस विश्वास नहीं करता लेकिन कंचुकी के शपथ लेने से विश्वास कर व सुदेव को बुलाकर कन्या मांगता है। धात्री कन्या लाती है। कंस उसे शिला पर पटक देता है। तभी उसका एक भाग जमीन पर वदूसरा तेजोमय अंश आकाश में जाकर कात्यायनी के रूप में प्रकट होता है जो कंस का नाश करने को कहती है।

तृतीय अंक : इसमें गोपालगण गौओं को चराते हुए श्रीकृष्ण की पराक्रम गाथा गा रहे हैं। नन्दगोप के घर बालक का जन्म होने से गोधन में महान वृद्धि हुई है। उस बालक ने बचपन में ही पूतना, शकट, धेनुक, केशी व यमलार्जुन आदि दानवों का वध कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। संकर्षण बलदेव ने प्रलम्ब नामक असुर का वध कर दिया। गोपालों व गोप कन्याओं के साथ कृष्ण हल्लीसक नामक नृत्य करते हैं। इसी समय अरिष्टवृषभ नामक दानव गौओं को सन्ताप देता है। कृष्ण उसका वध करते हैं व कालिया नाग का भी दर्प प्रशमन करने के लिए चल देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अंक : इस अंक में श्रीकृष्ण गोपिकाओं के मना करने पर भी उन्हें सान्त्वना देकर कालियह्द में प्रवेश कर कालिय-दमन कर उसके फणों पर अपना चरण-चिह्न बनाकर उसे गरुड़ सन्ताप से मुक्त कर अपना शरणागत बना लेते हैं। कालिय ह्द से निकल कर चला जाता है व भगवान श्रीकृष्ण गोप-गोपिकाओं से आकर मिलते हैं। इसी समय कंस के यहां से भट आकर धनुर्यज्ञ में निमन्त्रण का सन्देश देता है जिसे श्रीकृष्ण कंस का वध करने की इच्छा से स्वीकार कर लेते हैं।

पंचम अंक : कंस कृष्ण व बलराम को पहलवानों से मरवाने की बात कहता है। तभी भट आकर बलराम व कृष्ण के पराक्रम व चमत्कारों का वर्णन करता है। तथा धनुशाला में जाकर धनुष भंग करने का समाचार सुनाता है। राजा चाणूर व मुष्टिक को उन गोप बालों के साथ युद्ध करने की आज्ञा देकर स्वयं राजप्रासाद पर चढ़कर युद्ध देखता है। कृष्ण व बलराम दोनों से युद्ध कर उन असुरों को मार देते है।। व कृष्ण राजप्रासाद पर चढ़कर कंस का सिर पकड़कर नीचे गिरा देते हैं। कंस प्राण त्याग देते हैं। कंस की सेना युद्ध के लिए सन्नद्ध होती है तभी कृष्ण व बलराम, वसुदेव के पुत्र हैं यह बात प्रकट होती है। वसुदेव के निर्देश से उग्रसेन को कारागार से मुक्त कर अभिषेक कर दिया जाता है। वृष्णिराज्य की पुनः प्रतिष्ठा होती है।

आकाश से पुष्पवृष्टि होती है। देवर्षि नारद भगवान का गुणगान करते हुए प्रकट होते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

अविमारक

छः अंकों का यह नाटक सौवीर-राजकुमार अविमारक तथा कुन्ती-भोज की कन्या कुरंगी के प्रणय व्यापार पर आश्रित है। यह नाटक लोककथा पर आधारित है। अविमारक काशिराज की पत्नी सुदर्शना में अग्नि से उत्पन्न हुए हैं। सुदर्शना ने अपने इस पुत्र को सुलोचना को दे दिया। इस वृत्तान्त का किसी को पता नहीं था। सौवीर राज के यहां विष्णुसेन नाम से इस पुत्र का लालन-पालन हुआ। चण्डभार्गव नामक ऋषि के शाप से सौवीर-राज अंत्यज वेष में एक साल से रह रहे थे।

प्रथम अंक : राजा कुन्तीभोज की कन्या कुरंगी उद्यान में टलह रही है। राजा रानी पुत्री के यौवनावस्था को प्राप्त होने से चिन्तित होकर उसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य वर के विषय में वार्तालाप कर रहे हैं तभी कोंजायन नामक अमात्य वहां आकर कुरंगी के साथ घटी अप्रत्याशित घटना का वर्णन करता है कि एक हाथी ने उद्यान में टहलती हुई राजकुमारी पर आक्रमण किया है जिसे देखकर सभी डर कर भाग गये। तभी एक अन्त्यज युवक ने वीरता से आकर राजकुमारी को बचाया। अमात्य भूतिक उस युवक का पता लगाने वहीं ठहर गये हैं। राजा इतनी सहृदयता व दयालुता होने से उस युवक का अन्त्यज होना विश्वसनीय नहीं मानते। अमात्यों के साथ राजा के वार्तालाप से विदित होता है कि काशीराज से कन्या मांगने हेतु दूत आया है परन्तु इस विषय में शीघ्रता से नहीं अपितु गम्भीरता से विचार करना ही उचित माना गया कि कन्या सौवीरराज को दें या काशीराज को।

द्वितीय अंक : इसमें सौवीर राजकुमार अविमारक का विदूषक, ऋषि शापवशात् चाण्डालत्प को प्राप्त अविमारक द्वारा कुरंगी के सौन्दर्यपाश में आबद्ध होने का समाचार देता है। इसी के उपरान्त अविमारक कामदशापन्न दिखायी पड़ता है। उधर कुरंगी भी हस्ति संकट के दिन से अविमारक पर मुग्ध हुई दयनीय दशा को प्राप्त होती है। धात्री उसकी इस दशा को देखकर व अविमारक के अन्त्यज होने से तर्क-वितर्क करती हुई उसे कुलीनवंशी मान दोनों को मिलाने का उपाय करने अविमारक के पास जाती है। इस प्रकार अविमारक को राजमहल में प्रवेश का उपाय बताती है। उधर अविमारक भी विदूषक से राजमहल में प्रवेश करने की बात कहता है।

तृतीय अंक : इस अंक में कुरंगी अपनी परिचारिकाओं के साथ अविमारक सम्बन्धी वार्तालाप करती है व परिचारिकाएँ वार्तालाप करती हैं तभी चौरवेश में अविमारक अन्तःपुर में प्रवेश करता है। नलनिका अविमारक को पहचान कर कुरंगी के समीप ले जाती है व दोनों का मिलन होता है।

चतुर्थ अंक : इसके प्रारम्भ में मागधिका और विलासिनी कुरंगी तथा अविमारक के रूप, सौन्दर्य की प्रशंसा करती है तथा नलनिका आकर कुन्तिभोज द्वारा अविमारक के राज अन्तःपुर में प्रवेश विदित होने का समाचार देती है। तथा अविमारक को सकुशल अन्तःपुर से बाहर भेज दिया गया है। कुरंगी की लज्जा व भय से अत्यन्त शोचनीय दशा है। उधर अविमारक कुरंगी के विरह एवं रहस्य स्पष्ट हो जाने से कुरंगी की अवस्था का स्मरण कर प्राण त्यागने का निश्चय करता है। वह दावाग्नि में प्रवेश करता है परन्तु विधि का विधान, वह शीतल हो जाती है। तत्पश्चात् वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैलशिखर से कूदना चाहता है तभी, एक मेघनाद नामक विद्याधर अपनी पत्नी सौदामिनी के साथ भ्रमण करते हुए अविमारक को देखता है व मंत्र विद्याबल से उसका वृत्तान्त ज्ञात कर सहानुभूतिपूर्वक उसे अंगूठी देता है जिसे दाहिने हाथ में पहनकर व्यक्ति अदृश्य हो जाता है व बायें हाथ में पहनकर प्रत्यक्ष हो जाता है। इसके द्वारा अविमारक को अन्तःपुर में प्रवेश का उपाय बता विद्याधर अपने गन्तव्य को चला जाता है। विदूषक वहां आता है। अविमारक उसे अंगूठी के विषय में बताकर उसके साथ राजपुर में प्रवेश करता है।

पंचम अंक : नलनिका व कुरंगी राजप्रासाद में बैठी है। कुरंगी विरह से संतप्त है। तभी विदूषक व अविमारक वहां प्रवेश करते हैं। इसी समय महारानी के पास से लेप लेकर हरणिका आती है अतः नलनिका व हरणिका दोनों वहां से चली जाती हैं। उसके जाने पर कुरंगी गले में फंदा लगाकर प्राण त्यागना चाहती है तभी अविमारक उसका आलिंगन कर लेता है। हरिणिका व नलनिका विदूषक को वहां से ले जाती है व कुरंगी तथा अविमारक का पुनः मिलन होता है।

षष्ठ अंक : धात्री के माध्यम से काशीराज कुमार जयवर्मा की माता सुदर्शना सहित कुरंगी के साथ विवाह करने के लिए उपस्थित होने का पता चलता है। यहीं राजा कुन्तीभोज व सौवीराज मिल जाते हैं लेकिन उनके पुत्र का पता नहीं चलता। वे अविमारक द्वारा धूमकेतू राक्षस के वध का समाचार भी कुंतीभोज से बताते हैं लेकिन देवर्षि नारद उपस्थित होकर सुदर्शना पर अग्नि से उत्पन्न अविमारक पुत्र का रहस्य व कुरंगी तथा अविमारक के गन्धर्व विवाह का भेद स्पष्ट करते हैं। नारद जी कुरंगी की छोटी बहन का विवाह जयवर्मा से कराते हैं। सबका परस्पर प्रेम-मिलन होता है। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

प्रतिमा नाटक

सात अंकों का यह नाटक भास के सर्वोत्तम नाटकों में से है। श्रीराम के अभिषेक के प्रसंग से प्रारम्भ होकर चौदह वर्षों के बाद वन से लौटने व पुनः राम के राज्याभिषेक तक का कथानक इसमें समाविष्ट है।

प्रथम अंक : इस अंक में प्रतिहारी कंचुकी से राम के अभिषेक की तैयारियां करने के लिए कहती है। इसी समय अवदातिका नामक प्रतिहारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वल्कल लेकर प्रवेश करती है। सीता कुतूहल दृष्ट्या परिहास में वह वल्कल धारण करती है। सीता को इसी समय चेटी द्वारा राम के राज्याभिषेक का पता चलता है। लेकिन सहसा वाद्यध्वनि बन्द हो जाती है जिससे सबका कुतूहल बढ़ जाता है। श्रीराम भी वहां उपस्थित होकर वल्कल पहनना चाहते हैं। तभी उन्हें कंचुकी से अभिषेक रोके जाने व कैकेयी द्वारा भरत को राज्य दिलाने का पता चलता है जिससे दशरथ मूर्च्छित होकर इशारे से राम को बुलवाते हैं। लक्ष्मण क्रोधित होकर राम को राज्य छीनने के लिए उत्तेजित करते हैं। राम उन्हें शांत कर वन जाना चाहते हैं। सीता व लक्ष्मण भी उनके साथ वन जाने को उद्यत होते हैं। सब वन को प्रस्थान करते हैं।

द्वितीय अंक : इस अंक में राम को वन जाने से रोकने में असमर्थ राजा समुद्रगृहक में जाकर सो गये। वे राम के लिए नाना प्रकार से विलाप कर रहे हैं। कौशल्या व सुमित्रा उन्हें सान्त्वना दे रही हैं। तभी सीता राम व लक्ष्मण को वन में पहुंचाकर सुमन्त्र लौटते हैं। राम के न लौटने का समाचार ज्ञात होने पर दशरथ पुनः मूर्च्छित होकर इस दुःख व विपत्ति को सहन करने में असमर्थ होकर प्राण त्याग देते हैं।

तृतीय अंक : प्रवेशक द्वारा इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की प्रतिमाओं सहित दशरथ की प्रतिमा की भी प्रतिमागृह में स्थापना का पता चलता है। जिनका दर्शन करने कौशल्यादि महारानियां प्रतिमागृह में आ रही हैं। उधर भरत दशरथ की बीमारी का समाचार सुनकर सूत के साथ अयोध्या लौटते हुए उचित नक्षत्र के न होने से प्रतिमागृह में रुकते हैं, जहां इक्ष्वाकुवंशी मृतक राजाओं की प्रतिमाओं सहित दशरथ की प्रतिमा देखकर उनकी मृत्यु का आभास पा जाते हैं। तथा शोक से मूर्च्छित हो जाते हैं। उसी समय रानियां वहां उपस्थित होती हैं। भरत स्वयं को निरपराध बताते हुए कौशल्या से क्षमा मांगते हैं व माता कैकेयी को कोसते हैं तथा देवकुलिक से राम सीतादि के वनगमन का समाचार सुनकर उन्हें लेने के लिए वन को प्रस्थान करते हैं तथा राज्याभिषेक कराने से इन्कार कर देते हैं।

चतुर्थ अंक : इस अंक में भरत सुमन्त्र सहित राम के पास तपोवन में पहुंच जाते हैं। वे परस्पर स्नेह से मिलते हैं। भरत राम से अयोध्या लौटने का आग्रह करते हैं परन्तु राम पिता के सत्य की रक्षा हेतु उन्हें मना लेते हैं। भरत इस शर्त पर अयोध्या लौटते हैं कि राम चौदह वर्षों के पश्चात् अपना राज्य संभाल लेंगे तब तक भरत न्यास के रक्षक के रूप में कार्य करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में भरत राम की चरणपादुका लेकर सुमन्त्र सहित राज्य के हित हेतु अयोध्या लौट जाते हैं।

पंचम अंक : इस अंक में सीता छोटे-छोटे वृक्षों को सींच रही हैं। तभी राम आकर पिता के श्राद्ध के विषय में वार्तालाप करते हैं तथा वन सामग्री से श्राद्ध क्रिया देखकर पिता के वनप्रसंग से दुखी होने से दुखी हैं। तभी संन्यासी वेश में वहां रावण आता है और स्वयं को श्राद्ध-कार्य में निपुण काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण बताकर पिण्डदान योग्य पदार्थों में कंचनमृग का भी वर्णन करते हैं। इसी समय कांचन मृग वहां दिखाई पड़ता है। राम सीता को ब्राह्मण की सेवा में छोड़ कर स्वयं मृग का पीछा करते हैं। उचित अवसर पर प्राप्त कर रावण संन्यासी का वेश छोड़कर स्वयं का परिचय देकर विलाप करती हुई सीता को हठात् उठा कर ले जाता है। गृधराज जटायु उस पर आक्रमण करता है।

षष्ठ अंक : इस अंक में दो तापसी सीता का हरण कर ले जाते हुए रावण को देखते हैं व रक्षा में मृत्यु को प्राप्त जटायु के पराक्रम का वर्णन करते हैं। विष्कम्भक के अनन्तर अयोध्या में भरत को सुमन्त्र सीताहरण का वृत्तान्त एवं लंकापति रावण द्वारा सीता का हरण तथा समान दुख वाले सुग्रीव तथा राम की मित्रता व वानर सेना सहित राम के किष्किंधा निवास का समाचार सुनाते हैं, जिसे सुनकर भरत दुखी होकर माताओं के पास जाते हैं तथा माता कैकेयी को इस सब का उत्तरदायी ठहराते हैं। तभी सुमन्त्र कैकेयी को निर्दोष बताते हुए महाराज दशरथ के शापित होने व दुख में चौदह दिनों के स्थान पर चौदह वर्ष के निकल जाने की बात बताते हैं। अतः भरत माता से क्षमा मांगते हैं व सैन्य सहित राम की सहायता के लिए प्रस्थान करने को कहते हैं।

सप्तम अंक : इस अंक में तापस राम द्वारा रावण के वध व विभीषण के अभिषेक का वृत्तान्त सुनाता है तथा सीता सहित राम के अयोध्या लौटने का समाचार देता है। राम व सीता आनन्दित होते हैं। राम-सीता को वनवास के स्थल दिखाकर वनों का स्मरण दिलाते हैं। तभी शंखनाद सहित भरत अयोध्यावासियों व माताओं सहित राम को लेने आते हैं। सबका पुनर्मिलन होता है। पुष्पक विमान से सब अयोध्या लौटते हैं। मुनिजन अमात्य व अयोध्यावासी राम का राज्याभिषेक करते हैं। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिज्ञा-योगन्धरायण

भास का यह नाटक लोक-कथाओं पर आधारित है। यह चार अंकों में समाप्य नाटक राजा के प्रति मंत्री के कर्तव्य को प्रत्यक्ष करता है।

प्रथम अंक : इस अंक में मंत्री योगन्धरायण सालक के साथ राजा की रक्षा हेतु वार्तालाप करता दिखाई देता है। नागवन में शिकार करने गये हुए राजा उदयन को महासेन प्रद्योत बन्दी बनाने वाले हैं। यह समाचार ज्ञात होते ही मंत्री योगन्धरायण राजमाता से रक्षासूत्र लेकर सालक द्वारा राजा तक पहुंचाना चाहता है तभी उदयन का अंगरक्षक हंसक उनके बन्दी होने का समाचार लाता है। वह कहता है कि शिकार करते समय दूर नीला हाथी देखकर उदयन उसे चक्रवर्ती हस्ती समझकर वीणा लेकर उसका पीछा करते हैं। तभी उस कृत्रिम हाथी में से अस्त्रधारी योद्धा निकल पड़ते हैं। उदयन इसे प्रद्योत का छल समझकर पराक्रम से युद्ध करते रहे। अन्त में थककर और अश्व के घायल होने पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े जिससे उन्हें बन्दी बना लिया गया। हंसक ने बताया कि महाराज अन्तिम बार योगन्धरायण से मिलना चाहते थे। यह सुनकर योगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है कि "यदि राहुग्रस्त चन्द्रमा की भांति शत्रुओं द्वारा पकड़े गये स्वामी उदयन को मैं मुक्त न कर दूं तो मेरा नाम योगन्धरायण नहीं।" यह समाचार राजमाता को भी दिया जाता है। तभी महर्षि व्यास वहां आते हैं और राजकुल के अभ्युदय के आशीर्वाद सहित अपना वस्त्र छोड़कर चले जाते हैं। उस वस्त्र को पहनकर योगन्धरायण अपना वेश परिवर्तन करता है।

द्वितीय अंक : यह अंक महासेन प्रद्योत की राजधानी में ला देता है। प्रद्योत पुत्री वासवदत्ता के विवाह हेतु अनेकों राज्यों से दूत आते हैं। राजा-रानी पर भी यह सन्देश भेजता है लेकिन निश्चय नहीं हो पाता कि कन्या किसे दी जाय। तभी कंचुकी वत्सराज के बन्दी बनाये जाने का समाचार देता है। महासेन की राज महिषी वासवदत्ता की वीणा में रुचि व चेतालिका उत्तरा द्वारा वीणा सीखने की बात बताती है। कंचुकी के सतर्क करने पर राजा अपने वचन के लिए क्षमा मांगते हुए राजकुमार वत्सराज को सम्मानसहित बुलाकर उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखने को कहते हैं। वत्सराज की घोषवती वीणा को लेकर कंचुकी उपस्थित होता है। राजा वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीणा वासवदत्ता को दे देते हैं। रानी वासवदत्ता को बच्ची बताकर विवाह की चिन्ता से मुक्त करती है।

तृतीय अंक : महासेन प्रद्योत की राजधानी में वत्सराज का विदूषक एवं अन्य अमात्य भी वेष-परिवर्तन कर घूम रहे हैं। योगन्धरायण ने उन्मत्तक का और रुमण्वान ने श्रमणक का वेश बनाया है। विदूषक उन्मत्तक से मोदकों को लेकर झगड़ रहा है। दोनों वार्तालाप करते हैं कि वत्सराज ने वासवदत्ता को देख लिया है अत: वे उसको भी साथ लेकर जाना चाहते हैं। योगन्धरायण कहता है कि महाराज को बन्दी अवस्था में भी काम सता रहा है लेकिन हमें तो महाराज की इच्छा का अनुवर्तन करना है। अत: योगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है कि जिस प्रकार अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया उसी प्रकार मैं भी वत्सराज को हाथी, वीणा व वासवदत्ता सहित ही कौशाम्बी न पहुंचा दूं, तो मेरा नाम योगन्धरायण नहीं। इसी समय दुपहरी ढल जाने तथा जन-कोलाहल से सब इधर-उधर चल देते हैं।

चतुर्थ अंक : गात्र-सेवक जो छिपे वेश में विदूषक ही है, को ढूंढते हुए भट आता है वह नशे में चूर होने व हाथी के समस्त–घंटा आदि को बेच देने की–बात करता है। तभी शोर सुनाई देता है कि वासवदत्ता को लेकर वत्सराज भाग गया। यह सुनते ही विदूषक अपना रूप स्पष्ट कर बताता है कि विभिन्न-स्थलों पर हम सब वत्सराज के गुप्तचर हैं। वत्सराज के भाग जाने पर युद्ध होता है तथा योगन्धरायण बन्दी बना लिये जाते हैं। लेकिन वे स्वामी का कार्य सम्पन्न कराने से प्रसन्न हैं। शस्त्रागार में प्रद्योत का मंत्री भरतरोहक योगन्धरायण से मिलकरश्रृंगार नामक स्वर्णपात्र उपहार में देना चाहता है लेकिन योगन्धरायण अस्वीकार करते हैं। पर, जब वासवदत्ता व वत्सराज का चित्रफलक के द्वारा प्रद्योत द्वारा विवाह कराया जाना और उन्हें भगाने का अनुमोदन करना सुनाते हैं तो उपहार स्वीकार कर लेते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

स्वप्नवासवदत्ता

यह नाटक भी वत्सराज उदयन के चरित्र को ही प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए प्रतिज्ञा योगन्धरायण का दूसरा भाग ज्ञात होता है। स्वप्न वाला दृश्य इस नाटक का महत्वपूर्ण दृश्य है जो इस नाटक को संस्कृत नाटकों में ऊंचाई तक पहुंचा देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अंक : यह अंक तपोवन के दृश्य से प्रारम्भ होता है। अमात्य योगन्धरायण परिव्राजक के वेष में तथा रानी वासवदत्ता अवन्तिका के वेष में है। मगध नरेश दर्शक माता वन में निवास करती है जिनके दर्शन हेतु मगध नरेश की बहन पद्मावती आ रही है जिस कारण मार्ग निस्सारण किया जा रहा है। यह देखकर वासवदत्ता चिन्तित होती है लेकिन योगन्धरायण उन्हें सान्त्वना देते हैं। तभी मगधराज की कंचुकी भटों को इस कार्य से विरत करता है। पद्मावती राजमाता का दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करने के उपरान्त दान देना चाहती है तथा प्रत्येक संन्यासी से अभीष्ट वस्तु मांगने की प्रार्थना करती है। संन्यासी तो कुछ नहीं मांगते लेकिन योगन्धरायण अवन्तिका को अपनी बहन बताकर व प्रोषित पति का कहकर संरक्षण में रखने की विनती करता है। देवज्ञों द्वारा पद्मावती के उदयन की पत्नी होने की वाणी का विचार कर योगन्धरायण यही उचित समझते हैं।

इसी समय लवाणक ग्राम से एक ब्रह्मचारी वासवदत्ता व योगन्धरायण के आवास में आग लग जाने की घटना का समाचार लेकर आता है तथा बताता है कि वत्सराज पत्नी के विरह से सन्तापयुक्त हैं तथा मंत्री रुमण्वान उनकी सम्यक रक्षा कर रहे हैं। ब्रह्मचारी यह सुनाकर चला जाता है। योगन्धरायण भी आज्ञा लेकर चले जाते हैं।

द्वितीय अंक : पद्मावती व वासवदत्ता कन्दुक खेलते हुए परिहास करती हैं, तथा महासेन की पत्नी कहकर सम्बोधित करती है लेकिन चेटी पद्मावती की दयालु वत्सराज में आसक्ति हो जाती है। तभी धात्री आकर पद्मावती को वत्सराज को देने की बात बताती है जिसे सुनकर वासवदत्ता अन्दर-अन्दर ही दुखी होती है। वासवदत्ता पूछती है कि क्या महाराज ने स्वयं पद्मावती का वरण किया है? इस पर धात्री कहती है कि वह किसी प्रसंग से यहां आया था। हमारे महाराज ने स्वयं कन्या उसे दी है। इसी समय चेटी आकर कहती है कि आज ही मंगल मुहूर्त है अतः शीघ्रता करें। धात्री चली जाती है।

तृतीय अंक : इस अंक के प्रारम्भ में चिन्ताकुला वासवदत्ता दिखाई देती है। वह सोचती है कि वत्सराज उदयन भी दूसरे के हो गये हैं। वह तर्क-वितर्क कर रही है। तभी चेटी वहां पुष्पों को लेने पहुंचती है तथा कहती है कि मालकिन ने कहा है कि आप महाकुल प्रसूता व निपुण हैं अतः आप ही कौतुकमाला को गूंथें। वासवदत्ता मानसिक कष्ट के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माला गूंथती है व उदयन की प्रशंसा सुनती जाती है। चेटी माला लेकर चली जाती है।

चतुर्थ अंक : इस अंक में विदूषक उदयन व पद्मावती के विवाह की सूचना देता है व स्वयं राजा उदयन सहित मगध नरेश का स्वागत पाकर प्रसन्न है। पद्मावती वासवदत्ता के साथ उद्यान में भ्रमण करते हुए अपने व वत्सराज के प्रेम को प्रदर्शित करते हुए पूछती है कि क्या वासवदत्ता भी ऐसा ही प्रेम करती थी? तो अवन्तिका बनी वासवदत्ता कह उठती है कि इससे भी अधिक। पद्मावती पूछती है कि तुम कैसे जानती हो? तो वह कहती है कि ऐसा न होता तो वह परिजनों को क्यों छोड़ती? इतने में ही विदूषक व वत्सराज वहां आते हैं। उन्हें देखकर दोनों लतागुल्म में छिप जाती हैं। वत्सराज से विदूषक पूछता है कि आपको वासवदत्ता व पद्मावती में से कौन अधिक प्रिय है। राजा वासवदत्ता के प्रेम को अधिक बताते हैं व उसके वियोग में रोने लगते हैं। यह सुनकर हृदय में आनंद का अनुभव करती हुई वासवदत्ता चली जाती है तथा पद्मावती प्रत्यक्ष आती है। राजा उसको देखकर फूलों का पराग आंख में गिर जाने का बहाना बनाते हैं। पद्मावती पानी से उनका मुख धुलाती है।

पंचम अंक : इस अंक में पद्मावती के शीर्ष में वेदना होने का ज्ञान होता है। मधुरिका वासवदत्ता को यह समाचार देने जाती है। पद्मिनी का यह समाचार उदयन को बताने के लिए जाती है व मार्ग में विदूषक से कहकर शीर्षानुलेपन लेने जाती है। उदयन समुद्रगृहक में पद्मावती को देखने जाते हैं। लेकिन वहां उसे न पाकर शैया पर विश्राम करने लगते हैं। उधर वासवदत्ता शैया पर पद्मावती को लेटा हुआ जानकर स्वयं भी उसके पार्श्व में लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को पुकारते हैं। वासवदत्ता उदयन को लेटा हुआ जानकर राजा की बांह ऊपर रखकर चली जाती है। राजा वासवदत्ता का स्पर्श अनुभव कर स्वप्न में उसका पीछा करते हैं तथा द्वार से टकराकर रुकते हैं तभी विदूषक आकर वासवदत्ता का स्पर्श अनुभव यथार्थ न मानकर स्वप्न की बात कहता है। उसी समय कंचुकी रुमण्वान अमात्य व मगध सेना सहित आरुणि को मारे जाने हेतु तैयार होने के लिए कहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अंक : इस अंक में महासेन का कांचुकीय रम्य तथा वासवदत्ता की धात्री राजा उदयन से भेंटकर महासेन द्वारा चित्रफलक में उनके विवाह का समाचार सुनाते हैं तथा वीणा भी देते हैं जिसे सुनकर राजा वासवदत्ता के विरह में रोने लगते हैं। चित्रपलक में वासवदत्ता को देखकर पद्मावती उस कन्या के रूप जैसी कन्या न्यास रूप में अपने पास होने की बात कहती है। राजा उसे तुल्य रूप वाली अन्य स्त्री समझते हैं। तभी योगन्धरायण द्वारा न्यास लौटाने आने पर सब रहस्य स्पष्ट होता है। तथा मंत्री योगन्धरायण देववाणी व मगधराज की सहायता से वत्सभूमि की प्राप्ति हेतु यह प्रपंच रचना बताते हैं। राजा व वासवदत्ता प्रेम से मिलते हैं। पद्मावती वासवदत्ता से अविनय की क्षमा मांगती है। महासेन को यह संवाद सुनाने सभी लोग पद्मावती सहित उज्जयिनी जाने के लिए प्रस्तुत होते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

चारुदत्त

भास के चारुदत्त नाटक को उनकी नाट्यश्रृंखला का अन्तिम नाटक माना जाता है। इस नाटक की सहसा समाप्ति से यह प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु के कारण यह नाटक अधूरा रहा।

प्रथम अंक : प्रस्तावना में नट व नटी द्वारा रंगमंच पर उपवास तथा ब्राह्मण को भोजन के लिए निमन्त्रण देने का पता चलता है। नट चारुदत्त मित्र-मैत्रेय को भोजन हेतु निमन्त्रित करता है लेकिन वह अस्वीकार कर देता है तथा वहीं प्रसन्नतापूर्वक चारुदत्त द्वारा आदर-सत्कार पाने की बात कहता है। यद्यपि चारुदत्त दरिद्र हो गया है लेकिन विदूषक उसका साथ नहीं छोड़ता तथा देवबलि हेतु पुष्प लेकर चारुदत्त के पास जाता है तथा उसको दुख के दिनों में सान्त्वना देता है।

तदनन्तर क्रूर शकार व विट द्वारा पीछा किये जाने पर वसन्त सेना गहन अन्धकार में चारुदत्त के घर में छिप जाती है। रदनिका बलि हेतु चतुष्पथ पर जाती है जिसे शकार वसन्तसेना के धोखे में पकड़ लेता है परन्तु पीछे से विदूषक दीपक लेकर पहुंचता है तब वह पहचान कर छोड़ देता है और क्षमा मांगता है तथा चारुदत्त के लिए सन्देश कहता है कि वसन्तसेना को छोड़ दे नहीं तो सिर तोड़ दूंगा। चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलिकार्य के लिए कहता है तभी विदूषक आकर सब वृत्तान्त बताता है। वसन्तसेना पहचानी जाती है। वह अपना हार चारुदत्त के यहां न्यास रूप में रखकर विदूषक के साथ घर चली जाती है।

द्वितीय अंक : इस अंक में वसन्तसेना अपनी चेटी से चारुदत्त के प्रति अपनी अनुरक्ति को स्पष्ट करती है तथा उसकी दरिद्रता को भी अपने हित में जनापवाद से हटने का कारण मानती है। तभी वहां जुआरी द्वारा पीछा किया जाता हुआ संवाहक आता है जो पहले चारुदत्त के यहां तेल मालिश का कार्य करता था लेकिन दरिद्रता वश वहां से कार्यमुक्त हुआ जुआरी बन गया है। वसन्तसेना द्रव्य देकर उसे मुक्त कराती है। यह संवाहक को पुनः चारुदत्त की सेवा में जाने को कहती है। संवाहक को वैराग्य हो गया। एक चेट आकर राजमार्ग पर हाथी द्वारा परिव्राजक को पकड़ जाने व स्वयं द्वारा छुड़ाने की बात बताता है। तथा कहता है कि सबने वाह, वाह की है लेकिन एक व्यक्ति ने निर्धनतावश देने योग्य वस्तु न पाकर अपना प्रावारक दे दिया तथा चारुदत्त को दिखाकर उसे ही दानी व्यक्ति बताता है।

तृतीय अंक : चारुदत्त के घर का दृश्य है। अर्धरात्रि में अष्टमी का चन्द्रमा अस्त हो गया है। सब सोने का उपक्रम करते हैं। तभी चेटी वसन्तसेना द्वारा दिये हुए सुवर्ण भाण्ड को रक्षा के निमित्त विदूषक को देती है जो विदूषक चारुदत्त के शपथ दिलाने पर रख लेता है। इसी समय सज्जलक नामक चोर सेंध लगाकर घर में घुसता है व अन्य वस्तु न पाकर विदूषक से सुवर्णभाण्ड लेकर भाग जाता है। जागने पर सबको चोरी का ज्ञान होता है अतः चारुदत्त की पत्नी वहां आकर अपनी शतसहस्र मूल्य वाली रत्नावली बदले में देने को कहती है। चारुदत्त रत्नावली लेकर विदूषक को वसन्तसेना के पास भेजता है तथा कहता है कि वसन्तसेना से कहना चारुदत्त सुवर्णभाण्ड जुए में हार गये हैं। बदले में रत्नावली स्वीकार करो।

चतुर्थ अंक : इस अंक में चेटी आकर वसन्तसेना को उसकी माता का सन्देश व गहने देती है तथा कहती है कि इन्हें पहनकर राजश्यालक की गाड़ी में बैठ जाओ। तभी सज्जलक आकर व एक हार वसन्तसेना को देकर अपनी प्रेमिका मदनिका को मुक्त कराना चाहता है। मदनिका सुवर्ण भाण्ड व हार पहचानकर सज्जलक से कहती है कि तुम जाकर वसन्तसेना को सुवर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाण्ड दो तथा कहो कि चारुदत्त ने भेजा है। तभी विदूषक आकर चारुदत्त का सन्देश व रत्नावली देता है। वसन्तसेना उसके इस व्यवहार से उस पर अधिक आसक्त होती है, तथा सज्जलक व मदनिका का स्वयं विवाह कराकर भेज देती है।

वसन्तसेना इन घटनाओं पर आश्चर्यचकित होती हुई चेटी को कहती है कि वह ये अलंकार पहनकर चारुदत्त के पास अभिसरण करेगी। दोनों चली जाती हैं तथा नाटक समाप्त हो जाता है।

♣♣♣

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

वर्ण-व्यवस्था

1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शूद्र, 5. वर्णेतर जातियां

वर्ण-व्यवस्था

मानव-संस्कृति के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार जिनका कर्ता ब्रह्मा को तथा द्रष्टा चार ऋषियों को स्वीकार किया गया है। समस्त मानव-समाज के अभ्युत्थान के लिए वेदों में अनुपम उपदेय तथा सुव्यवस्थित व्यवस्था प्राप्त होती है। चारों वेद मानव-समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत व जीवन-निधि के रूप में मान्य हैं।

वेदों में सम्पूर्ण मानव समाज को एक विराट पुरुष का रूप दिया गया है। समाज के विराट स्वरूप की परमपुरुष के रूप में उद्‌भावना की गई है। पुरुष सूक्त में परब्रह्म परमात्मा के उपलक्षण बताये गये हैं।[1]

भारतीय-संस्कृति में समग्र मानव-समाज चार वर्णों में व्यवस्थित है। ये वर्ण वेदों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र नाम से अभिहित किये गये हैं–

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्, बाहू राजन्यः कृतः।[2]
उरु तदस्य यद्वैश्य, पद्‌भ्याꣳ शूद्रोऽअजायत॥"

अथर्ववेद में पाठ भेद से यह मन्त्र इस प्रकार दिखाया है–

बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद् वैश्यः।[3]

वेदों की अनुगामिता को स्वीकार कर मानव-समाज व्यवस्था का श्रेष्ठतम स्वरूप प्रतिष्ठापित करने वाले मनु ने भी मनुस्मृति में चारों वर्णों का विशद विवेचन करते हुए वर्ण-व्यवस्था का महत्व प्रतिपादित किया क्योंकि–

"तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः।

---

1. (क). ऋग्वेद पुरुष सूक्त–सहस्र शीर्ष पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि विश्वतो वृतवाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गलम्॥
2. ख. यजु॰ सं॰ 11/31–ऋग्वेद 10.90.12
3. अथर्ववेद 19.6.6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वायंभुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत्।।"१

उनके अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में पंचमहाभूतों व पंचतन्मात्राओं सहित इस संसार के क्रमशः उत्पन्न होने पर ईश्वर ने जीव को जिस कर्म में लगाया वह पुनः पुनः उत्पन्न होकर उसी कर्म को ऐसे ही स्वयं करने लगा जैसे ऋतु-परिवर्तन के समय ऋतु स्वयं अपने चिह्न धारण कर लेती है। उसी सृष्टि कर्ता ने–

"लोकानां तु विवृद्धयर्थ, मुख बाहू स्यादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयेत्।।"२

इसी तरह ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि सब जगत अन्धकार से निगला हुआ पड़ा था। प्रातः काल उषा आई और उसने जगत् को अन्धकार से बाहर कर दिया इसलिए कि विभिन्न स्वभाव वाले लोगों को प्रकाश मिल सके तथा वे अपने-अपने कार्यों को भली-भांति कर सकें कोई धन-अर्जन, कोई क्षत्रिय कर्म तो कोई सेवा।[3]

मनु ने अधिक आयु होने या केशपलित होने तथा अधिक धन एवं बांधवादि होने से व्यक्ति को बड़ा नहीं बताया वरन् वेद-वेदांग के अध्ययन करने वाले को बड़ा बताते हुए वर्णों के अनुसार निम्न धर्मसंगत-व्यवस्था बताई है–

"विप्राणां ज्ञानतो ज्येष्ठयम् क्षत्रियाणाम् तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः।।"४

भगवद्गीता में भी गुणों व कर्मों के अनुसार सृष्टि रचना में चार वर्णों को समाहित किया गया है।

"चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागतः।"५

वेदों में अनेक स्थानों पर चारों वर्णों का उल्लेख मिलता है। एक मन्त्र में सरल मार्ग से चलने वाले तथा विद्या रूपी धन वाले आचार्य से कहा

---

1. मनु॰ स्मृ॰ 1/102
2. मनुस्मृति 1/31
3. ऋग्वेद 1.169.6, 3.34.9 क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीयाइष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै। विसृदशा जीवितामि प्रचक्षे उषा अजीगर्भुवनानिविश्वा।।
4. मनुस्मृति 2/155
5. भगवद्गीता 4/13

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है कि क्या आप मुझे जन समुदाय के अन्दर गोपाल (शूद्र) बनाओगे या राजा (क्षत्रिय) बनाओगे या सोमपायी ऋषि (ब्राह्मण) बनाओगे या असीम अमृत धन दोगे?

"कुविन्मा गोपां कररो जनस्य कुविद्राजानं मधवन्मृजिषिन्।[1]

कुविन्म ऋषि पपिकसं सुतस्य कुविन्मे वस्यो अमृतस्य शिक्षाः॥"

यजुर्वेद में वर्ण व्यवस्था के विषय में इस प्रकार मिलता है।

"रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु" रुचं राजसु नस्कृधि।[2]

रुचं विश्येषु शूद्रेषु "गयि धेहि रुचा रुचम्॥"

अर्थात् हमारे ब्राह्मणों में दीप्ति तेज भर दो, हमारे क्षत्रियों में तेज भर दो, वैश्य और शूद्रों में तेज भर दो तथा तेज से मुझे भी तेजस्वी बना दो।

एक मन्त्र में परमेश्वर कहते हैं कि जैसे मैंने इस कल्याणी वाणी अर्थात् वेद को सब मनुष्यों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा वैश्य 'अर्थः स्वामिवैश्ययोः' अष्टाध्यायी के लिए उपदेश किया है वैसे ही तुम भी सबके लिए उपदेश करो–

"यथेमा वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।[3]

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च॥"

यजुर्वेद में चारों वर्णों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान और वेद प्रचार के लिए ब्राह्मण, तथा राज्य संचालन के लिए क्षत्रिय, पशुपालन व प्रजापालन के लिए वैश्य तथा प्रेम से सेवा करने तथा शुद्धि करने वाले शूद्र को तप के लिए सब राष्ट्र में उत्पन्न करो।

ब्रह्मणे ब्राह्मणे क्षत्राय राजन्यं मरुहम्योवैश्य तपसे शूद्रम्॥

चारों वर्णों का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद में कहा है मुझे देवों, विद्वानों, ब्राह्मणों में प्रिय बना, क्षत्रियों में प्रिय बना, सब देखते हुओं का प्रिय बना, शूद्र तथा वैश्यों का प्यारा बना–

"प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।[4]

---

1. ऋग्वेद 3.43.5
2. यजुर्वेद 18.48
3. यजुर्वेद 26.2
4. अथर्ववेद 19.62.1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।।"

वेद में एक अन्य मन्त्र में ही दर्भ के समान पापियों को चुभने वाले राजा से कहा है–आप मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा वैश्यों का प्रिय बनाओ–

"प्रिय मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय।"[1]

उपनिषदों में भी वर्ण व्यवस्था को क्रमशः इस प्रकार उद्भावित किया गया है–सृष्टि के प्रारम्भ में केवल एक ब्राह्मण वर्ण ही था वह एक होने के कारण लौकिक व्यवहार की सिद्धि में समर्थ न हुआ तो उसने एक उत्तम वर्ण क्षत्रिय बनाया–

"ब्रह्म वा इदमासीदेकमेव तदेक सन्नत्यभवत्।[2]

तच्छ्रेयोरुपमत्यसृजत् क्षत्र्।।"

जब वह ब्राह्मण वर्ण भी व्यवहार सिद्धि में कृतकार्य न हो सका तब उसने एक उत्तम वर्ण क्षत्रिय बनाया तत्पश्चात् वैश्य वर्ण की सृष्टि की–

"सनैव व्यभवत्स विशमसृजत् यान्येतानि देवजातानिगवशः।[3]

प्रख्यायन्ते वसवो रुद्रा, आदित्या विश्वदेवा मरुत इति।।"

और जब वह ब्राह्मण वर्ण फिर भी व्यवहार सिद्धि में जगत कार्य में कृतकार्य न हो सका तब उसने शूद्र वर्ण के रूप में चतुर्थ वर्ण की सृष्टि की–

'सनैव व्यभवत्स शौद्रं वर्णमसृजत् पूषणमियं।[4]

वैपूषेयं हीदं सर्व पुष्यति यदिदं क्रिया।।"

ब्राह्मण

चतुर्वेदों, स्मृतियों व पुराणों आदि द्वारा स्वीकृत चतुर्वर्णों में ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर में श्रेष्ठ स्थान मुख को प्राप्त है उसी प्रकार स्वयं ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने के कारण सभी वर्णों

---

1. अथर्ववेद 19.32.8
2. बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.11
3. बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.12
4. बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.13

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में श्रेष्ठ स्थान ब्राह्मण को प्राप्त है। इसी तथ्य को मनुजी ने अपने धर्मशास्त्र में वर्णित किया है–

"उत्तपाङ्गोदभवाज्ज्येष्ठ्यादब्रह्मणाचैवधारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः।।"[१]

मनु ने ब्राह्मण को सभी वर्णों का स्वामी कहा है क्योंकि यह सभी प्रकार से श्रेष्ठ है।

धर्मस्वरूप मनु ने ब्राह्मण को जीवलोक के सभी प्राणियों में श्रेष्ठ प्रदर्शित किया है–

"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।।"[२]

वेदों के ज्ञाता मनु ने वैदिक-संस्कृति के अन्तर्गत सभी यज्ञों को पूर्णता प्रदान करने के निमित्त देवता व पितरों को हव्य-कव्य पहुंचाने वाला मानकर भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता स्वीकार की है–

"तं ही स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत्।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये।।
यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः।।"[३]

मनु ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए विद्या प्राप्त करने का अधिकारी केवल ब्राह्मण को ही माना है। उनके अनुसार विद्या की अधिष्ठात्री देवी ब्राह्मण को विद्या प्रदान करने योग्य मानते हुए कहती है–

"यमेव तु शुचिं विद्यान्नियत ब्रह्मचारिणम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने।।"[४]

वेद में ब्राह्मण को विद्वान और शिक्षाप्रद बताया है–

---

1. मनु-स्मृ॰ 1/93
2. वही 1/96 वेशेष्यात्प्रकृतिश्रेष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मण प्रभुः।। मनु ॰ स्मृ ॰ 3/10
3. मनु-स्मृ॰ 1/94, 95
4. वही 2/115. अध्ययापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।। 1/88

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं पूषन् विदुषा नययो अञ्जसाऽनुशासति।[१]

मनु ने ब्राह्मण के छः कर्म नियत किये हैं। वेद में भी अध्यापन करना, उपदेश देना, राजा को परामर्श देना, चिकित्सा करना, पौराहित्य करना व दान देना छः कर्म हैं। इसी तरह पुरोधा, प्रतिष्ठा, चित्ति, आकृति, आशीः और देवहुति ब्रह्मकर्म कहे गये हैं।[2]

वेदों व स्मृतियों से प्रेरणा प्राप्त कर आदिकाव्य रामायण व महाभारत की रचना हुई तथा इन्हीं ग्रन्थों से कथा प्रसंग लेकर व वैदिक-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न कवियों ने समय-समय पर अपनी कल्पना-शक्ति एवं काव्यात्मक-प्रतिभा के आधार पर विभिन्न नाटकों व काव्यों की रचना की। उन्हीं में से भास, कालिदास, व भवभूति जी के नाटक हैं, जिनमें हमें वैदिक-संस्कृति का उज्ज्वल रूप मिलता है।

भास ने अपने नाटकों को वैदिक-रीति से रचने में अपार ज्ञान-कौशल प्रदर्शित किया है। उन्होंने ब्राह्मण को श्रेष्ठ व पूजनीय प्रदर्शित किया है। चेटी द्वारा गणिका बसन्तसेना से यह पूछे जाने पर कि वह विद्या-विशेष से रमणीय किसी ब्राह्मणकुमार को तो नहीं चाहती–इस पर वसन्तसेना उत्तर देती है कि 'उनमें मेरा अनुराग' है–

"पूजनीयः खलु स जनः।"[३]

अन्यत्र भी ब्राह्मण को पूजनीय व उसके वध को निन्दनीय प्रदर्शित किया गया है। राक्षस घटोत्कच माता की आज्ञा का पालन करने के निमित्त-ब्राह्मण का वध करने हेतु उसका पीछा करते हुए विचार करता है–

"जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्।
अकार्यमेतच्च मयाऽद्य कार्य मातुर्नियोगादपनीय शङ्काम्।।"[४]

महाकवि भास ने ब्राह्मणों को क्षत्रियों द्वारा पूजनीय प्रदर्शित किया है। राजा दुर्योधन के यज्ञ में बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मण सम्मिलित हुए हैं। उनकी

---

1. ऋग्वेद 6/54/1
2. अथर्ववेद-5/24
3. चारु ॰ 2/पृ ॰ 46
4. मध्य ॰ व्या ॰ 1/9

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठता व विद्वत्ता को व्यक्त करते हुए उन्हें वेद पाठ में प्रवीण, वृत्तियों के ज्ञाता व वृद्धता में वृद्ध गजों के समान माना है।[1]

महाकवि कालिदास ने प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में ब्राह्मण की पूजा को आवश्यक कहा है। गणदास अपनी शिष्या मालविका की नृत्य कला का प्रदर्शन रंगमंच पर कराने के उपरान्त उसका परिणाम जानना चाहते हैं, इस पर विदूषक उनकी कमी शिक्षा के प्रदर्शन पर ब्राह्मण की पूजा न करना बतलाते हैं तब गणदास उत्तर देते हैं।

"महा ब्राह्मण, न खलु प्रथमं नेपथ्यसंगीत मिदम्
अन्यथा कथं त्वामर्चनीयं नार्चयिष्यामः॥"[२]

श्री भास के नाटक में राक्षस घटोत्कच माता की आज्ञा से ब्राह्मण का वध करना चाहता है। अतः भीम ब्राह्मण की रक्षा के लिए आते हैं तथा घटोत्कच को समझाते हुए कहते हैं–

"निवृत्तव्यवहारोऽयं सदारस्तनयैः सह।
सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः॥"[३]

इसी प्रकार मनु ने ब्राह्मण को बुरे कार्य करने पर भी पूजनीय कहा है–

"एव यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं देवताहितत्॥"[४]

अन्यत्र भी भवभूति ने ब्राह्मण वध निषिद्ध बताया है। मंत्री माल्यवान व शूर्पणखा परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित करते हैं तथा शूर्पणखा द्वारा यह कहने पर कि दोनों युद्ध करते हुए समाप्त हो जायेंगे माल्यवान उसे समझाते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण भक्त राम परशुराम को नहीं मारेंगे।[5]

---

1. पंच ० 1/5 इमेऽत्र भवन्तो द्विजातयः–
   राज्ञां वेष्टनपट्टधृष्टचरणाः श्लाघ्यऽभूतश्रवा,
   वार्द्धक्येऽप्यभिवधर्माननियमाः स्वाध्यायशूरेर्मुखैः।
   विप्रा यान्ति वयः प्रकर्षशिथिलायष्टित्रिपादक्रमाः
   शिष्यस्कन्धनिवेशिताञ्चितकरा जीर्णागजेन्द्रा इव॥
2. मालविका ० 2/31 गद्यभाग
3. मध्य० व्या ० 1/34
4. मनुस्मृति० 9/319
5. महा ० चरि ० : ब्राह्मणो ब्रह्मर्षिं माभिहन्यात्। –2, पृ ० 67

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु ने ब्राह्मण से क्षत्रिय की उत्पत्ति बताते हुए कहा है–

"अद्भयोऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्नो लोहमुत्थितम्।

तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।।"[१]

वेदों में कहा है–जहां ब्राह्मण की वाणी का अनादर उसकी उपेक्षा या हिंसा होती है, वह राष्ट्र जर्जर हो जाता है–"तद वै राष्ट्रमास्त्रवृति नावं भिन्नामिवोदकम्।

ब्राह्मण यत्रं हिंसान्ति तद् राष्ट्र हन्तिदृच्छना।।"[२]

मनु ने भी ब्राह्मण को ब्रह्म माना है तथा उन्हें सताना उपयुक्त नहीं माना है। वे कहते हैं कि ब्राह्मण वध से बड़ा कोई पाप संसार में नही है।[3]

"यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा।

ब्रह्मचैव धनं येषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषु।।"[४]

भवभूति ने उत्तररामचरित में लव व सुमन्त्र के वार्तालाप के माध्यम से वर्णव्यवस्था का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। लव अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा पकड़ लेते हैं तथा सैनिकों से युद्ध करते हैं। सुमन्त्र उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि तुम परशुराम विजेता श्रीराम को नहीं जानते हो। इस पर लव हँस कर उत्तर देते हैं–

"सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां बाह्वोवीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।

शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्यस्तस्मिन्दान्ते कास्तुतिस्तस्य राज्ञः।।"[५]

श्री भवभूति ने नाटक मालती-माधव के प्रारम्भ में अपने कुल एवं वंश का वर्णन सूत्रधार के मुख से कहलवाया है। सूत्रधार ब्राह्मणों के चरित्र का वर्णन करते हैं तथा उन्हें पूर्ण ब्रह्मज्ञानी, वेदों के ज्ञाता व शास्त्र श्रवण करने वाले क्षत्रिय ब्राह्मण के रूप में वर्णित करते हैं।[6] इसी प्रकार महावीरचरित के

---

1. मनुस्मृ ० 321/9
2. अथर्ववेद-5.19.8
3. मनुस्मृ ० 8/381 : न ब्राह्मणवधात्भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
   तस्मादस्य वध राजा मनसापि न चिन्तयेत्।।
4. वही 9/316
5. उ०रा०चरि० 5/32
6. माल०माध० 1/5–
   ये श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।
   इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान् दारानपत्यायतपोऽर्थमायुः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ में नान्दी पाठ के अन्तर्गत सूत्रधार द्वारा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए उन्हें पतितपावन, पंचाग्नि के उपासक, सोमयज्ञ करने वाले व ब्रह्मज्ञानी प्रदर्शित किया है।[1]

महाकवि भास के नाटक अविमारक में वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण वर्ण के अनुरूप देवर्षि नारद के गुणों का वर्णन किया गया है।[2] अन्यत्र भी देवर्षि नारद के चरित्र का वर्णन ब्राह्मणों के गुणों के अनुरूप किया गया है–

"वेदैः पितामहमहं परितोषयामि
गीतैः करोमि हरिमुच्चरोद्गजहर्षम्।
उत्पादयाम्यहरहर्विविधैस्मायै–
स्तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहाञ्च लोके॥"[३]

महाकवि भास ब्राह्मणों को श्रेष्ठ व आयु में अल्प होने पर भी ब्राह्मणत्व की दृष्टि से बड़ा प्रसिद्ध करते हैं। यज्ञ समाप्ति पर दुर्योधन सर्वप्रथम गुरु द्रोण को प्रणाम करते हैं लेकिन द्रोण भीष्म पितामह को बड़ा बताते हुए दुर्योधन से, पहले उन्हें प्रणाम करने को कहते हैं। इस बात का खंडन करते हुए भीष्म ब्राह्मण को स्वयं उत्पन्न होने के कारण क्षत्रिय से बड़ा व्यक्त करते हुए कहते हैं–

"अहं हि मात्राजनितो भवानु स्वयं ममायुधं वृत्तिरपह्नवस्तव।
द्विजो भवान् क्षत्रिय वंशजा वयं गुरुर्भवान् शिष्य महत्तरा वयम्॥"[४]

मनु ने भी ब्राह्मण बालक को वृद्ध क्षत्रिय से बड़ा बताया है–

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम्।
पितापुत्रो विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता॥[५]

भास के नाटक प्रतिमानाटकम् में राम वन में अपने पिता का श्राद्ध करना चाहते हैं तथा किसी उपयुक्त ब्राह्मण को चाहते हैं। रावण संन्यासी का वेश बनाकर वहां उपस्थित होते हैं तथा अपने ब्राह्मण होने को प्रदर्शित

---

1. महा॰चरि॰1– चत्र केचित्तेत्तिरिया...प्रतिवसन्ति।
2. अवि॰ 6/16– शापेप्रसादेषु च सक्तबुद्धिर्वेदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः।
स्निग्धंषु वेराण्युपपाद्य यत्रान्नष्यानि कार्याणि समीकरोति॥
3. वही 6/11
4. पंच॰ 1/27
5. मनुस्मृति॰ 2/135

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए स्वयं को विद्वान् श्राद्ध करवाने योग्य सिद्ध करते हैं।[1] क्योंकि मनु ने भी मनुस्मृति में विद्वान् ब्राह्मण द्वारा किया गया पितर दान ही उचित बताया है, उनके अनुसार–

"नश्यान्ते हव्यकव्यानि नराणां विजानताम्।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः।।"[2]

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में तपस्वी वेशधारी ब्राह्मणों के तेज को असहनीय कहा है–

"शमप्रधानेषु तपोवनेषु, गूढं हि दाहात्मकस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभावाद्वमन्ति।।"[3]

महाकवि भवभूति के ब्राह्मणों के आशीर्वाद को सब अस्त्रों से ऊपर बताया है तथा राम को अमोघ अस्त्र ब्राह्मणों का आशीर्वाद मानकर ब्राह्म तेज व क्षात्रतेज के सम्मिश्रण को बड़ा ही दुर्धर्ष प्रदर्शित किया है।[4]

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में ब्राह्मण, तपस्वी राजा दुष्यन्त को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करने का आशीर्वाद देता है।

जन्मयस्यपुरोवंशेयुक्तरुपमिदं तव।
पुत्रमेव गुणोपेत चक्रवर्तिनमाप्नुहि।।[5]

उत्तररामचरित में महारानी कौशल्या को समझाते हुए अरुन्धती ब्राह्मण की वाणी को दिव्यवाणी बताते हुए कहती है–

"आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां, येव्याहारास्तेषु मा संशयोभूत।
भद्रा ह्येषां वाच लक्ष्मीर्निषकता, नैते वाचं विप्लुतार्था वदन्ति।।"[6]

---

1. प्रति० ना० 5 : भो! काश्यपगोत्रोऽस्मि! साङ्गोपाङ्गवेदमधीये मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वर योगशास्त्र-बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम् मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।
2. मनुस्मृति० 3/97
3. अभि०शा० 2/7
4. महा०चरि० 2/5 : अमोघमस्त्रं क्षत्रस्य ब्राह्मणानामनुग्रहः। दुरासदं च तत्तेजः क्षत्रं यद् ब्रह्मसंयुतम्।।
5. अभि. शा. 1/12
6. उ०रा०चरि० 4/18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद में ब्रह्म तेज व क्षात्र तेज को राष्ट्र के लिए परस्पर मिलकर चलना भाग्यशाली कहा है–

"यत्र ब्रह्म च क्षात्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोके पुण्यं प्रज्ञेषम्॥"

क्षत्रिय–वेद में क्षत्रियों के लिए क्षत्र व क्षत्रिय शब्दों के अतिरिक्त राजन्, राजन्म, इन्द्र, मरुतः आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। क्षत्र शब्द उणादिकार ने क्षद्धातु से त्र प्रत्यय करके सिद्ध किया है।

"क्षदति रक्षतीति क्षत्रम्॥"[१]

वर्ण-व्यवस्था के क्रम में ब्राह्मण के पश्चात् क्षत्रिय आते हैं। वेदों के अनुसार ब्रह्मा की भुजा से क्षत्रिय उत्पन्न हुए।[2] अतः भुजा के उत्पन्न होने के कारण उनके कन्धों पर प्रजा की रक्षा का भार सौंपा गया। मनु जी के अनुसार भी ब्रह्मा ने भुजा से क्षत्रिय उत्पन्न किए[3] तथा उत्पत्ति के अनुसार उनका परम धर्म प्रजापालन निहित किया। मनु के अनुसार–

"क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते॥"[४]

मनु ने क्षत्रियों के निम्न कर्म नियत किये–

"प्रजानां रक्षणं दानविद्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥"[५]

कालिदास ने अभिज्ञानशकुन्तलम् में तपस्वी के माध्यम से क्षत्रिय का कर्तव्य, कर्म शस्त्र द्वारा पीड़ितों की रक्षा करना नियत किया है–

"तत्साधुकृतसंधान प्रति सहर सायकम्।
आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि॥"[६]

अन्यत्र मनु जी ने क्षत्रिय की उत्पत्ति ब्राह्मण से करते हुए उनका कर्तव्य न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करना बताया है–

---

1. उप० 4/168
2. ऋ० सं० 11/31
3. मनुस्मृति० 1/31
4. मनुस्मृति० 7/144
5. मनुस्मृति० 1/89
6. अभि०शा० 1/11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ब्राह्मणं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथा न्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम्।।"[1]

क्षत्रियों का परम कर्तव्य युद्ध का निमन्त्रण मिलने पर युद्ध करना है। युद्ध से पीठ दिखाकर भागना क्षत्रियत्व का अपमान करना है–

"समोत्तमाधमै राजात्वाहूतः पालयन्प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्।।"[2]

वेद में भी क्षत्रिय सेनापति का कर्तव्य युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना है। वेद सेनापति अर्बुदि को उत्साहित करते हुए कहता है–

"उत्तिष्ठं त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।
त्रजन्नमित्राणां सेना भोगेभिः परिवारय।।"[3]

इसी प्रकार भवभूति ने उत्तररामचरित नाटक में क्षात्र-धर्म का वर्णन लव तथा लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु के माध्यम से प्रस्तुत किया है। बाल्मीकि आश्रम के समीप लव अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा पकड़ लेते हैं तथा घोड़े के साथ आये चन्द्रकेतु अश्वमेध यज्ञ के नियमों के अनुसार लव से युद्ध करने को प्रस्तुत होते हैं। किंतु दोनों के मध्य एक-दूसरे को देखकर अनजान होते हुए भी भ्रातृ-प्रेम उमड़ता है, तथा दोनों कुमार भावविह्वल हो जाते हैं लेकिन क्षत्रिय कुमार अपने क्षत्रियोचित धर्म का स्मरण करते हुए कहते हैं कि शस्त्र तानकर युद्ध विमुख होना क्षत्रियों का धर्म व वीरता नहीं है, क्योंकि वीरों का वीर-रस पूर्ण कठोर कर्तव्य स्नेह मर्यादा का उल्लंघन करने वाला होता है–

किं चाक्रान्तकठोरतेजसि गतिः का नाम शस्त्रं विना?
शस्त्रेणापि हि तेन किं? न विषयो जायेत यस्येदृशः।
किं वक्ष्यत्ययमेव युद्धं विमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे?
वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते।।[1]

---

1. मनस्मृति 7/2
2. वही 7/87
3. अथर्ववेद 11.965

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियों का धर्म है बराबर वाले से युद्ध करना। यही बात भवभूति के नाटक में चन्द्रकेतु व लव के वार्तालाप के माध्यम से प्रदर्शित होता है। चन्द्रकेतु रथ पर सवार है तथा लव युद्धभूमि में पैदल युद्ध कर रहे हैं। चन्द्रकेतु इस बात का स्मरण कर रथ से उतर जाते हैं क्योंकि स्वयं रथ पर सवार हो कर पैदल लव से युद्ध करना वे क्षात्र-धर्म के विरुद्ध मानते हैं, क्योंकि–

"न रथिनः पादचारमभिमुन्चन्तीति शास्त्रविदः परिभाषन्ते।"[२]

मनु ने भी क्षात्र-धर्म बराबर वाले से युद्ध करना ही बताया है।[3] अन्यत्र भवभूति क्षत्रियों की धर्म व वीरता को प्रदर्शित करते हैं। वीर, क्षत्रिय, समस्त क्षत्रिय जाति पर आक्षेप नहीं सहन कर पाते हैं। इसीलिए लव सुमन्त्र से अश्वमेध-यज्ञ का घोड़ा पकड़े जाने का कारण बताते हुए कहते हैं कि मैंने यज्ञ में विघ्नवश यह घोड़ा नहीं पकड़ा है। बल्कि अश्वरक्षकों द्वारा समस्त क्षत्रियों पर आक्षेप होने के कारण, प्रचण्डता से मुझको क्रोध दिला दिया गया।[4]

भवभूति ने वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रियों व ब्राह्मणों के गुणों को प्रदर्शित किया है–

"बाह्वोवीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।।"[५]

महाकविकालिदास ने प्रजा का भार वहन करने वाले राजा को छाया देने वाले वृक्ष के समान बताया है।[6]

महाकवि भवभूति ने महावीर-चरित में क्षत्रिय की पहचान प्रदर्शित की है। राजा कृशध्वज विश्वामित्र के आश्रम में राम व लक्ष्मण को देखकर उनकी अवस्था व व्यक्तित्व से ही उनका क्षत्रिय होना जान लेते हैं क्योंकि–

---

1. उ॰रा॰चरि॰ 5/19
2. वही 5
3. मनुस्मृति॰ 7/93
4. उ॰रा॰चरि॰ 5/28 : वयमपि न खल्वेवंप्रायाः कृतप्रविघातिनः
क इह च गुणैस्तं राजानं न वा बहुमन्यते।
तदपि खलु मे स व्याहारस्तुरङ्गमरक्षिणां
विकृतिमखिलक्षेत्राक्षपप्रचण्डतयाऽकरोत्।।
5. वही 5/32
6. अभि. शा. 5/7 - स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसेलोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिर्खेविधैव।
ह्यनुभवति हि मूर्ध्नापादपस्तीव्रमुष्णं, शमयतिपरितापंछयया संश्रितानाम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चूडाचुम्बितकङ्कयत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोदयविश्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वं च रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलयानियन्जितमधोवाश्चमाञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डो परः पैप्पलः॥"[1]

उनको देखकर वह कह उठते हैं–

द्वितीयस्य च वर्णस्य प्रथमस्याश्रमस्य च।
अहो रम्यानयोर्मूतिर्वयसो नूतनस्य च॥[2]

मनुस्मृति में भी क्षत्रियों के लिए मूंज से बनी मेखला आदि यही गुण वर्णित हैं। महाकवि भास ने अविमारक नाटक में क्षत्रियों के गुणों का उल्लेख किया है। राजा कुन्तिभोज के मंत्री भूतिक कुमार अविमारक को न पहचानते हुए उसके क्षत्रियोचित गुणों से पहचान कर राजा से कहते हैं–

देवं रूपं ब्रहसमं तस्य वाक्यं
क्षात्र तेजः सौकुमार्यं बलं च।
यद्येवं स्यात् सत्यमस्यान्त्यजत्वं
व्यर्थेऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः॥[3]

अमात्य भूतिक उसके क्षत्रिय होने के और भी लक्षणों का परिचय राजा को देते हैं।[4]

भास ने उरुभंग नाटक में क्षत्रियों की तेजस्विता का वर्णन किया है। तथा मृत्योपरान्त भी उनकी कान्ति ज्यों की त्यों प्रदर्शित की है। कौरवों व पाण्डवों के युद्ध में केवल दुर्योधन कौरवों की ओर से बचे हैं। तथा उनका

---

1. महा॰चरि॰ 1/18
2. महा॰चरि 1/17
3. अवि॰ 1/7
4. अवि॰ –व्यायामस्थिरविपुलोभिकूलास्तांसो ज्याघातप्रचिताकिणोल्वणप्रकोष्ठः।
प्रच्छन्नोऽप्यनुकृतिलक्ष्यराजभावो मेघान्तर्गतर विवत् प्रमानुमेयः॥1/8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गदायुद्ध होने वाला है। सूत्रधार समस्त रणक्षेत्र को मृतकों से आच्छादित देखकर क्षत्रियों के मुख की क्रान्ति का वर्णन करते हुए कहता है कि क्षत्रियों की कान्ति मरने के बाद भी ज्यों की त्यों बनी हुई है।[1]

मनु ने भी राजा की उत्पत्ति देवताओं से मानकर उसके असीम तेज का वर्णन किया है।[2] इसी प्रकार कालिदास ने क्षत्रिय को तेजस्वी व सूर्य के समान प्रजा की रक्षा करने वाला बताया है–

भानुः सकृद्युक्त तुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रमाति।[३]
शेषः सदै वाहित भूमिभारः षष्ठाशं वृतेरपि धर्म एषः।।

अन्यत्र भास ने इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियों के गुणों के माध्यम से क्षत्रियत्व का सुन्दर वर्णन किया है। यहां वे क्षत्रियों की मृत्यु भी उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर प्रदर्शित करते हैं तथा उन्हें पराक्रमी व क्षात्र-धर्म का पूर्णतया पालन करने वाला दिखाया है। भरत अपने ननिहाल से लौटते समय प्रतिमागृह में इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की मूर्तियां देखकर तथा पुजारी से उनका परिचय जान कर कहते हैं–

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः।
एतै ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
मैते ते, मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगपता।।[४]

मनु ने क्षत्रिय के सामने विश्व के किसी भी पुरुष को ठहरने योग्य नहीं माना है। उनके अनुसार–

तपत्यादित्यववेष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चेनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्।।[५]

---

1. उरु॰ 1/13 स्त्रस्तोद्वर्तितनेत्रवट्पदगणा ताम्रोष्ठपत्रोत्करा,
भूमेदान्धित केसरा स्वमुकुटव्याविद्वसंवर्तिका।
वीर्यादित्यपि बोधिता रणमुखे नाराचनालोन्नता
निष्कम्पा स्थलपदिमनीव रचिता राज्ञामभीतैर्मुखः।।
2. मनुस्मृति॰ 7/5
3. अभि॰शा॰ 5/4
4. प्रतिमा ना॰ 3/7
5. मनुस्म॰ 7/6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावीर चरित में भवभूति क्षत्रियों का कर्तव्य, दुर्दान्तों का दमन करना भी वर्णित करते हैं। यह बात जामदग्न्य व दशरथ के माध्यम से प्रदर्शित होती है। शिव धनुष टूट जाने पर परशुराम क्रोधित होते हैं व सबके समझाने पर भी राम का वध करने को तत्पर रहते हैं व क्षत्रिय जाति के लिए अपमान जनक शब्दों का प्रयोग करते हैं तब दशरथ क्रोधित होकर कहते हैं कि दुर्दान्तों का दमन क्षत्रियों पर अवलम्बित होता है। इस कारण ब्राह्मण होते हुए भी तुम्हारी उपेक्षा नहीं की जायेगा क्योंकि-

दुर्दान्तानां दमनविधयः क्षत्रियेष्वायतन्ते
दुदांन्तस्त्वं वयमपि च ते क्षत्रियाः शासितारः।
सद्यः शान्तो भव किमपरं दम्यते चाधुनैव
क्व ब्रह्माणः प्रशमनपराः क्षत्रधार्यं क्व शस्त्रम्॥[1]

वेद में भी क्षत्रियों का कर्तव्य शत्रुओं के राष्ट्र, ओज, वीर्य और बल को विच्छिन्न करना कहा है-

"समहमेषां राष्ट्र स्यामिसमाजो वीर्य बलम्।
वृश्चामि शत्रुणां बाहूननेन हविषाहम्॥"[2]

मनु ने भी मारने योग्य दुष्टों को मारना एक यज्ञ के समान बताया है, उनके अनुसार-

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन्।
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्र-शत-दक्षिणैः॥[3]

महाकवि कालिदास क्षत्रियों के तेज को इतना अधिक बताते हैं कि सामान्यजन द्वारा उनके समीप जाना भी कठिन है। मालविकाग्निमित्र नाटक में गुरु हरदत्त की वाणी के माध्यम से यह स्पष्ट होता है- वे कहते हैं

न च न परिचितो न चाप्यगम्यश्चोक्तमुपेति तथापि पार्श्वमस्य।
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं में भवति, स एव न वो नवोऽयमक्ष्णोः॥[4]

अभिज्ञानशाकुन्तलम नाटक में क्षत्रियों के लक्षण प्रदर्शित किए गए हैं। राजा दुष्यन्त आश्रम में अपने पुत्र को देखकर न पहचानते हुए व तापसी

---

1. महाचरि॰ 3/34
2. अथर्ववेद 3.19.2
3. मनुस्मृति॰ 8/306
4. मालविका॰ 1/11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा उस पुत्र को पुरवंशी बताने पर विचार करते हैं कि आश्रम में क्षत्रियवंशी पुत्र होने का क्या कारण हो सकता है। तथा फिर स्वयं ही समर्थन करते हैं कि क्षत्रियों का यह कुलव्रत है कि–

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं
क्षितिरक्षार्थमुशांन्ति ये निवासम्।
नियतैकमतिव्रतानि पश्चात्तरमूलानि गृही भवन्ति तेषाम्।।[१]

भास ने पंचरात्रम् में क्षत्रियों की श्रेष्ठता प्रदर्शित की है। ऋषियों का सम्मान करना आवश्यक है तथा उनसे निम्न जाति वालों द्वारा उनका नाम पुकारा जाना अपमानजक है। राजा विराट के समक्ष पकड़ कर लाये गये अभिमन्यु को वृहन्नला वेशधारी अर्जुन नाम लेकर पुकारते हैं। इस पर अभिमन्यु कहता है–

नीचैरप्याभिभाष्यन्ते नामभिः क्षत्रियान्वयाः।
इहायं समुदाचारो ग्रहणं परिभूयते।।[२]

इसी प्रकार मनु नें बालक क्षत्रिय का भी सम्मान आवश्यक प्रदर्शित किया है।[3]

वैश्य–

परम तेजस्वी ब्रह्मा जी ने क्रमशः जांघों से वैश्य को उत्पन्न किया तथा विश्व की रक्षा के निमित्त प्रत्येक वर्ण के पृथक्-पृथक् कर्म निर्दिष्ट किये।[4] जिस प्रकार ब्राह्मण के लिए वेदों का अध्ययन, अध्यापन आदि, क्षत्रियों के लिए प्रजा पालन आदि, उसी प्रकार वैश्य के लिए प्रमुख रूप से धनोपार्जन करना निहित किया–

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।[५]

---

1. अभि॰शा॰ 7/20
2. पंच॰ 2/47
3. मनुस्मृति॰ 7/8 : बालोऽपि नावमन्तव्योमनुष्यो इति भूमिपः।
   महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।
4. वही 1/90
5. वही 10/80 : वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुपालन रूप कर्म के विषय में वेदों में कहा गया है–

इमं गोष्ठ पशवः ससुवन्तु बृहस्पतिरानयतुप्रजानन्।[१]

सिनी वाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नियच्छ।।

प्रजापति ब्रह्मा ने–

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून्।

ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः।।[२]

ऐसा कहकर वैश्य को मणि–माणिक्य आदि पदार्थों का मूल्य आदि देशकाल के अनुसार ज्ञानवान् होना चाहिए, यथा–

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च।

गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घ-बलाबलम्।।[३]

वैश्य को अच्छी कृषि के लिए अच्छे बीजों का ज्ञान व कृषि संबंधी ज्ञानवाला होना चाहिए।

बीजानामुप्तिविच्चस्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च।

मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः।।[४]

वेद में वैश्यों के लिए कृषि रूप कर्तव्य के लिए कहा गया है–

"सुबन्धवो ये विश्या इव व्राः

अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त प्रजाः।।"[५]

वैश्य के लिए व्यापारिक शिक्षा का ज्ञान व अच्छे व्यापार के लिए विभिन्न भाषाओं का ज्ञान होना अनिवार्य है जिससे कि देश-विदेशों तक व्यापारिक उन्नति हो व अधिक धन एकत्रित हो। जिससे देश की प्रगति हो तथा अन्न का उत्पादन व खपत दोनों का उचित ज्ञान होना चाहिए।

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान्।

लाभालाभं च घन्यानां पशूनां परिवर्धनम्।।

वार्ता कर्मेव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु।।

1. अथर्ववेद 2.26.2
2. मनुस्मृति॰ 9/327
3. वही 9/329
4. वही 9/330
5. ऋग्वेद 1.26/5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृत्यानां च भृतिं विधाद् भाषाश्च विविधा नृणाम्।
द्रव्याणां स्थानयोगाश्च क्रयविक्रयमेव च।।[1]

वाणिज्य के सम्बन्ध में वेद में धनवान वणिक को व्यापार में अग्रणी बनाने के लिए प्रेरित किया गया है–

"इन्द्रमहं वणिजं प्रेरयामि स म ऐतु पुरएता ना अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगंस ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्।।"[2]

वह धन की वृद्धि धर्मपूर्वक करता हुआ जीवों के लिए अन्न उत्पादन करे।

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेघत्नमुत्तमम्।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः।।[3]

महाकवि भास ने वर्ण-व्यवस्था का सुन्दर रूप प्रदर्शित किया है। उनके नाटकों में ब्राह्मण की श्रेष्ठता क्षत्रिय की वीरता के साथ-साथ वैश्य की गुणवत्ता भी प्रदर्शित की गई है। यहां तक कि उनके नाटक चारुदत्त का नायक ब्राह्मण या क्षत्रिय न होकर वणिक् पुत्र चारुदत्त है। यहां भास ने वैश्य के निर्धारित कर्मों को भाग्यवश छोड़े हुए व जीविका के हेतु तेलमालिश करने वाले वणिकपुत्र संवाहक को प्रस्तुत किया है। वणिक पुत्र संवाहक जुए में हार जाने पर व विजयी जुआरी द्वारा पीछा किऐ जाने पर गणिका बसन्तसेना के घर में आकर छिप जाता है तथा बसन्तसेना द्वारा पूछे जाने पर वह अपना परिचय देता है–

"पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः। प्रकृत्या वणिगहम्। ततो भागधेय परिवृत्ततया दशया संवाहकवृत्तिमुपजीवामि।।"[4]

संवाहक, आगे, बसन्तसेना से वणिक् पुत्र चारुदत्त के गुणों का वर्णन करता है–

"आकृतिमान् अविभ्रन् अनुसिक्तो ललितो ललिततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत आचितस्तुष्टो भवति। दत्त्वा न विकत्थते। अल्पमपि

---

1. मनुस्मृति॰ 9/331, 322
2. अथर्ववेद 3/15/1
3. वही 9/333
4. चारु॰ 2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरति, बहुकमप्यपकृतं विस्मरति। अज्जुके। किं बहुना, तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवसेनवर्णयितुं न शक्यम्। किं बहूना, दक्षिणतया परकीयमिवात्मनः शरीरं धारयति।।"[1]

शूद्र–वेदों में सभी वर्णों को समान स्थान प्राप्त था। वेद स्पष्ट घोषित करता है कि न कोई बड़ा है ना कोई छोटा सभी भ्राता सौभाग्य के लिए साथ-साथ बढ़ते हैं–

"प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतायें।।"[२]

चतुर्थ वर्ण शूद्र के लिए वेद में "शूद्रकृता" ऐसा समस्त पद मिलता है। एक मन्त्र में चाण्डाल शब्द आया है जो शूद्र का ही भेद है।[3]

मनु जी ने वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य को द्विजाति व चौथा वर्ण शूद्र माना है तथा चतुर्वर्णों से अतिरिक्त कोई वर्ण नहीं माना गया है, यथा–

ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णो द्विजातयः।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः।।[४]

ब्रह्मा जी के पैरों से शूद्र को उत्पन्न कर उसका कर्म तीनों वर्णों की सेवा करना निश्चित किया।

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।"[५]

वेद में भी कहा गया है कि सेवा रूप तप के लिए शूद्र को नियुक्त करो–

"तपसे शूद्रम्।।"[६]

शूद्र के लिए ब्राह्मण की सेवा से पृथक् अन्य कोई धर्म नहीं बताया गया है। यही धर्म उसे स्वर्ग प्राप्त कराने वाला है।

---

1. चारु० 2
2. अथर्ववेद 10.62, ऋग्वेद-5.60.5
3. यजुर्वेद 30.2
4. मनुस्मृति० 10/4
5. मनुस्मृति० 1/91
6. यजु० 30.5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्।
शुश्रूषेव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः॥"[१]

ब्राह्मण की सेवा से भिन्न कोई भी कर्म शूद्र के लिए निष्फल है।

"विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्ट कर्म कीर्त्यते।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम्॥"[२]

गीता में भी परिचर्या ही शूद्र का कर्तव्य माना गया है।[3]

मनु ने शूद्र के लिए ब्राह्मण की सेवा प्रमुख रूप से निर्दिष्ट की है, लेकिन यदि उसकी आजीविका ब्राह्मण से नहीं चलती तो उसे क्षत्रिय या फिर वैश्य की सेवा से अपनी जीविका चलानी चाहिए, यथा–

"शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराध्येद्यदि।
धनिनं वाप्युपाराध्यं वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्॥"[४]

मनु जी ने यद्यपि शूद्र को निम्न जाति वाला माना है, परन्तु यदि शूद्र भी उच्च जाति की सेवा में रहकर अच्छे कार्य करे तो उत्कृष्ट जाति को प्राप्त कर सकता है–

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूर्मुद्धवागनंहकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥[५]

वे आगे कहते हैं कि यदि ब्राह्मण शूद्र का धन लेकर अग्निहोत्र करते हैं तो वे भी निन्दनीय होते हैं तथा यदि शूद्र शास्त्रसम्मत कर्म करते हैं, तो उत्कृष्ट हो जाते हैं तथा संकटों से पार हो जाते हैं।

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम्।
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि सन्तरेत्॥[६]

---

1. मनुस्मृति० 9/334
2. मनुस्मृति० 10/123
3. गीता 18.44
4. वही 10/121
5. मनुस्मृति० 9/335
6. वही 11/43

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूद्र को भी वेद पढ़ने का वैसा ही अधिकार दिया गया है जैसा अन्य वर्णों को। एक मंत्र में कहा गया है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद पांचों प्रकार के मनुष्य मेरे यज्ञ को करें।[1]

यदि ब्राह्मण भी कोई निन्द्य कर्म करे तो वह ब्राह्मणत्व को छोड़कर शूद्रत्वको प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मण यदि मदिरा का सेवन कर लेता है तो शूद्रवत् हो जाता है।

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येताप्लाव्यते सकृत्।
तस्य व्यापैतिं ब्राह्मणव्यं शूद्रत्वं च स गच्छति।।[२]

मनु कहते हैं–

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं ते विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।[३]

शूद्र के लिए अपनी समान जाति वाली कन्या से ही विवाह करने का निर्देश है–

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्यां विधीयते।
तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत्।।[४]

शूद्रों के लिए शास्त्रानुसार चलने का मनु निर्देश करते हैं, तथा वैश्य के समान जन्म-मरण में शौचकर्म करना निगमित करते हैं।[5]

मनु जी ने यद्यपि ब्राह्मण को उच्च व शूद्र को निम्न स्थान प्रदान किया है लेकिन वे कहते हैं कि वित्त, बन्धु, वय, कर्म और विद्या इन पांचों गुणों की अधिकता जिस वर्ण में होगी वही मान्य होगा।[6] इस प्रकार दस दशक में पहुंचा हुआ शूद्र भी मान्य होगा।

---

1. ऋग्वेद 10.53.5 पञ्चजनाममहोडांजुषन्तोगोजाताउतमेयज्ञिभार
पार्थिवाहत्वहसोऽन्तरिक्ष दिव्यापात्वस्मान्।।
2. वही 11/97
3. मनुस्मृति॰ 10/65
4. वही 9/157
5. वही 5/140 : शूद्राणां मासिकं कार्य वपनं न्यायवर्तिनाम्।
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम्।।
6. वही 2/136 : वित्त बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी।
एतानि मान्य स्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च।

यत्रस्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गत।।[1]

वेद में वर्णन मिलता है कि शूद्र वर्ण के व्यक्तियों ने भी ऋषित्व के समान पूर्वपद को प्राप्ति की ऋगवेद में कहा है- अज्येष्ठसो अवनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।।

वेद में अन्यत्र कहा है- न मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्।[2]

इसी प्रकार भवभूति ने शूद्र शम्बूक को तपस्या करते हुए उत्तररामचरित में प्रस्तुत किया है। उसके घोर तप से ब्राह्मणों पर विपत्ति प्रदर्शित की है। शूद्र को भी तपस्या का अधिकार है तथा वह तपस्या से ब्राह्मण के समान ऊंचा उठता हुआ प्रदर्शित किया गया है। वासन्ती और आत्रेयी दोनों आपस में वार्तालाप करती हैं–

शम्बूको नाम वृषलः, पृथिव्यां तप्यते तपः।

शीर्षच्छेद्यः स ते राम। तं हत्वा जीवय द्विजम्।।[3]

शूद्र को भी तपस्या के फलस्वरूप श्रीराम ब्रह्म सम्बन्धी ऊंचे लोक को प्राप्त करने का श्रीराम आशीर्वाद देते हैं।[4] इस प्रकार शूद्र भी तप करके उच्च स्थान को प्राप्त कर लेता है।

महाकवि भवभूति ने, मनु क्रे अनुसार–दस दशक में पहुंचा हुआ शूद्र भी मान्य होगा, व कर्म से शूद्र भी ब्रह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है। उत्तररामचरित में सिद्ध ही है कि शूद्र शम्बूक ने तपस्या द्वारा निम्न जाति का होते हुए भी ब्रह्मलोक प्राप्त किया व भगवान श्रीराम जिनके दर्शन के लिए तप करता है, वे स्वयं उसे खोजते हुए दण्डक वन में आये। यह बात शूद्र शम्बूक भगवान् से कहता है–

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथः शरण्यो,

मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।

---

1. मनुस्मृति० 2/137
2. ऋगवेद 5.60.5
3. उ०रा० चरि० 2/8
4. वही 2/12 : यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, यत्र पुण्याश्च सम्पदः।
वैराजा नाम ते लोकास्तेजसाः सन्तु ते शिवाः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां संप्रसादोऽव्यथा तु,

क्वायोध्यायाः पुनरथगमो दण्डकायां वने वः?[1]

क्षत्रियों के लिए मन्त्र पढ़कर प्रणाम करना निर्दिष्ट है व शूद्रों के लिए बिना मन्त्र पढ़े प्रणाम करना। भास ने प्रतिमा-नाटक में यही बात भरत के माध्यम से वर्णित की है। राजकुमार भरत नाना के घर से लौटते समय मार्ग में देवदर्शन के विचार से देवमन्दिर में प्रवेश करते हैं तथा मूर्तियों को देखकर परिचय के अभाव में बिना मन्त्रोचारण के ही प्रणाम करना शूद्रवत् कहते हैं–

कामं देवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः।

वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चित दैवतः।।[2]

वर्णेतर जातियां–

वेदों व स्मृतियों में चार वर्णों के अतिरिक्त वर्णेतर जातियों का भी वर्णन मिलता है जिन्हें शूद्र से भी निम्न माना गया है। यजुर्वेद में इन्हें अरण्य से सम्बोधित किया गया है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।

ब्रह्मजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।[3]

व्यास स्मृति में चर्मकार, भट, भिल्ल, रजक, पुष्कर, नट, विराट, मैयद, चाण्डाल, यश, श्वपच, कोलिक, नाम बारह अन्त्यजों के नाम आये हैं। इस स्मृति में गाय का मांस खाने वाली हिन्दु सभी जातियां अन्त्यज कही जाती हैं।[4]

हिन्दू धर्मकोश में भी धोबी, चर्मकार, नट, वरुड, कैवर्त, भेद, भिल्ल ये सभी अन्त्यज कहे गये हैं।

रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड़ एव च।

केवर्तभेद भिल्लाश्च सप्तेते अन्त्यजाः स्मृताः।।[5]

---

1. उ॰रा॰ चरि॰ 2/13
2. प्रति॰ना॰ 3/5
3. यजुर्वेद सं॰ अ॰ 26, मं॰ 2
4. व्या॰ स्मृ॰ 1/12.13
5. हिन्दू धर्मको॰ पृ॰ 35

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु ने वर्णेतर जातियों की उत्पत्ति के विषय में मनुस्मृति में इस प्रकार वर्णित किया है–

आयोगवश्च क्षत्ताचचण्डालश्चाधमो नृणाम्।
प्रातिलोम्ये न जायन्ते शूद्रादपसास्त्रयः॥
झल्लोमल्लश्चराजन्यादव्रात्यन्निच्छिविरेव च।
नटस्य करश्चैव रवसो द्रविड एव च॥[१]

मनु ने निम्न जातियों को वर्णसंकर कहा है तथा वर्णेतर जातियों के अन्तर्गत माना है–

सुतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः।
मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽऽयोगेव एव च॥[२]

भास के नाटकों में अन्त्यज कहलाने वाली जातियों का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। कर्णभार में सूत्रधार के पश्चात् ही युद्धस्थल का समाचार देने हेतु भट का प्रवेश मिलता है।[3] भास के लगभग प्रत्येक नाटक का प्रारम्भ भट द्वारा दी गई घटनाओं की सूचना से मिलता है। दूत घटोत्कच नाटक अभिमन्यु के मरणोपरान्त की घटनाओं से प्रारम्भ है। अतः धृतराष्ट्र को अभिमन्यु के मरण का वृत्तान्त भट ही सुनाता है तथा महाराज धृतराष्ट्र द्वारा परिचय पूछे जाने पर अपना परिचय देते हुए कहता है–

"महाराज! ननुजयत्रातोऽस्मि"[४]

पंचरात्र में भी दुर्योधन द्वारा पानी लाने का आदेश देने पर भट ही पानी लेकर उपस्थित होता है।[5]

दुर्योधन द्वारा विराट की गौओं का हरण-वृत्तान्त भी भट ही राजा विराट को सुनाता है।[6]

---

1. मनुस्मृति॰ 10/16, 22
2. मनुस्मृति॰ 10/26
3. कर्णभा॰ 1/10 पृ॰
4. दु॰ घटो॰ 1/पृ॰ 7
5. पंच॰ 1/पृ॰ 27
6. वही. 10/2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति के नाटकों में भी वर्णेतर जातियों के अन्तर्गत नट तथा भट सूत आदि का वर्णन मिलता है। नाटक के प्रारम्भ में नट का प्रवेश दृष्टिगत होता है–

"कृतप्रसादाः परिषदाः। किन्त्वपूर्वत्वात्प्रबन्धस्य कथाप्रवेशं सभारम्भे श्रोतुमिच्छन्ति।"[1]

इसी प्रकार राजा कुशध्वज दूत के साथ विश्वामित्र की महानता के विषय में वार्तालाप करते हैं–

"सूत–सांकाश्यनाथ! एवमेतत्। न खलु विश्वामित्रादृषिमंहत्त्वेन कश्चिदपरः प्रकृष्यते।"[2]

"तदस्मिन्........गृहवताम्।"[3]

मालतीमाधव नाटक के प्रारम्भ में भी सूत्रधार के साथ नट का प्रवेश मिलता है। नट सूत्रधार से ब्राह्मणों व विद्वानों के गुणों के विषय में पूछता है।[4]

इसी प्रकार मालती को पुरश्चरण व्रत की सफलता हेतु बलि देने वाले चाण्डाल अघोरघण्ट का वर्णन मिलता है।[5]

भवभूति ने उत्तररामचरित नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना के सात श्लोक ही नट के माध्यम से प्रस्तुत किए हैं। सूत्रधार द्वारा जामाता के विषय में पूछने पर नट कहता है–

कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ।[6]

जनक से लवकुश के विषय में वार्तालाप करते हुए कंचुकी का भी वर्णन मिलता है।[7]

1. महा॰ चरि 1/पृ॰ 7.
2. वही 1/पृ॰ 10
3. वही 1/11
4. माल॰माध॰ 1/पृ॰ 8, 9
5. वही 5/25
6. उ॰रा॰चरि॰ 1/4/पृ॰
7. वही 4/पृ॰ 321

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास के अविमारक नाटक का प्रारम्भ नटी व सूत्रधार के माध्यम से होता है। नटी सूत्रधार से कहती है–

"इच्छाम्यार्येण सहोद्यानं गन्तुम्। अस्ति मे तत्र स्त्रीकरणीयं नियमकार्यम्"[1]

कौंजायन मंत्री राजा से अविमारक के स्वयं को अन्त्यज होने की बात बताने का वर्णन करते हैं तथा अन्त्यजों को अकुलीन बताते हुए उसके दयावान होने पर भ्रमित होते हैं।[2] इसी नाटक में यह बात प्रदर्शित की गई है कि अन्त्यज अन्य वर्णों के समान निर्मल चरित्र वाले नहीं होते–

"यदि च विभवस्यज्ञानसत्त्वादयः स्युर्न
तु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः।"[३]

वर्णेतर जातियों के अन्तर्गत ही प्रतिमागृह के सेवक भट व दासीपुत्र सुधाकर का वर्णन मिलता है, जो कि इक्ष्वाकु राजवंशियों के दर्शनार्थ कौशल्या आदि महारानियों के आगमन की सूचना पाकर प्रतिमागृह की सफाई में संलग्न है।[4] इसी अंक में भरत के रथ को हांकने वाले सूत का भी वर्णन है, जो भरत को महाराज दशरथ की रोगावस्था के विषय में बताते हैं।[5]

प्रतिज्ञायोगन्धरायण में भी नाटक के प्रारम्भ में नटी व सूत्रधार का वार्तालाप मिलता है तथा भट व गात्रसेवक महावत का वर्णन मिलता है।[6]

स्वप्नवासवदत्ता में मार्ग खाली कराने के उद्देश्य से दो भटों का प्रवेश मिलता है।[7]

भास का यह नाटक नाटकीय-परम्परा से थोड़ा भिन्न है। इसका नायक ब्राह्मण पुत्र चारुदत्त व नायिका नटी कन्या गणिका बसन्तसेना है। विदूषक

---

1. अवि॰ 1/पृ॰ 3
2. वही 1/पृ॰ 13
3. अवि॰ 2/5
4. प्रति॰ना॰ 3/पृ॰ 84
5. वही 3/पृ॰ 99
6. प्रतिज्ञायो॰ 4/पृ॰ 106
7. स्वप्नवा॰ 1/पृ॰ 6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा पीछा किया जाती हुई व उनके घर में छिपी हुई बसन्तसेना के विषय में परिचय देते हुए कहता है–

"...भो चारुदत्त! राजाश्यालः संस्थानः सपट्टेन शीर्षेणानुबन्ध विज्ञापयति नाटकस्त्री बसन्तसेना नाम गणिकादारिकास्माभिर्बलात्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालङ्कारेण युष्माकं गेहं प्रविष्टा। सा वो निर्यातयितव्येति।।"[1]

इस प्रकार भास ने चारुदत्त नाटक में वैदिक वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत चारों वर्णों व वर्णेतर जाति-सभी का निरुपण कर वर्ण-व्यवस्था का सुन्दर रूप प्रदर्शित किया है।

कालिदास ने वर्णेतर जातियों में सूत का वर्णन किया है जो राजा के रथ को हांकता है।[2] राजा दुष्यन्त के कृष्णसार मृग का पीछा किये जाने पर सारथि बताता है–

"आयुष्मान्! अस्य खलु ते बाणपातवर्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः।[3]

कालिदास ने शूद्रेतर जातियों के अन्तर्गत मछली पकड़ने वाले धीवर का वर्णन किया है जो राजसिपाहियों द्वारा पकड़े जाने पर अपना परिचय इस प्रकार देता है–

"अहंशक्रावताराभ्यन्तराजवासी धीवरः"[४]

महाकवि कालिदास ने अन्त्यज के माध्यम से वंशपरम्परागत कार्य के महत्व का अप्रस्तुतप्रशंसालंकार द्वारा बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्म में आस्थावान् व गर्वित होना चाहिए इस कथन द्वारा एक मछली पकड़ने वाले सामान्य से नागरिक के माध्यम से समाज को सन्देश दिया है–कोतवाल, धीवर द्वारा अपनी आजीविका मछली पकड़ना बताने पर, व्यंग्य में उसकी आजीविका को पवित्र कहकर हंसता है तो धीवर बताता है–

1. चारु० 1/पृ० 39
2. विक्रमो. 1/पृ० 11
3. अभि०शा० 1/पृ० 14
4. वही 6/पृ० 200

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः।[1]

यहां कालिदास ने भास की अविमारक नाटक में अन्त्यजों के विषय में यह उक्ति कि अकुलीनों में चरित्र व ज्ञान का अभाव होता है, गलत सिद्ध कर दिया है। इसी प्रकार भवभूति ने भी उत्तररामचरित में शूद्र शम्बूक को तपस्वी दिखाकर भास के उक्त कथन "अकुलीनों के चरित्र निर्मल नहीं होते"—को अनुचित ठहराया है।

♣♣♣

1. अभि॰शा॰ 6/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय : आश्रम-व्यवस्था

आश्रमव्यवस्था–ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम

आश्रमव्यवस्था

प्राचीन वेदों व ग्रन्थों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गई है। आयु के अनुसार मानव-जीवन को क्रमबद्ध व नियमित करने हेतु प्राचीन ऋषियों व द्रष्टाओं ने चार आश्रम निर्धारित किए तथा मनुष्य के लिए पच्चीस वर्ष प्रत्येक आश्रम में व्यतीत करने का प्रावधान किया। ये चारों आश्रम क्रमशः ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम हैं। मानव-जाति के समस्त सांसारिक कर्म व कर्तव्य इन्हीं आश्रमों में पूर्णता प्राप्त करते हैं। ये सभी आश्रम पुरुषार्थ-चतुष्ट्य की प्राप्ति हेतु साधन रूप हैं। धन्वन्तरि ने मनुष्य-देह की चार अवस्था बताई हैं।[1] उन्होंने शतपथ ब्राह्मण के चारों आश्रमों को क्रमानुसार प्रदर्शित किया है।[2]

युगद्रष्टा मनु ने चारों आश्रमों को शास्त्रानुसार प्रतिबन्धित किया है। उनके अनुसार चारों आश्रम परम पद को प्राप्त करने हेतु आधार स्तम्भ हैं।

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते श्यधाशास्त्रं निषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम्।।[३]

मनु के अनुसार जो व्यक्ति धर्मपूर्वक चारों आश्रमों का पालन करता है वह इस लोक में सांसारिक सुखों का अनुभव करते हुए परलोक में पुण्य फल को प्राप्त करता है।

एव वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
पुण्योगक्षयफलः प्रेत्य... ... ...।[४]

मनु के अनुसार–

---

1. धन्वन्तरि जी कृत सुश्रुत ग्रंथ–
चतस्रो वस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किंचित्परिहारिणश्चेति। तत्रोषोडशाद् वृद्धिः आपन्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिशतरसम्पूर्णता ततः किंचित्परिहाणिश्चेति।
2. शत० ब्रा० ब्रह्मचर्याश्रम समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वाप्रव्रजेत्।।
3. मनुस्मृति० 6/88
4. वही 6/97

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्।[1]

ब्रह्मचर्याश्रम–

मनु ने आयु के प्रथम वर्षों को ब्रह्मचारी रहकर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए बिताने का निर्देश दिया है। ब्रह्मचारी के लिए वेद पढ़ना आवश्यक बताते हुए मनु कहते हैं–

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरो त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा।।[2]

ब्रह्मचारी के लिए वेदों का अध्ययन आवश्यक बताते हुए मनु कहते हैं कि विद्या की अधिष्ठात्री देवी ने मुझसे कहा कि वेदपाठी, ब्रह्मचारी-ब्राह्मण शिष्य को मुझे प्रदान करो–

यमेव तु शचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने।।[3]

तीनों वेदों या दो या एक ही जितना भी सम्भव हो ब्रह्मचारी के लिए वेदों का अध्ययन करना आवश्यक है। उसी के बाद ब्रह्मचर्याश्रम पूर्णता को प्राप्त करता है तत्पश्चात् द्वितीय आश्रम, गृहस्थाश्रम में प्रवेश का अधिकार है।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रमावसेत्।।[4]

ब्रह्मचारी के लिए इन्द्रियों को वश में करना अति आवश्यक है। यही उसकी तपस्या बताते हुए मनु जी कहते हैं–

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन्।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपो वृद्यर्थमात्मनः।।[5]

---

1. मनुस्मृति॰ 4/1
2. मनुस्मृति॰ 3/1
3. वही 2/115
4. वही 3/2
5. मनुस्मृति॰ 2/175

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी को अन्तेवासी की तरह गुरु गृह में रहना पड़ता था।[1]

ब्रह्मचारी के लिए नित्य यज्ञ करने का निर्देश किया गया है। उसे नित्य स्नान से पवित्र होकर देव ऋषि और पितरों का तर्पण, देवपूजन और अग्न्याधान करना चाहिए।[2]

मनु ने ब्रह्मचारी के लिए कामोत्तेजक वस्तुओं का सेवन वर्जित कहा है–

वर्जयैन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः।

शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥

अभ्यङ्गमंजनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।

कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्॥

घृतं च जनपवादं च परिवादं तथानृतम्॥

स्त्रीणां च प्रेक्षममालम्भमुपघातं परस्य च॥[३]

ब्रह्मचारी के लिए भिक्षावृत्ति करना उपवास के समान बताया गया है।[4] जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर ब्रह्मचर्य को धारण कर महा तप करता हुआ पृथिवी पर अपने शुभ गुणों से प्रकाशमान होता है वही श्रेष्ठ है।

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपो तिष्ठत्वप्यमानः समुद्रे।

स स्नातो बभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहु रोचते॥[5]

ब्रह्मचारी के लिए सूर्योदय के पश्चात् सोना महापाप बताया गया है। उसकी अनजाने में हुई इस भूल के लिए उपवास व मंत्र जाप का निर्देश है।[6]

---

1. छान्दो॰उप॰2/23/1
2. मनुस्मृति॰ 2/176
3. वही 2/177, 2/178, 2/179
4. मनुस्मृति॰ 2/188 : भैक्षेण वर्तयोन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती।
   भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवास समा स्मृता॥
5. अथर्व॰ का॰ 11/प्रपा॰ 24/सू॰ 1/वर्ग 16/मं॰26
6. मनुस्मृति॰ 2/220

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए इन्द्रियों को वश में रखकर वेदपठन, वीर्यनिग्रह, आचार्य के प्रति सुन्दर आचरणों को करता हुआ मनुष्य सुन्दर लोक को प्राप्त करता है।

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः।
स गच्छत्युत्तमस्थानं ने चेहाजायते पुनः॥[1]

भवभूति ने महावीरचरित नामक नाटक में राम व लक्ष्मण के माध्यम से ब्रह्मचर्याश्रम का वर्णन किया है। राजा कुशध्वज राम व लक्ष्मण को मेखला पहने हुए मृगचर्म धारण किए हुए व हाथों में अक्षसूत्र व पिप्पल दण्ड को लिए हुए देखकर उनके उपनयन संस्कार किये हुए ब्रह्मचारी होना जानकर कहते हैं कि क्षत्रिय जाति तथा ब्रह्मचर्याश्रम और बाल्यावस्था की कैसी अच्छी रमणीय मूर्ति हैं।

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तृणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोकपविश्रलान्छनमुरो धत्ते त्वंव रोरवीम्।
मोर्व्यां मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च मान्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डो परः पैप्पलः॥[2]

उत्तररामचरित में लव को बाल्मीकि आश्रम में इन्हीं अवस्थाओं को देखकर राजा जनक उसका क्षत्रिय ब्रह्मचारी होना निश्चित करते हैं।[3]

मनु ने भी प्रत्येक ब्रह्मचारी के लिए वर्णानुसार मेखला, चर्म, सूत्र व दण्ड ग्रहण करना प्रत्येक व्रत में अनिवार्य बताया है।[4]

आश्रम में ही लव को देखकर कौशल्या ब्रह्मचर्यावस्था के तेज का वर्णन करते हुए कहती है कि ब्रह्मचारियों की मण्डली को अलंकृत करने वाला यह बालक कौन है?

कुवलवदलस्निधयामः शिखण्डमण्डलो
वटुपरिषदं पुष्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।

---

1. मनुस्मृति॰ 2/249
2. महा॰चरि॰ 1/18
3. उ॰रा॰चरि॰ 4/19
4. मनुस्मृति॰ 2/174 : यद्यस्य विहितं चर्म यदसूत्रं या च मेखला।
यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो,
झटिति कुरुते दृष्टः को यं दृशोरमृताञ्जनाम्।।[१]

गृहस्थाश्रम–

गृहस्थाश्रम का अर्थ है ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियतकाल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृह कृत्य करना, सत्य धर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करना। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ प्रदर्शित किया गया है। इसे वायु के समान बताते हुए मनु कहते हैं–

यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजंतवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य बर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।[२]

गृहस्थ वेद एवं स्मृतियों द्वारा कही हुई विधियों का पालन करता हुआ तीनों आश्रमों का पालन करता है–

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृति-विधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्विभर्ति हि।।[३]

तीनों आश्रम वाले वेद ज्ञान की चर्चा करते हुए गृहस्थ पर अन्न के लिए आश्रित होते हैं इस प्रकार तीनों का आश्रयी स्थान होने के कारण गृहस्थाश्रम विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है।

यस्माद्यत्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन वान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।[४]

वेदों में गृहस्थी के लिए निर्देश है कि गृहस्थ जन परिवार में एक साथ मिलकर उसी प्रकार कार्य करें जैसे रथ की नाभि में अरे जुड़े होते हैं।[1]

---

1. उ॰चरि॰ 4/19
2. मनुस्मृति॰ 3/77
3. वही 6/89
4. मनुस्मृति॰ 3/78
   समानी प्रपासह वोऽनू भागः समानेयांवत्रे सहवोयुनज्मि।
   समयञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु ने गृहस्थाश्रम को समुद्र के समान बताया है जिस प्रकार समुद्र सभी नदियों का आश्रय स्थान है उसी प्रकार गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का आश्रय स्थान है।[2]

मनु ने गृहस्थियों को देह संन्यासी कहा है एवं सभी आश्रमों का उत्पत्ति स्थान भी गृहस्थाश्रम को ही कहा है–तथा वेदों में कहा है कि परिवार के सभी लोग एक मति वाले व एक उद्देश्य वाले हों–

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वान्प्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वार, पृथगाश्रमाः।।[३]

ज्यायखन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः मधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्यु, वदन्त एव सध्रीची नान्वः संमनसस्कृणोमि।।[४]

चूल्हा, चक्की, झाड़ू, उखल, मूसल और जल का कलश ये पांचों गृहस्थ में हिंसा स्थान होने के कारण पापप्रद होते हैं।[5] अतः महर्षिगण उन पापों से बचने के लिए गृहस्थ को नित्यप्रति पंचमहायज्ञ करने का निर्देश करते हैं।[6]

वैवाहिकेऽग्नो कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पंचयज्ञविधानं च पंक्ति चान्वाहिकी गृही।।[७]

मनु ने मनुष्य के लिए नित्य पंचयज्ञों को करते हुए जीवन के द्वितीय भाग में गृहस्थाश्रम में निवास करने का निर्देश किया है।

अनेन विधिना नित्यं पंचयज्ञान्न हापयेत्।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्।।[८]

---

1. अथर्ववेद 3.30.6
2. अथर्ववेद 6/9 : यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
   तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।
3. वही 6/87
4. अथर्ववेद 3.30.5
5. वही 3/68
6. वही 3/69
7. मनुस्मृति॰ 3/67
8. वही 5/169

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति उत्तररामचरित में राजा जनक के माध्यम से गृहस्थाश्रम की नियमबद्धता का वर्णन करते हैं। राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये हुए राजा जनक के मिथिला लौटने पर सीता जी उदास हो जाती हैं तब श्रीरांम उन्हें सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि गृहस्थ नित्य कर्मों में बंधा होने से स्वतन्त्र नहीं होता इसलिए नित्य यज्ञों का अनुष्ठान करने के निमित्त उनका जाना अनिवार्य है। गृहस्थ को अग्निहोत्री बताया है–

किंत्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।[१]

कालिदास ने राजा दुष्यन्त को जो कि गृहस्थाश्रम का पालनकर रहे हैं ऋषि को समान बताया है क्योंकि यह सब आश्रमों के आश्रय आश्रम गृहस्थाश्रम को धारण किए हुए है। जिस प्रकार सब छात्रों का आश्रय तपोवन होता है तथा ऋषि धर्म रक्षा के लिए तपस्या करते हैं तथा यह प्रजा रक्षा के निमित्त तपस्वी जैसा जीवन व्यतीत करता है। इसी प्रकार मनु ने भी गृहस्थ को देह संन्यासी कहा है।

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगतिः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः।।[२]

वानप्रस्थाश्रम–

क्रमशः दोनों आश्रमों-ब्रह्मचर्य व गृहस्थाश्रम का पालन करने के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम का पालन करना चाहिए। मनु के अनुसार गृहस्थ के शरीर पर जब झुर्रियां पड़ जायें व पुत्र के भी पुत्र हो जाये तो उसे वानप्रस्थी हो जाना चाहिए।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।[३]

वेदों में वान्प्रस्थाश्रम को आवश्यक प्रदर्शित किया गया है–

---

1. उ॰रा॰चरि॰ 1/8
2. अभि॰शाकु॰ 2/14
3. मनुस्मृति॰ 6/2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।[1]

अन्य वानप्रस्थी के लिए तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास एवं सुविचार से ज्ञान प्राप्ति कहा है।[2]

गृहस्थ के लिए संसार के मोहों को त्यागकर व आत्मा को अजर-अमर जानकर दुखरहित वानप्रस्थाश्रम में आरूढ़ होना चाहिए।

आ नयैतमारभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजाजन।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजोनाकमाक्रमतां तृतीयम्।।[3]

वेदों में मनुष्य के लिए वानप्रस्थी होकर नम्र होना व कल्याण के लिए वानप्रस्थाश्रम की इच्छा का निर्देश है–

भद्रमिच्छन्त ऋषयस्स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्र बलमौजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु।।[4]

मनुष्य को पारिवारिक व सांसारिक मोहों को त्यागकर व वानप्रस्थाश्रम की प्रज्ञा व तप को बताते हुए तथा प्रजा के कल्याण हेतु वानप्रस्थाश्रम को धारण करने की आज्ञा लेनी चाहिए–

मा नो मैधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्ट यत्तपः।
शिवा नः सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः।।

जो मनुष्य जंगल में रहते हुए भिक्षा द्वारा जीवन यापन करते हुए प्राणायाम द्वारा जीवन धारण करते हैं वह परमात्मा के निवास स्थान को प्राप्त करते हैं इसलिए वानप्रस्थ आश्रम उत्तम आश्रम है।[5] इस प्रकार शास्त्रविध से धर्मपूर्वक गृहस्थ आश्रम के पश्चात् वन को जाये–

एवं गृहाश्रमो स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।

---

1. यजु॰अ॰ 10/मं॰ 30
2. यर्जु॰ 20/मं॰ 24 अभ्याद्धामि समिधमग्नेव्रतपतेत्वयिं।
   व्रतञ्चे श्रद्धां चौर्पेमीन्धेत्वां दीक्षितोऽहम्।
3. अथर्व॰ का॰ 9 सू॰ 5 मं॰।
4. अथर्व॰ का॰ 19 सू॰ 41 मं॰।
5. मुण्डो॰ उप॰ मु॰1/खं॰2/मं॰7
   तपः श्रद्ध येह्युपवतन्त्यरण्यें शान्त्या विद्धांसो भक्ष्यचर्यान्वरन्तः।
   सूर्यद्धारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतःस पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वने वसैत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः॥[1]

सांसारिक वस्तुओं व स्त्री-पुत्रादिकों का मोह त्यागकर घर की होमाग्नि व उपकरण लेकर गांव से बाहर जितेन्द्रिय होकर वन में रहना चाहिए।

संत्यज्य ग्राम्यताहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्नि परिच्छदम्।
ग्राम्यारण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥[2]

वानप्रस्थी के लिए निवास करते हुए भी गृहस्थ की तरह वन्य सामग्री से ही नित्य पंच महायज्ञों का विधान है।

मुन्यन्नैर्विविधैर्मध्यैः शाकूमूलफलेन वा।
एनानेन महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्॥[3]

मनु ने वानप्रस्थी के लिए संन्यासी की तरह वल्कल वस्त्र व जटा दाढ़ी व मूंछ रखने का निर्देश दिया है–

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नाया त्प्रगे तथा।
जटाश्च विभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च॥[4]

मनु का अनुगमन करते हुए महाकवि कालिदास ने पिता कण्व द्वारा पुत्री शकुन्तला को उपदेश देने के माध्यम से पुत्र को राज्यभार सौंपकर पुनः पति के साथ वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर आश्रम में आने की बात की है–

भृत्या चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दोष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥[5]

---

1. मनुस्मृति॰ 6/2
2. वही 6/3, 6/4
3. वही 6/5
4. मनुस्मृति॰ 6/6
5. अभि॰शाकु॰ 4/20

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि भवभूति ने सीता राम व लक्ष्मण द्वारा अपने वनगमन का चित्र देखते हुए वार्तालाप के माध्यम से वानप्रस्थियों द्वारा गृहस्थाश्रम के पश्चात् वन में वानप्रस्थी जीवन व्यतीत करने का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है–

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी तटेषु
वैखानसाश्रिततरुणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरसा यमिना भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचना गृहिणी गृहाणि।।[1]

चित्र को देखकर लक्ष्मण श्रीराम को वल्कल पहने व जटा धारण किए हुए देखकर कहते हैं कि इक्ष्वाकुवंशी जिस वनवास के व्रत को वृद्धावस्था में धारण करते थे उसे श्रीराम ने बाल्यावस्था में धारण किया है। भवभूति ने मनु के अनुसार वानप्रस्थियों के लिए वल्कल व जटा धारण करने का वर्णन किया है–

पुत्र संक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।
धृतं बाल्ये तदार्येणपुण्यमारण्यक व्रतम्।।[2]

उत्तररामचरित में सौवातकि व दण्डायन नामक बाल्मीकि आश्रमवासियों के वार्तालाप के माध्यम से सीता परित्याग जन्य दुःख के कारण राजा जनक के वानप्रस्थी होकर चन्द्रद्वीप तपोवन में रहने का वर्णन मिलता है।

यद्देव्याः सीतायास्तादृश देवदु-
र्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः।
संवृत्तः तस्य कतिपयसंवत्सरश्-
चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।।[3]

संन्यासाश्रम–

संन्यास आश्रम का अर्थ है–मोहादि आवरण पक्षपात रहित विरक्त चित्त समस्त पृथ्वी पर परोपकारार्थ विचरण करना।

मानव-जीवन की चतुर्थ अवस्था संन्यास की अवस्था है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य के अन्तर्गत मोक्षप्राप्ति भी संन्यास आश्रम में ही होती है। मनु ने

1. उ॰रा॰चरि॰ 1/25
2. उ॰रा॰चरि॰ 1/22
3. वही 4/पृ॰ 285

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु की तीसरी अवस्था का वानप्रस्थाश्रम में व्यतीत कर अन्त में सभी सांसारिक मोहों को त्यागकर संन्यासाश्रम में जीवन व्यतीत करने का निर्देश किया है–

वनेषु च विंहुत्यैव तृतीयं भागमायुषः।

चतुर्थमायुषो भागत्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत्।।[1]

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ के वचन हैं कि वैराग्य प्राप्त होने पर संन्यास ग्रहण कर लें–

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रवजेत्।।[2]

ब्राह्मण को शास्त्रोचित कर्म करने के पश्चात् अग्नि का समारोपण कर संन्यास लेने के लिए घर से निकल जाना चाहिए।

प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्व वेदसदक्षिणाम्।

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मण प्रव्रजेद्गृहात्।।[3]

इसी प्रकार ब्राह्मण यजुर्वेद में संन्यासी के मोक्ष साधनों में लगे रहने का निर्देश है–

प्राजापत्यां निरुप्योष्टिं तस्यां सर्ववेद सहुत्त्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्।।[4]

मनु कहते हैं कि क्रमशः वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन और यज्ञानुष्ठान करने के पश्चात् अर्थात् क्रमशः तीनों आश्रमों का पालन कर मन को चौथे आश्रम में लगाना चाहिए।

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।

इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञर्मनो निवेशयेत्।।[5]

मनुष्य को अपने जीवन में अनेकों ऋणों से उऋण होना पड़ता है अतः क्रमशः तीनों आश्रमों में तीनों ऋण शोध कर ही मोक्ष प्राप्ति हेतु संन्यास

---

1. मनुस्मृति० 6/33
2. ब्रा० ग्र०
3. वही 6/38
4. यजु० ब्राह्मणं।
5. वही 6/36

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करना चाहिए वरना ऋण शोधन किए बिना मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा नरक पहुंचाने वाली होती है।[1]

मनुष्य को परलोक में परम सुख की प्राप्ति हेतु संन्यासाश्रम का विधान है परन्तु संन्यास धारण से पूर्व जितेन्द्रिय व नित्य यज्ञों का पालन पूर्ण करना अनिवार्य है क्योंकि एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाता हुआ जो जितेन्द्रिय तथा अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मों से थक कर अन्त में संन्यास लेकर देह छोड़ता है, वह परलोक में महानश्रेय को पाता है।[2]

जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन पुत्रोत्पादन व यज्ञों का अनुष्ठान किए बिना संन्यास धारण करता है वह निकृष्ट गति को पाता है।[3]

संन्यासी के लिए मोह शोकादि भावों का त्याग कर संन्यासाश्रम में आत्मा के केवल एक ही भाव को देखने का विधान है–

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मेवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।[४]

इस प्रकार संन्यासी के लिए सारे संसार में व्याप्त परमात्मा को आत्मा के समीप स्थित कर उसमें प्रतिदिन समाधियोग से प्रवेश करने का निर्देश है।

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिश्च।
उपस्थाय पृथमामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश।।[५]

अतः जो प्राणी समस्त जीवों में परमात्मा को देखता है तथा उसे सर्वव्यापी सर्वान्तर सर्वान्तरव्यापी जानता है वही उत्तम संन्यासधर्म को प्राप्त होता है–

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।

---

1. मनुस्मृति॰ 6/35 : ऋणीनिर्श्रीण्ययपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
   अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो ब्रजत्यधः।।
2. वही 6/34
3. वही 6/36 : अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
   अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छव्रजत्यधः।।
4. यजु॰ सं॰ 40/मं॰ 7
5. यजु॰ अ॰ 32/मं॰ 11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।।[१]

इसी प्रकार ऋग्वेद में संन्यासी के लिए चारों ओर प्रकाशमान ईश्वर को अपनी आत्मा में धारण कर आनन्द प्राप्त करने का उपदेश है–

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत।

अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्त्तन।।[२]

इसी प्रकार वेदों के अनुसार मनु ने भी संन्यासी के लिए ध्यान योग का वर्णन करते हुए कहा है कि जो बड़े-छोटे प्राणी और अप्राणियों में अशुद्धात्माओं के देखने योग्य नहीं है, उस अन्तर्यामी परमात्मा को संन्यासी ध्यानयोग से देखा करे।[3] वह संन्यासी आहवनीयादि अग्नियों से रहित अपना घर भी न बांधे और अन्न वस्त्रादि के लिए ग्राम का आश्रय ले, बुरे मनुष्यों की उपेक्षा करता हुआ स्थिरबुद्धि से मननशील होकर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे।[4] इस प्रकार जो संन्यासी राग द्वेष आदि दोषों का क्षय कर निर्वैरता से सब प्राणियों का कल्याण करता है वही मोक्ष प्राप्त करता है।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।

अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते।।[५]

संन्यासी के लिए समाहित चित्त से दस प्रकार के धर्मों का पालन व वेदान्त श्रवण ही संन्यास धर्म है।

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः।

वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संवसेदनृणो द्विजः।।[६]

---

1. यजु० अ० 40/मं० 6
2. ऋ०मं०10/सू०72/मं०7
3. मनुस्मृति० 6/73 : उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
   ध्यानयोगेन सैपदयद्गतिमस्यान्तरात्मनः।।
4. वही 6/43
5. वही 6/60
6. वही 6/94

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कर्मयोग से संन्यासाश्रम का आश्रय लेने वाला द्विज-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है।[1]

आसक्ति रहित चित्त से रहित पुरुष संन्यास द्वारा संसार व शरीर के सभी पापों का क्षय कर परम गति को प्राप्त करता है।

एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमो स्पृहः।
संन्यासेनाय हत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम्।।[2]

महाकवि कालिदास ने संन्यास को धारण किए हुए ऋषियों की तपोभूमि का रमणीय दृश्य प्रस्तुत करते हुए संन्यासाश्रम की उत्कृष्टता का सुन्दर रूप प्रदर्शित किया है। राजा दुष्यन्त इन्द्र के आह्वान करने पर दैत्यों का अतिक्रमण करके लौटते हुए आश्रम में रुकते हैं तथा आश्रमवासियों के तप से आलोकित तपोवन देखकर कहते हैं कि दूसरे मुनिजन जिसे तप द्वारा पाना चाहते हैं उसे प्राप्त कर भी ये संन्यासी तपस्या कर रहे हैं-

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षवने,
तोये काञ्चनपदमरेण कपिशे धर्माभिषेक क्रिया।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विसुधस्त्रीसंनिधो संयमो-
यत्काञ्चन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तास्मिस्तपस्यन्त्यनी।।[3]

महाकवि भास ने संन्यासाश्रम में द्योतक वल्कल वस्त्रों का महत्व प्रदर्शित किया है क्योंकि संन्यासाश्रम की अवस्था का अर्थ है सम्पूर्ण इन्द्रियों का निग्रह व सांसारिक व शारीरिक मोहों का त्याग। अतः ये वल्कल वस्त्र संन्यासी के लिए कवच का कार्य करते हैं। यही बात भास ने प्रतिमा नाटक में पिता की आज्ञा से वनगमन के समय लक्ष्मण द्वारा वल्कल मांगने पर श्रीराम के मुख से कहलवाई है, राम कहते हैं-

सौमित्रे! श्रूयताम्। वल्कलानि नाम-
तपः संग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः।।[4]

---

1. मनुस्मृति॰ 6/85 : अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः।
स विधूमेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति।।
2. वही 6/96
3. अभि॰शा॰ 7/12
4. प्रति॰ना॰ 1/28

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु ने भी वानप्रस्थी व संन्यासी दोनों के लिए ही वल्कल वस्त्र धारण करने का निर्देश किया है।[1] भास ने दूसरे नाटक स्वप्नवासवदत्ता में भी वल्कल वस्त्रों को धारण करने का अर्थ भोगों से विरक्ति ही प्रदर्शित किया है। मगधेश्वर की कुमारी पद्मावती प्रत्येक तपस्वी को दान देने के निमित्त निमन्त्रण देती है। उसी समय तपस्वी वेशधारी राजा उदयन के मंत्री योगन्धरायण वासवदत्ता के धरोहर के रूप में पद्मावती के पास रखना चाहते हैं लेकिन उनके तपस्वी वेश के कारण कुमारी पद्मावती उनसे दान में वस्तु मांगने का आग्रह करती है। इस पर वे तपस्वी वेश अर्थात् संन्यासी के लिए धन, अर्थ व काम से विरक्ति को प्रदर्शित करते हैं, यथा–

कायं नेवार्थेनापि भोगेनं वस्त्रेर्नाहं
कावायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा
शक्ता चरित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः॥[2]

महावीरचरित में विश्वामित्र राम व लक्ष्मण को धनुष-यज्ञ के उपरांत विवाह के पश्चात् छोड़कर वनों को लौटना चाहते हैं परन्तु राम में अत्यधिक स्नेह के कारण वे दुखी होते हुए कहते हैं कि मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहता हूं लेकिन संन्यासाश्रम की भी कुछ सीमायें होती हैं जिनका उल्लंघन करना व पुनः गृहस्थी होना संकट उत्पन्न कर देता है।

किं त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायेर्गृहस्थता॥[3]

आगे राम के वन जाने का वृत्तान्त जानकर राजा दशरथ दुखी होकर संन्यासाश्रम को लक्षित कर कहते हैं कि इक्ष्वाकुवंशी जो कुलव्रत ब्रह्मचर्य, गृहस्थ व वानप्रस्थ आश्रम को व्यतीत करने के बाद निभाते थे वहीं वन गमनरूपी कार्य राम व लक्ष्मण को बाल्यावस्था में ही करना पड़ रहा है–

पुत्रसंक्रान्त लक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।
त्वया तत्क्षीरकण्ठेन प्राप्तमारण्यकव्रतम्॥[4]

---

1. मनुस्मृति॰ 6/6
2. स्वप्नवा॰ 1/9
3. महा॰चरि॰ 4/33
4. वही 4/51

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालतीमाधव में मकरन्द संन्यासी कामन्दकी से कहते हैं कि तुम संन्यासाश्रम के विरोधी कार्य को जो कि गृहस्थाश्रम में किए जाते हैं, मालती एवं माधव का विवाह कराने में प्रयत्नशील हो। यही भाव भवभूति ने महावीरचरित में विश्वामित्र के मुख से वर्णित किए हैं कि संन्यासियों का पुनः गृहस्थी होना संकट उत्पन्न करने वाला होता है। इसलिए यहां मकरन्द कहते हैं–

दया वा स्नेहो वा भगवति निजे स्मिन्शिभुजने
भवत्याः संसाराद्विरतमपि चित्तदववति।

ततश्च प्रव्रज्यासमयसुलभाचार· विमुखः
प्रसक्तस्ते यत्नः प्रभवति पुनर्देवमपरम्॥[1]

महाकवि कालिदास ने संन्यासाश्रम में रहने वाले तपस्वियों के तेज की तुलना सूर्यकान्तमणियों से की है। राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम के समीप से सैनिकों को हटाने की आज्ञा देते हुए सेनापति से तपस्वियों के शांत तेज की दाहक शक्ति अर्थात् शाप का वर्णन करते हुए कहते हैं–

शमप्रधानेषु तपोवनेषु
गूढं हि दाहात्मक मस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-
स्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति॥[2]

♣♣♣

1. माल॰माध॰ 4/6
2. अभि॰शाकु॰ 2/7

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

यज्ञ-परम्परा

1. नित्य यज्ञ-(क) ब्रह्मयज्ञ, (ख) देवयज्ञ, (ग) भूतयज्ञ, (घ) अतिथियज्ञ, (ड़) पितृयज्ञ

2. नैमित्तिक यज्ञ-(क) संस्कारात्मक यज्ञ (ख) अश्वमेधादि यज्ञ

यज्ञ-परम्परा

वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत यज्ञों का विशेष महत्व है। संसार की रक्षा के निमित्त यज्ञ में प्रज्ज्वलित अग्नि विशेष सहयोगी है क्योंकि "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।"[1]

मनु ने पुरुषार्थ-चतुष्ट्य के अन्तर्गत मोक्ष प्राप्त करने के लिए यज्ञों व संस्कारों को आवश्यक बताया है। उनके अनुसार-

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।[2]

मनु जी ने केवल माता के गर्भ से जन्म लेना ही मानव जन्म नहीं माना है। उनके अनुसार मनुष्य संस्कारों व यज्ञों के द्वारा ही पुनः पुनः जीवनधारण करता है। यथा-

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्।।[3]

वेदों के अन्तर्गत पंच नित्य यज्ञ एवं नैमित्तिक यज्ञ आते हैं, जिनका पालन करना प्रत्येक मानव का धर्म व कर्तव्य है। यज्ञों के द्वारा ही मनुष्य सभी पापों व कल्मषों से छूटकर धर्म के मार्ग पर चलता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है। वेद में पञ्च महायज्ञों के विषय में वर्णन मिलता है-

"मोघमन्न विंदते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वधइत्सतस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।।"[1]

---

1. मनुस्मृति॰ 3/76
2. वही 2/28
3. मनुस्मृति॰ 2/169

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. नित्य -यज्ञ

मानव जन्म वरदान स्वरूप है। इसको प्राप्त करने के लिए मनुष्य अपने गुरुजनों व देवताओं का ऋणी होता है। अत: नित्य पंचमहायज्ञों के द्वारा ही मनुष्य इन ऋणों से उऋण हो सकता है। वैदिक युग में पंचमहायज्ञ करना गृहस्थ का प्रधान एवं आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था।[2]

मनु के अनुसार मनुष्य को क्रमश: अवस्थाओं के चारों चरणों, अर्थात् चारों आश्रमों का पालन करते हुए नित्य पंच महायज्ञों का पालन करना चाहिए। उनके अनुसार ब्रह्मचारी को–

नित्यं स्नात्वा शुचि कुर्याद् देवर्षि पितृतर्पणम्।

देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च॥[३]

इसी प्रकार मनु ने गृहस्थ को निर्देश दिया–

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।

पंच यज्ञविधानं च पंक्ति चान्वाहिकीं गृही॥[४]

गृहस्थ आश्रम में रहते हुए दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ऊखल, मूसल और जल का कलश–इन वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। मनु ने ये सभी हिंसा स्थान होने के कारण पापप्रद क़हे हैं। अत: महर्षि ने इन पापों से बचने के लिए नित्य पंचमहायज्ञ करने का उपदेश किया है। नित्ययज्ञों के अन्तर्गत पंचयज्ञ, क्रमश:–ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ व पितृयज्ञ हैं। ये क्रमश: अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्महुत और प्राशित कहे जाते हैं। इन यज्ञों को करने का विधान इस प्रकार कहा गया है, जैसे–

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।

होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥[५]

---

1. ऋग्वेद 10.171.6
2. आप॰धर्म सू॰ 1/4/12/13, बोधा धर्मसू॰ 2/6/1-8, गोभि॰स्मृ॰ 2/26
3. मनुस्मृति॰ 2/176
4. मनुस्मृति॰ 3/67

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि, पितर, देवगण, भूतगण और अतिथिगण ये सभी गृहस्थ से कुछ पाने के इच्छुक होते हैं। अत: इनकी सन्तुष्टि हेतु गृहस्थ को अपेक्षित है–

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षान्हामेर्देवा यथाविधि।
पितृन्श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा।।[१]

इस प्रकार पंचमहायज्ञ रूपी कर्तव्यों का पालन ही जीवन को सार्थकता प्रदान करता है।

(क) ब्रह्मयज्ञ

मनु के अनुसार यदि गृहस्थ दरिद्र है तथा अतिथि को भोजन देने योग्य नहीं है तो भी उसे ब्रह्मयज्ञ अवश्य करना चाहिए–

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि।
देवकर्मणि युक्तो हि विभर्तीदं चराचरम्।।[२]

ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत अध्ययन व अध्यापन को विशेष महत्व दिया गया है।[3] वर्णव्यवस्था के अनुसार अध्ययन और अध्यापन का कार्य ब्राह्मण के लिए है, अत: वेद विज्ञ विप्र के लिए सावित्री जाप का निर्देश है।[4]

नित्य यज्ञ में ब्रह्मयज्ञ को जपयज्ञ तथा अन्य यज्ञों को विधियज्ञ तथा पाकयज्ञ कहा है। इन सबसे जपयज्ञ श्रेष्ठ है, यथा–

ये पापकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।[६]

मनु ने जपयज्ञ में भी मानस जप को सहस्रगुना बताया है–

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।।[७]

---

5. वही 3/70
1. मनुस्मृति॰ 2/81
2. मनुस्मृति॰ 3/75
3. मनुस्मृति॰ 4/147 : वेदमेवाभ्यसे नित्यं यथाकालमतिन्द्रियः।
   तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते।।
4. मनुस्मृति॰ 2/78 : एतदक्षरमेता च जपन्त्यहृतिपूर्विकाम्।
   संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते।।
6. मनुस्मृति॰ 2/86
7. मनुस्मृति॰ 2/85

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जप के पश्चात् ब्राह्मण के लिए अन्य किसी यज्ञ का महत्व नहीं है–

जप्येनव तु संसिध्येद्ब्रह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।।[1]

भवभूति ने महावीरचरित में ब्रह्मयज्ञ के निमित्त जप करने का उपदेश वशिष्ठ द्वारा शतानन्द को देते हुए प्रदर्शित किया है–

यत्कल्याणं किमपि मनसा तद्वयं वर्तयाम-
स्त्वं जाबालिप्रभृतिसहितः शान्तिमध्यग्नि न कुर्याः।
जेतुं जैत्रानथ खलु जपन्सूक्तसामानुवाका-
नस्मच्छिष्यैः सह स भगवान् वामदेवो गृणातु।।[2]

महाकवि कालिदास ने स्थान-स्थान पर ब्रह्मयज्ञ का वर्णन किया है। राजा दुष्यन्त शिकार खेलते-खेलते आश्रम के समीप पहुंचते हैं तो वहां दो तपस्वी कुमार राजा को ऋषि कण्व के ब्रह्मयज्ञ हेतु सोमतीर्थ जाने के विषय में बताते हैं।[3] अन्य तपस्वी कुमार यज्ञ में राक्षसों द्वारा विघ्न डालने पर राजा को बुलाने जाते हैं।[4]

"तत्र भवतः कण्वस्य महर्षे
रसांनिध्याद्रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति।"[5]

इसी नाटक में नान्दी पाठ के अन्तर्गत ब्रह्मयज्ञ का वर्णन मिलता है।

"सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते,
वेदो हुताशनवर्ती परितः प्रयस्ताः।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः
सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम्।।"[6]

[stamp] ...विश्वविद्यालय

1. मनुस्मृति॰ 2/87
2. महा॰चरि॰ 3/23
3. अभि॰शा॰1/पृ॰18
4. वही 2/पृ॰78
5. अभि॰शा॰ 2/पृ॰78
6. वही 3/24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि विश्वामित्र ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत राम को जृम्भकास्त्र प्रदांन करते समय उनका महत्व व तेज जोकि देवों से भी अधिक है, बताते हुए ब्रह्मस्वरूप दिव्यास्त्रों की वन्दना करने की आज्ञा देते हैं तथा दिव्यास्त्रों का तेज वर्णित करते हैं–

ब्रह्मेन्द्रद्रविणेशरुदणप्राचीनबर्हिर्मरु-
त्कालाग्निव्यतिरेकिणां भगवतामाम्नायमन्त्रात्मनाम्।
एतेषां तपसाभिवाप्रतिषहतोजोभिरुत्कर्षिणा-
मकैकस्य जगन्त्रयप्रमथनबाणावधिर्योग्यता।।१

(ख) देवयज्ञ

वेदों में यज्ञों का विशेष महत्व है। नित्य देवताओं के निमित्त होम करना ही देवयज्ञ के अन्तर्गत आता है क्योंकि देवयज्ञ द्वारा ही मनुष्य देवऋण से उऋण होकर समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। यज्ञ की हवि से देवताओं के मुख रूपी अग्निदेव तृप्त होते हैं। गृहस्थी के लिए देवता, ऋषि, पितर, तथा गृहदेवताओं का अन्न से पूजन करने के पश्चात् ही स्वयं अन्न खाने का विधान है।[2] मनु ने तो बिना यज्ञ किए अन्न खाना पाप के समान बताया है, उनके अनुसार–

अधं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं हुयेतत्सतामन्नं विधीयते।।३

ऋग्वेद में सायं व प्रातः होम का विधान कहा है। प्रातःकाल में किया गया होम सायंकाल तक व सायंकाल का होत हुतद्रव्य, प्रातःकाल तक वायु शुद्धि द्वारा सुखकारी होता है।[4]

महाकवि भास ने पंचरात्रम् में राजा दुर्योधन के द्वारा देवयज्ञ के आयोजन का वर्णन किया है। जिसमें विभिन्न राजाओं व ब्राह्मणों ने भाग लिया है।

---

1. महा०चरि० 1/46
2. मनुस्मृति० 3/117
3. मनुस्मृति० 3/118
4. ऋग्वेद 19-7:3.4
   सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्मदाता।
   प्रातः प्रातर्गृह पतिर्नो अग्निः सायं सायंसौमनसस्यदाता।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा दुर्योधन के यज्ञ-वैभव को देखकर एक ब्राह्मण अन्य ब्राह्मण से यज्ञ के सात्विक प्रभाव का वर्णन करता है। यज्ञ द्वारा सारे संसार के यज्ञ दीक्षित होने का वर्णन किया गया है। होमधूम की सुगन्ध फूलों की सुगन्ध से भी अधिक व्यक्त की गयी है–

द्विजोच्छिष्टेरन्नैः प्रकुसुमितकाशा इव दिशो,
हविर्धूमैः सर्वे हुतकुसुमगन्धास्तरुगणाः।
मृगैस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभृतसिंहाश्च गिरयो,
नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपिसमं दीक्षितमिव।।[१]

आगे ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ की महत्ता प्रदर्शित की गई है कि किस प्रकार यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं व यज्ञभूमि स्वर्ग के सदृश हो जाती है। यज्ञ की हवि से किस प्रकार से देवता तृप्त होते हैं–

तृप्तोऽग्निर्हविषामरोत्तममुखं तृप्ता द्विजेन्द्रा धनै-
स्तृप्ताः पक्षिगणाश्च गोगणसुतास्ते ते नराः सर्वशः।
दृष्टं सम्प्रति सर्वतो जगदिदं गजैन्नृपै सद्‌गुणै-
रेवं लोकमुदारूरोह सकलं देवालयं तदगुणैः।।[२]

यज्ञ में प्राप्त धन से विप्रगण सन्तुष्ट होते हैं। क्योंकि ब्राह्मण इस लोक में देवताओं को सन्तुष्ट करने का साधन हैं। यज्ञ की अग्नि में देवता किस प्रकार तृप्त होते है इसी बात को भास ने पंचरात्रम में व्यक्त किया है, तथा यज्ञाग्नि को लौकिकाग्नि ने अधिक शक्तिशाली प्रदर्शित किया है तथा इस प्राग्वंश को मस्त हाथी की संज्ञा दी है। यज्ञ में प्रज्ज्वलित यज्ञ स्तम्भों को पृथ्वी के स्वर्णमय हाथों के सदृश प्रदर्शित किया गया है।[3]

महाकवि भास ने चारुदत्त नाटक में चारुदत्त की अत्यन्त दरिद्रावस्था का वर्णन किया है परन्तु वह एक सदगृहस्थ के गुणों से युक्त है तथा देवयज्ञ के निमित्त ब्राह्मण को भोजन के लिए निमन्त्रित करता है।

धृतगुडदधिसमृद्धं धूपितसूपोपदंशसम्मिन्नम्।
सत्कारदत्तमिष्टं भुज्यतां भक्तमार्येण।।[४]

---

1. पंच॰ 1/3
2. पंच॰ 1/4
3. वही 1/6
4. चारु 1/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु ने देवप्रीति के लिए ब्राह्मण को भोजन कराने का निर्देश किया है।[5]

श्री भास के नाटक बालचरित में भी देवयज्ञ के अन्तर्गत इन्द्रयज्ञ का वर्णन किया गया है। वसुदेव कृष्ण के जन्म होने पर उन्हें कंस की कारागार से मथुरा पहुंचाने जाते हैं वहां उन्हें अपनी मृत पुत्री को लिए हुए नन्दगोप मिलते हैं तथा इन्द्रमहोत्सव के विषय में बताते हैं–

"श्वोऽस्माकं घोषस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भविष्यति।"[१]

मालविका अग्निमित्र नाटक में कवि कालिदास ने परिव्राजिका के वार्तालाप के माध्यम से देवयज्ञ के अन्तर्गत देवोत्सव का वर्णन किया है।[2]

महाकवि भवभूति ने महावीरचरित में राजा जनक के देवयज्ञ का संकेत सूत्रधार द्वारा नाटक के प्रारम्भ में वर्णित किया है–

"निमन्त्रितस्तेन विदेहनाथः स प्राहिणोदभ्रतरमात्तदीक्षः।
कुशध्वजो नाम स एष राजा सीतोर्मिलाभ्यांसहितोऽभ्युपेति॥"[३]

(ग) भूतयज्ञ

मनु ने होम के पश्चात् बलि का विधान कहा है। जीवों के लिए अन्न की बलि देना ही भूतयज्ञ है। मनु ने देवताओं व उनके साथ-साथ उनके अनुयायियों तथा मूसल व उलूखल में बलि देने का विधान कहा है। बल-निर्मित वस्तु के शीर्ष में लक्ष्मी, चरण में भद्रकाली और मध्य में ब्रह्म और वास्तोष्पत्ति को बलि देने का निर्देश किया गया है।[4]

मनु ने रात्रिचर व दिनचर जीवों को व कीट आदि को नित्यबलि देना ही भूतयज्ञ के अन्तर्गत आवश्यक बताया है। उनके अनुसार–

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत्।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च॥[५]

---

5. मनुस्मृति॰ 3/125
1. बा॰चरि॰ 1/पृ॰ 18
2. मालविका.5/104 गद्यभाग : "परिव्राजिका–श्रूयताम्। इयं पितरि जीवति केनापि देवयात्रा-गतेन सिद्धादेशेन साधुना मत्समक्षमादिष्टा।"
3. महा॰चरि॰ 1/9
4. मनुस्मृति॰ 3/87,88,89
5. वही 3/90

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृमि, कीट आदि को पृथ्वी पर रखकर बलि देने का विधान है।

शुना च पतितानां कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये।
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्व दक्षिणतो हरेत्॥[1]

कवि भास ने चारुदत्त नाटक में नित्य-यज्ञों का सम्यक् निर्वाह किया है। चारुदत्त यद्यपि दानपुण्यादि द्वारा दरिद्रावस्था को प्राप्त हो गये लेकिन वे गृहस्थ के लिए निर्दिष्ट पंचमहायज्ञों को नियमपूर्वक करते हैं। इसी के अन्तर्गत वे मित्र मैत्रेय को भूतयज्ञ के निमित्त चौराहे पर मातृशक्तियों को बलि चढ़ाने की आज्ञा देते हैं–

"मैत्रेय! गच्छ चतुष्पथे बलिमुपहर मातृभ्यः॥"[2]

मनु ने भी कहा है कि जिस प्रकार वायु के आश्रय से सब जीव जीवन धारण करते हैं उसी प्रकार गृहस्थ के आश्रय से सब जीव वर्तते हैं।[3]

(घ) अतिथि-यज्ञ

वेद में अतिथि सेवा का वर्णन इस प्रकार आता है–

"इष्टं च वा एष पूर्व च
गृहाणामश्नाति यः पूर्वो आतिथेरश्नापि
अशितावत्यतिथोवरनीयाद्यरास्य
सात्मंस्वायं यज्ञस्याविच्छेदाय तदव्रतम्॥"[4]

वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत अतिथि भगवान का रूप होता है। अतिथि देवो भव। अतः उसका सत्कार एक यज्ञ के समान है जिसे अतिथि यज्ञ कहते हैं। मनु ने एक रात्रि ठहरने वाले व नित्य न रहने वाले को अतिथि कहा है।[5] इसलिए स्वयं समागत अतिथि को यथाशक्ति भोजन से सत्कृत कर आसन व जल द्वारा उसका सम्मान करें चाहे स्वयं अवशिष्ट पड़े अन्न के

1. मनुस्मृति॰ 3/92
2. चारु॰ 1/पृ॰ 28
3. मनुस्मृति॰ 3/77 : यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजंतवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥
4. अथर्व॰ 9.61,62.8
5. वही 3/102 : एकरात्रं तु निवसन्नितिथिब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानों को बीन कर उन पर जीवन निर्वाह करें लेकिन अतिथि का सत्कार अवश्य करें।[1] अतिथि सत्कार से देवता प्रसन्न होते हैं तथा अन्य यज्ञों को नित्य करता हुआ व्यक्ति भी यदि अतिथि यज्ञ नहीं करता तो उसके पूर्वनिर्दिष्ट पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं।

शिलानप्युन्छता नित्यं पञ्चाग्नोनपि जुहवतः।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणो नर्चितो वसन्॥[2]

कविकुल गुरु कालिदास ने अतिथि सत्कार को एक तप के रूप में अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रदर्शित किया है। ऋषि कण्व आश्रम से बाहर जाते हुए शकुन्तला को आतिथ्य सत्कार के लिए नियुक्त करते हैं। कण्व की अनुपस्थिति में राजा दुष्यन्त आश्रम में उपस्थित होते हैं। राजा दुष्यन्त के अतिथि-सत्कार को एक तप रूप बताते हुए सखियां शकुन्तला से कहती हैं–

"अनसूया–इदानीमतिथिविशेष लाभेन। हला शकुन्तले गच्छोटजम्। फलमिश्रमर्धमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति॥"[3]

मनुस्मृति में भी अतिथि के पाद-प्रक्षालन व पूर्ण-सत्कार करना वर्णित है।[4]

महाकवि भास ने भी पाद प्रक्षालन द्वारा अतिथि-सत्कार प्रतिमा नाटक में वर्णित किया है। इसमें रावण संन्यासी का वेश धारणकर राम के समीप जाते हैं। राम उनका आतिथ्य करते हुए सीता को उनके पैर धोने की आज्ञा देते हैं लेकिन रहस्य खुलने के भय से रावण के रोकने पर राम स्वयं उनके पैर धोना चाहते हैं परन्तु रावण मना करते हुए कहते हैं–

"वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः॥"[5]

भवभूति ने उत्तररामचरित में अतिथि-यज्ञ का वर्णन किया है। राम द्वारा वन में शूद्र शम्बूक का वध हेतु जाने पर महर्षि अगस्त्य राम को आश्रम में आकर आतिथ्य स्वीकार करने का सन्देशा भेजते हैं।

---

1. मनुस्मृति॰ 3/99 : संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
   अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥
2. मनुस्मृति॰ 3/100
3. अभि॰शा॰ 1/पृ॰ 34
4. मनुस्मृति॰ 3/99
5. प्रति॰ना॰ 5/पृ॰ 159

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भगवानगस्त्यो मत्तः श्रुतसन्निधानस्त्वामाह–

परिकल्पितावरणमङ्गला प्रतीक्षते वत्सला लोपामुद्रा, सर्वे च महर्षयः। तदेहि। सम्भावयास्मान्।"[1]

इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त को आश्रम से बाहर देखकर तपस्वी उन्हें आश्रम में आकर आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह करते हैं।

"न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः"[२]

भवभूति ने महावीर चरित नाटक में अतिथि-सत्कार का बहुत सुन्दर रूप हमारे समक्ष रखा है। उन्होंने क्रोधी व शत्रु रूप वध में तत्पर परशुराम को भी एक ओर अतिथि-सत्कार द्वारा जीतने का प्रयास किया है तथा दूसरी ओर शत्रु भी यदि घर पर पधारे तो अतिथि सत्कार के योग्य प्रदर्शित किया है। यहां भवभूति ने मानव मन के दो पहलुओं का वर्णन किया है तथा मनोभावों से कर्तव्य को श्रेष्ठ प्रदर्शित किया है। परशुराम क्रोधपूर्वक राम को युद्ध के लिए ललकार रहे हैं फिर भी गुरु शतानन्द राम को रोककर परशुराम के अतिथि-सत्कार के लिए आगे बढ़ते हैं।

"त्वं नः पूज्यतमोऽतिथिर्यदि ततः सज्जातिथेया वयम्।"[३]

विश्वामित्र व वशिष्ठ भी परशुराम को इस वृथा युद्ध को छोड़ने व अतिथि-सत्कार स्वीकार करने का आग्रह करते हुए कहते हैं कि आप क्षत्रिय होकर भी क्षत्रिय के घर पधारे हैं अतः हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए–

संज्ञप्यते वत्सतरी सर्पिष्यन्नं च पच्यते।
क्षत्रिय क्षत्रियगृहानागतोऽसि जुषस्वः नः॥[४]

उत्तररामचरित में भवभूति ने अतिथि के लिए मधुपर्क देने का वर्णन किया है। इसमें सोधातिकि व दण्डायन वेद वाक्य का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि अतिथि को मांस सहित मधुपर्क देना चाहिए (समांसो मधुपर्कः) इस वेद वाक्य को प्रमाण मानते हुए आतिथेय वेदज्ञ अतिथि के लिए बछिया

---

1. उ॰रा॰चरि॰ 2/पृ॰ 174
2. अभि॰शा॰ 1/पृ॰ 16
3. महा॰चरि॰ 2/50क
4. वही 3/2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा बूढ़ा बैल पकाते हैं। यह वार्तालाप दोनों तपस्वी वसिष्ठ द्वारा राजा जनक व अयोध्या भी महारानियों के अतिथि-सत्कार हेतु बछिया मारने पर करते हैं।[1] मनु ने भी अतिथि सत्कार में मधुपर्क का वर्णन किया है।[2] महाकविभास ने पंचरात्रम में राजा विराट द्वारा युद्ध में पकड़ कर लाये गये अभिमन्यु को अतिथि के रूप में व्यक्त किया है। राजा विराट द्वारा अभिमन्यु को अतिथि मानने पर भगवान बने युधिष्ठिर राजा विराट से कहते हैं कि यदि आप यादव व पाण्डवों से रक्षित अभिमन्यु का आदर कर रहे हैं अतः उसका अनादर करना होगा। इस पर राजा विराट उन्हें समझाते हैं कि सुभद्रा का पुत्र अपमान के योग्य नहीं है।

पुत्रो ह्येव युधिष्ठिरस्य तु वयस्तुल्यं हि नः सुनुना,
सम्बन्धो द्रुपदेन नः कुलगतो नप्ता हि तस्मात् भवेत्।
जामातृत्वमदूरतोऽपि च भवेत् कन्या पितृत्वं हि नः
पूजार्होऽप्यतिथिभवेत् स्वविभवैरिष्टा हि नः पाण्डवाः।।[३]

भास प्रणीत नाटक प्रतिज्ञा-योगन्धरायण में राजा महासेन अपनी कन्या वासवदत्ता के विवाह-स्वयंवर के लिए अनेक राजाओं को निमन्त्रण देते हैं तथा दूत जैवन्ति के आने का समाचार कंचुकी से जानकर अतिथि के पूर्ण सत्कार की आज्ञा देते हुए कहते हैं-

"समागतानां युक्तः पूजया प्रतिग्रहः"[४]

मनु के अनुसार अतिथि पूजन से धन, कीर्ति, आयु बढ़ती है मरने पर स्वर्ग मिलता है।[5] मनु के अनुसार यदि मनुष्य नित्य यज्ञों को करता हुआ भी अतिथि यज्ञ नहीं करता तो उसके पूर्व पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित किया गया है-शकुन्तला द्वारा राजा दुष्यन्त के मोह में ऋषि दुर्वासा का आतिथ्य अनजाने में न करने पर शापित होने

---

1. उ०रा०चरि० 4/पृ० 285
2. मनुस्मृति० 3/119
3. पंच० 1/39
4. प्रतिज्ञा० 2/पृ० 48
5. मनुस्मृति० 3/106

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्णन मिलता है। ऋषि दुर्वासा शाप देते हैं–हे अतिथि का तिरस्कार करने वाली,

विचिन्तयन्तो यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।

स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सकथं प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।[1]

(ङ) पितृ-यज्ञ

वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें जो देव, विद्वान ऋषि जो पढ़ने पढ़ाने वाले पितर माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानियों व परम् योगियों की सेवा करना आता है। पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है।[2] विद्यमान मातापितादि पितर जिस कर्म से प्रसन्न हों, वह तर्पण है। यह जीवित माता-पिता के लिए है मृतकों के लिए नहीं।[3]

पितरों के असन्तुष्ट करने हेतु श्राद्ध एवं तर्पण पितृयज्ञ के अन्तर्गत आता है। वैदिक ग्रन्थों में पितृयज्ञ का बहुत महत्व है। सृष्टि क्रम में पुत्र की उत्पत्ति तर्पण के लिए आवश्यक मानी गई है। बिना पुत्र के मोक्ष नहीं प्राप्त होता।[4] प्रत्येक व्यक्ति अपने पुत्रों से यही आशा करता है कि उन्हें मृत्यु उपरान्त कोई जलांजलि प्रदान करने वाला हो। पितरों की इसी आशा को मूर्तरूप देना पुत्रों का प्रधान कर्तव्य है। वह अपने पितरों के ऋण से उऋण होता है इसलिए पंचमहायज्ञों में पितृयज्ञ का विशेष महत्व है। मनु ने कहा है कि जो भोजन बनाकर देवता व पितरों को नहीं देता वह पाप का भोजन करता है क्योंकि सद्गृहस्थों को यज्ञावशिष्ट भोजन करना चाहिए।[5]

मनु ने पितरों की प्रीति के लिए नित्य प्रति श्राद्ध का विधान कहा है–

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।

---

1. अभि॰शा॰
2. सत्यार्थप्रकार 4 समुल्लास - श्रत्सत्यदधाति यया क्रियया सा श्रद्धाश्रद्धयायत् क्रियत्ते तत् श्राद्धम्।
3. वही. तृप्यन्ति तर्पयन्तियेन् तत्तर्पणम्।
4. मनुस्मृति॰ 9/138 : पुंनाम्नो नरकाधस्मात्रायते पितरं सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्राक्तः स्वयमेव स्वयंभुवाः।।
5. वही 3/118

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयोमूलफलेर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।।[१]

मनु ने पितृयज्ञ की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कहा है कि–

देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते।
दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम्।।[२]

श्री भास ने वन में राम को पितृयज्ञ के अनन्तर उचित सामग्री न होने के कारण चिन्तातुर प्रदर्शित किया है। सीता द्वारा चिन्ता का कारण पूछने पर वे कहते हैं–

"श्वस्तत्र भवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः। कल्पविशेषेण निर्वपनक्रियामिच्छन्ति पितरः। तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते।"[३]

अथवा–

गच्छन्ति सृष्टिं खलु येन केन न एव जानन्ति हि तां दशां मे।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुत्याम्।।[४]

उसको असमंजस में देखकर ब्राह्मण वेशधारी रावण उपस्थित होता है तथा स्वयं को वेद वेदांगों में पारंगत बताकर उन्हें उचित श्राद्ध सामग्री का ज्ञान कराता है तथा श्राद्ध का सही अर्थ श्रद्धा से दी गई सामग्री बताता है।[5] मनु ने भी वेदज्ञानी ब्राह्मण को ही श्राद्ध के लिए उपयुक्त बताया है। उनके अनुसार श्राद्ध के दस लाख वेद रहित ब्राह्मणों के साथ एक भी वेदज्ञानी ब्राह्मण हो तो वह अकेला ही सम्पूर्ण फल प्राप्त कराने वाला होता है।[6]

पितृयज्ञ के लिए पुत्रों का होना आवश्यक प्रदर्शित करते हुए उरुभङ्गम् में भास दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को क्षमा करने की बात कहलाते हैं, क्योंकि भीम द्वारा दुर्योधन पर गदा प्रहार देखकर बलराम अत्यन्त क्रोधित होकर भीम द्वारा युद्ध के नियमों का अतिक्रमण करने पर बदला लेने की बात कहते हैं। इस पर दुर्योधन बलराम को समझाते हुए कहते हैं कि कुरुवंश के पितरों को जलांजलि देने वाले पाण्डव जीवित रहने चाहिए।

---

1. मनुस्मृति॰ 3/82
2. वही 3/203
3. प्रति॰ना॰ 5/5
4. प्रति॰ना॰ 5/5
5. प्रति॰नाट॰ 5/पृ॰ 161 "सर्व श्रद्यादत्त श्राद्धम्"
6. मनुस्मृति॰ 3/131

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वत्पादयोर्निपतितं पतितस्य भूमा-
वेतच्छिरः प्रथममद्य विमुञ्च रोषम्।
जावन्तु ते कुरुकुलस्य निवापमेधा
वेरं च विग्रहकथा वयं च नृष्टाः॥[१]

महाकवि भास ने मानव के साथ-साथ प्रकृति को भी नित्ययज्ञों के अन्तर्गत पितृयज्ञ करते हुए प्रदर्शित किया है। यज्ञ के अनन्तर जले हुए वृक्षों के विषय में कहा गया है–

अनवतविटपो नदी पलाशाः पवनवशाच्चलितैकपर्णहस्तः।
दवदहनविपन्न जीवितानामुदकमिवेष करोति पादपानाम्॥[२]

श्री भास ने पुत्र द्वारा किये गये पितृयज्ञ को उरुभंग में प्रदर्शित किया है। भीम के गदाप्रहार से दुर्योधन युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होते समय अपने पिता को मृत्युजन्य शोक त्यागकर पाण्डवों के साथ तर्पण के समय जलांजलि प्रदान करने का उपदेश देते हैं।

स्पृष्ट्वा चैवं युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षोमापसव्यं भुजम्।
देयं पाण्डुसुतैस्त्वया मम समं नामावसाने जलम्॥[३]

२. नैमित्तिक-यज्ञ

(क) संस्कारात्मक-यज्ञ

वेदों में संस्कार का विशेष महत्व है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मानव अनेक संस्कारों में बंधा रहता है तथा प्रत्येक संस्कार का समय भी निश्चित होता है। मनु के अनुसार संस्कार यदि ठीक समय पर नहीं होते तो ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य तीनों निन्दित होते हैं व अपवित्र तथा अन्त्यज कहलाते हैं। यथा–

अत उर्ध्व प्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्य विगर्हिता॥[४]

---

1. उरु॰ 1/31
2. पंच॰ 1/19
3. वही 1/53
4. मनुस्मृति॰ 2/39

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्य का मत है कि संस्कार करने से बीज-गर्भ से उत्पन्न दोष मिट जाता है।[1] यही बात मनुस्मृति में वर्णित है। उनके अनुसार वैदिक पुण्यकर्मों द्वारा किए गये गर्भाधानादि से व जातकर्म मुण्डन व उपनयनादि संस्कारों से वीर्य एवं गर्भाशय के दोषों को दूर किया जाता है, यथा–

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैनिषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥
गार्भैर्हो मैर्जातकर्मचौऽमोन्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥[2]

मनु ने यज्ञोपवीत द्वारा मनुष्य का दूसरा जन्म होना प्रदर्शित किया है। उनके अनुसार विना यज्ञोपवीत द्वारा दूसरा जन्म प्राप्त किए मनुष्य शूद्र के समान है।[3]

संस्कार रूपी वैदिक कर्मों व मनुस्मृति के अनुसार ही कवि कालिदास ने अपने नाटकों में संस्कारों का वर्णन है। विक्रमोर्वशीय नाटक में राजा पुरूरवा से उत्पन्न उर्वशी के पुत्र को तापसी राजा के पास छोड़ने आती है। तथा कहती है कि कुलीन क्षत्रिय के जो जातकर्मादि संस्कार होते हैं वे सभी भगवान् च्यवन से सम्पन्न करा दिये हैं।[4]

इसी प्रकार भवभूति के उत्तररामचरित नाटक में मुण्डन व यज्ञोपवीत संस्कारों का वर्णन वनदेवता व आत्रेयी के माध्यम से मिलता है। तापसी आत्रेयी कहती है–

"तौ च भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मताः परिगृह्य पोशितो रक्षितौ च। निवृत्तचौलकर्मणोस्तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्त्रौ विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः तदनन्तरं भगवतेकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्येनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ।"[5]

1. याज्ञ०स्मृ० 1/13
2. मनुस्मृति० 2/26, 27
3. वही 2/172
4. विक्र० 5/पृ०208
5. उ०रा०चरि० 2/प० 122

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति के नाटकों में वैदिक-संस्कृति के अन्तर्गत संस्कारात्मक यज्ञों का सम्यक् निर्वाह हुआ है। मालती माधव नाटक में कामन्दकी अवलोकिता से पूछती है कि क्या मालतीमाधव का पाणिग्रहण संस्कार होगा?[1] तथा इन्हीं के वार्तालाप के माध्यम से कन्यादान रूपी संस्कार का वर्णन मिलता है।[2]

भवभूति के नाटक उत्तररामचरित में सीता व राम के वार्तालाप के माध्यम से मुण्डन संस्कार का वर्णन मिलता है। वे दोनों मनोरंजन हेतु चित्रवीथिका में अपने पूर्वसमय के चित्र देख रहे हैं। चित्रों को देखकर महारानी सीता कहती हैं कि ये आप–

"एते खलु तत्कालगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरौ विवाहदीक्षिता यूयम्।"[३]

महावीरचरित में विवाह-संस्कार के अन्तर्गत गोदान का वर्णन किया गया है। विश्वामित्र के यज्ञ समारोह में आये राजा कुशध्वज व विश्वामित्र द्वारा जनक की चारों कन्यायें रघुवंश में ब्याह दी जाती हैं तथा विश्वामित्र राजा दशरथ के पास सन्देश भेजते हैं जिससे कि यज्ञ समाप्त होने पर कुमारों का गोदान कर दिया जाये।

एताश्चतुर्भ्यो रघुनन्दनेभ्यो निमैगृहे राजसुताश्चतस्त्रः।
वसिष्ठवद्गोतमवच्च भूत्वा दत्ताः प्रतीष्टाश्च समं मयैव॥[४]
तदुपमन्त्र्य सर्वान्ब्रह्मर्षीन्महाराजदशरथनुयातो वैदेहनगरीमागच्छा।
राज्ञौ यज्ञपरिसमाप्तो विततगोदानमङ्गलाः कुमाराः परिणेयन्तीति॥

आगे राजा जनक के भवन में विवाह-संस्कार के अन्तर्गत कङ्कणमोचन संस्कार का वर्णन है। अन्तःपुर से कंचुकी कुमारों को बुलाने के लिए आती है–

देव्यः कङ्कणमोचनाय मिलिता राजन् वरः प्रेष्यताम्।[५]

महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक में संस्कारों का महत्त्व प्रदर्शित किया है। महारानी द्वारा मालविका को राजा को सौंपने पर परिव्राजिका कहती है–

---

1. माल॰माध॰ 1/पृ॰ 19 : मालतीमाधवयोरभिमतं पाणिग्रहणमङ्गलं स्यात्।
2. वही 1/पृ॰ 23
3. उ॰रा॰चरि॰ 1/पृ॰ 53
4. महा॰चरि॰ 1/58
5. महा॰चरि॰ 2/50

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्याकर समुत्पन्ना मणिजातिरसंस्कृता।
जातरूपेण कन्याणि। न हि संयोगमर्हति।।[१]

यहां कालिदास ने मनुस्मृति में वर्णित कथन कि, संस्कारों से पुनर्जन्म होता है, का भाव व्यक्त किया है।[2]

महावीर-चरित में भवभूति ने क्षत्रियों के प्राक्तन संस्कार का वर्णन किया है। विश्वामित्र परशुराम के ब्राह्मण व क्षत्रिय समाज पर आक्षेप करने के कारण क्रुद्ध होकर कहते हैं–

ब्रह्मक्षत्रसमाजमाक्षिपसि यद्वत्से च घोराशय-
स्तेनातिक्रमणेन दुख्यसि नः पाल्योऽपि संबन्धतः।।[३]
आतस्वां प्रति कोपनस्य तरलः शापोदकं दक्षिणः।
प्राकसंस्कारवशेन चापमितरः पाणिर्ममान्विष्यति।।

भवभूति ने महावीर चरित में संस्कारों का स्थान-स्थान पर निरूपण किया है। राम व लक्ष्मण सीता को खोजते हुए वन में घांयल जटायु को देखते हैं व उसकी मृत्यु होने पर उसका अग्निसंस्कार करते हैं। यह कथा राम व लक्ष्मण के वनों में भटकते हुए वार्तालाप के माध्यम से व्यक्त होता है।[4]

भास ने दूतघटोत्कच में अन्तिम संस्कार रूप जलांजलिदान का वर्णन किया है। दूत द्वारा युद्ध में अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार जानकर धृतराष्ट्र जलांजलि दान करते हैं–

अद्यैव दास्यामि जलं हतेभ्यः स्वेनापराधेन तवात्मजेभ्यः।
नत्वस्मि शक्तः सलिलप्रदाने कर्तुं नृपाणां शिविरापरोधम्।।[५]

इसी प्रकार अभिषंक-नाटक में अग्नि-संस्कार का वर्णन मिलता है। बाली की मृत्यु हो जाने पर राम उसके भाई सुग्रीव को उसका अन्तिम संस्कार करने की आज्ञा देते हैं–

---

1. मालका॰ 5/18
2. मनुस्मृति॰ 2/169
3. महा॰चरि॰ 3/43
4. वही 5/पृ॰ 211 : मनु तदैव तातमारुणि गध्रराजमग्निसात्कृत्य निर्गतयोः पंचवट्याक्षमादावयोः कोऽपि कालो वर्तते।।
5. दु॰घटो॰ 1/10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हन्त स्वर्ण गतो बाली। सुग्रीव! क्रियतामस्य संस्कार:।[१]

मालविकाग्निमित्र नाटक में कालिदास ने संस्कारों के महत्त्व को रत्नों के माध्यम से माता परिव्राजिका द्वारा इस प्रकार वर्णित किया है, यथा

अप्याकरसमुत्पन्ना मणिजातिरसंस्कृता।
जातरूपेण कल्याणि! न हि संयोगमर्हति।।[२]

(ख) अश्वमेधादि-यज्ञ

आदि ग्रन्थ वेदों व पुराणों में राजा के लिए अश्वमेध यज्ञ करना एक गर्व का विषय माना जाता था। प्रत्येक राजा अश्वमेध-यज्ञ के पश्चात् ही चक्रवर्ती सम्राट् घोषित किया जाता था। यह यज्ञ सभी यज्ञों में श्रेष्ठ माना जाता है। राजा का जीवन कर्तव्य-पालन व प्रजारक्षण में ही व्यतीत होता है अत: इस मार्ग में वह अनेक पापों का भागी बन जाता है। अश्वमेध-यज्ञ उसके समस्त पापों का नाश कर देता है। मनु ने भी अश्वमेध-यज्ञ को यज्ञ श्रेष्ठ व समस्त पाप नाशक की संज्ञा दी है। उनके अनुसार–

यथाश्वमेध: क्रतुराट् सर्वपापानोदनम्।
तथाऽघर्षणं सूक्त सर्वपापापनोदनम्।।[३]

अश्वमेध-यज्ञ राजा के पराक्रम को स्पष्ट करता है तथा साथ ही प्रजा में एक नवीन उत्साह बढ़ानें वाला होता है। इस यज्ञ द्वारा प्राप्त दान-दक्षिणा से प्रजा की अपने राजा में श्रद्धा व भक्ति बढ़ती है। महाकवि कालिदास ने अश्वमेध-यज्ञ के निमित्त दी जाने वाली दक्षिणा का वर्णन मालविकाग्निमित्र नाटक में किया है। राजा अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र को अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा का भार सौंपे जाने पर उनकी माता अठारह हजार स्वर्णमुद्रा सत्पात्रों को दान में दे रही है–

"यदा प्रभृति श्रुतं सेनापतिना यज्ञतुरगेरक्षणे नियुक्तो भर्तुदारको वसुमित्र इति तदा प्रभृति तस्यायुधो निमित्तमष्टादशसुवर्णप्रमाणां दक्षिणां देवी दक्षिणीयै: प्रतिग्राहयति।।"[४]

---

1. अभि०ना० 1/पृ० 20
2. मालवि० 5/18
3. मनुस्मृति० 11/260

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार भवभूति ने उत्तररामचरित में स्थान-स्थान पर अन्य यज्ञों के साथ अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया है।

बासन्ती व आत्रेयी के वार्तालाप के माध्यम से अश्वमेध यज्ञ का वर्णन मिलता है। आत्रेयी राजा राम द्वारा किए जा रहे अश्वमेध-यज्ञ की सूचना वासन्ती को देते हुए कहती है–

"तेन राज्ञा राजक्रतुश्वमेधः प्रक्रान्तः।"[१]

इसी नाटक में राम शम्बूक का वध करने हेतु वन में जाते हैं तो महर्षि अगस्त्य उन्हें आतिथ्य स्वीकार करने का सन्देशा भेजते हैं तथा अश्वमेध-यज्ञ करने का आशीर्वाद देते हैं।[2]

लव आश्रम में राम द्वारा छोड़े गये घोड़े को देखकर वेदों के अध्ययन के आधार पर अश्वमेध यज्ञ के अश्व की पहचान कर लेते हैं।[3]

कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक में राजा के द्वारा किये जाने वाले अन्य यज्ञ राजसूय यज्ञ का वर्णन किया है। जो राजा का परम प्रतापी होना व सब राजाओं पर एकछत्र शासन होना प्रदर्शित करता है। इस नाटक में राजसूय यज्ञ का वर्णन पुष्यमित्र के पत्र द्वारा मिलता है। अश्वमेध-यज्ञ का घोड़ा सकुशल वापिस लाने पर पुष्यमित्र सागर के समान सौ राजपुत्रों सहित वसुमित्र के राजसूय यज्ञ की घोषणा करते हैं।[4]

अन्य नैमित्तिक यज्ञों में अग्निष्टोम व अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन भी मिलता है। मनु के कथनानुसार–

अग्न्याधेयं पाकयज्ञाग्निष्टोमादिकान्मखान्।
यः करोति वृत्तो यस्य स तस्यात्विगिहो व्यत्।।[५]

4. मालवि० 5/5 गद्यभाग
1. उ०रा०चरि० 1/पृ० 138
2. वही 2/पृ० 174 अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगत्याश्वमेधसज्जो भव।
3. वही 4/26 : योऽयमश्वः-पतोकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकेकवीरस्य, दशकण्ठकुलद्विषः।।
4. मालविका० 5/118 गद्यभाग
5. मनुस्मृति० 2/143

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि भास ने कर्णभार नाटक में अग्निष्टोम यज्ञ का वर्णन इन्द्र द्वारा किया है। युद्ध भूमि में जाते हुए ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र के भिक्षा मांगने पर कर्ण कहते हैं–

"तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि।"[१]

नैमित्तिक यज्ञों के अन्तर्गत विधि विधान से अग्निहोत्र यज्ञ करने का मनु-स्मृति में निर्देश मिलता है।

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि।
दशमस्कन्दयन्पर्वं पौर्णमासं च योगतः।।[२]

महाकवि भास ने उरुभंगम् नाटक में कौरव-पाण्डवों के मध्य हो रहे युद्ध में सूत्रधार रण प्रांगण को प्राण देने के लिए अग्निहोत्र-यज्ञ के समान प्रदर्शित किया है–

वैरस्यापतनं बलस्य निकषं मानप्रतिष्ठागृहम्,
युद्धेष्वप्सरसां स्वयंवर सभां शौर्यप्रतिष्ठां नृणाम्।
राज्ञां पश्चिमकालवीरगमनं प्राणाग्नि होमक्रतुं,
संग्रामा रणसंज्ञामाश्रमपदं राज्ञां नमः संक्रमम्।।[३]

इस प्रकार भास कालिदास व भवभूति के नाटकों में विभिन्न नित्य व नैमित्तिक यज्ञों का वर्णन मिलता है।

♣♣♣

1. कर्णभा॰ 1/पृ॰ 21
2. मनुस्मृति॰ 6/9
3. उरु॰ 1/4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम-अध्याय

धार्मिक-कर्मकाण्ड

1. तप, 2. दान, 3. पुरश्चरण, 4. व्रत, 5. प्रायश्चित्त, 6. अन्य कर्मकाण्ड

वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषाश्चेव कर्मणाम्।
फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावाश्च शरीरिणाम्।।[१]

युगों के ह्रास से धर्म परिवर्तित होता है। इसी कारण से सतयुग के समान धर्म त्रेता में, त्रेता के समान द्वापर में और द्वापर के समान कलियुग में नहीं रहता।[2] अतः मनु के अनुसार वेदों को प्रामाणिक मानकर प्रत्येक प्राणी पुरुष अपने धर्म में अवस्थित रहें[3] तथा वेदों व स्मृतियों में वर्णित धार्मिक कर्मों को करते रहें। मनु ने धर्म के लक्षण इस प्रकार बताये हैं–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[४]

अतः श्रुति में वर्णित आचार ही परम धर्म है। इसलिए मुनियों ने श्रेष्ठ आचार को ही सब तपों का मूल कहा है।

सामाजिक नियन्त्रण में भी धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि सभी सुखों का मूल धर्म है।[5]

तप

धार्मिक-कर्मकाण्डों के अन्तर्गत तप का विशेष महत्व है। श्रुति व स्मृतियों के आधार पर आचार ही सब तपों का मूल कहा गया है। अतः जो मनुष्य श्रेष्ठ आचार करता है, वह सब तपस्या पूर्ण करता है।

---

1. मनुस्मृति॰ 1/84
2. वही 1/85
3. वही 2/8
4. वही 2/12
5. वही 6/64 : अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम्।
   धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयोगतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलामाचारं जगृहुः परम्।।[1]

मनु ने सभी वर्णों के तपों को उनके कर्मों के आधार पर विभक्त किया। उनके अनुसार–

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्।।[2]

ब्राह्मण के लिए वेदों का अध्ययन व वेदाभ्यास द्वारा ज्ञान प्राप्ति ही परम तप बताया गया है–

वेदमेव सदाभ्यस्योक्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।।[3]

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन करना ही तप है। माता-पिता सन्तानोत्पादन में जो कष्ट सहन करते हैं तथा आचार्य शिक्षा प्रदान कर श्रेष्ठ शिष्य बनाते हैं उनके ऋणों से मनुष्य सौ वर्षों तक भी निस्तार नहीं हो सकता अतः इन तीनों को प्रसन्न रखने से ही सब तप पूर्ण हो जाते हैं, यथा–

तयोनित्य प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते।।[4]

जिसका तप के द्वारा पाप नष्ट हो चुका हो उस धर्म प्रधान तपस्वी को उसके किये हुए धार्मिक कृत्य ही स्वर्ग में पहुंचाते हैं। इसी कथन को भवभूति ने उत्तररामचरित में शूद्र शम्बूक के तप के माध्यम से व्यक्त किया है उसके तप से भगवान के सिंहासन डोल गये। भगवान राम को आकाशवाणी द्वारा वध करने का आदेश हुआ तथा वह तप के प्रताप से शूद्र होते हुए भी भगवान राम के हाथों मरकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम। तं हत्वा जीवयद्विजम्।।[5]

1. मनुस्मृति० 1/110
2. वही 11/235
3. वही 2/166
4. मनुस्मृति० 2/228
5. उ०रा०च० 2/8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कालिदास ने ऋषि मारीच के तप में तन्मय होने का वर्णन किया है। उन्होंने तप की महत्ता प्रदर्शित करते हुए वर्णित किया है कि–ऋषि सांसारिक मोह–माया से विरक्त हुए दैहिक सन्तापों से दूर आश्रम में वृक्ष की ठूंठ के सदृश हो गये हैं। यह तपस्या की उस अवस्था का वर्णन किया गया है जिसमें मनुष्य की आत्मा साक्षात् ब्रह्मलीन होकर परमात्मा के दर्शन करती है। राजा दुष्यन्त को, इन्द्र द्वारा दैत्यों के नाश हेतु बुलाने पर आकाश मार्ग से जाते हुए मातलि, ऋषि मारीच के आश्रम के विषय में बताते हैं–

बाल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिररसा संदष्ट सर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलता प्रतानवलयेनात्यर्थ संपीडितः।
असंव्यापि शकुन्तनीडनिचितं विभ्रज्जटामण्डल,
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बस्थितः॥[१]

मनु इसी प्रकार तप का महत्व प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि इसी तप द्वारा वेदों व शास्त्रों की रचना हुई–

प्रजापतिरिवं शास्त्रं तपसवासृजत्प्रभुः।
तथैव वेदानषस्तपसा प्रतिपेदिरे॥[२]

भवभूति ने तप के चमत्कारी प्रभाव का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। राम व लक्ष्मण सीता की खोज करते हुए मतंग मुनि के आश्रम के समीप पहुंचते हैं तथा श्रमणा द्वारा यह बताये जाने पर कि इस आश्रम में स्वयं यज्ञाग्नि जलती रहती है। राम तपस्या के महत्व को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं–

"अचिन्तनीयार्थास्तपसां विशेषाः"[३]

इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने तपस्या से प्राप्त दाहक शक्ति का वर्णन किया है। राजा दुष्यन्त शिकार खेलते-खेलते महर्षि कण्व के आश्रम के समीप पहुंचने पर सैनिकों को तपोभूमि के समीप के वनों से घेरा हटा लेने का आदेश देते हुए सेनापति से तपस्वियों के शाप का वर्णन करते हुए कहते हैं–

1. अभि॰शाकु॰ 3/11
2. मनुस्मृति॰ 11/243
3. महा॰चरि॰ 5/पृ॰ 224

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजो भिभवाद्वमन्ति।।[1]

तप की शक्ति का वर्णन मनुस्मृति में इस प्रकार मिलता है–

यत्किंचिदेन कुर्वन्तिं मनोवाङ्मूर्तिर्भिर्जनाः।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसेव तपोधनाः।।[2]

महाकवि कालिदास ने न प्राप्त करने योग्य वस्तु भी तपस्या के प्रभाव से प्राप्य है–यह प्रदर्शित किया है। राजा दुष्यन्त इन्द्र के बुलाने पर दैत्यों का अतिक्रमण कर आकाश मार्ग से लौटते समय ऋषि मारीच के आश्रम में उतरते हैं तथा वहां तपस्या में मग्न व समाधिस्थ ऋषियों को देखकर कहते हैं–

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षवने,
तोये काञ्चनपदमरेण कपिशे धर्माभिषेक क्रिया।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विसुधस्त्रीसंनिधो संयमो-
यत्काञ्चन्ति तपोभिरन्यमुनयंस्तास्मिस्तपस्यन्त्यमी।।[3]

तपस्या से देवता इच्छित कामनाओं को पूर्ण करते हैं। यह कथन मनुस्मृति में भी मिलता है।[4]

अन्यत्र कालिदास ने तपस्वियों के तप को अक्षय फल वाला प्रदर्शित किया है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला की सुन्दरता से मोहित होकर अपने मित्र विदूषक से आश्रम में आने का उपाय पूछते हैं। अतः विदूषक आश्रम में जाकर एक राजा के अधिकार स्वरूप 'कर' रूप धान्य मांगने का प्रस्ताव रखते हैं। मित्र के इस प्रस्ताव का खण्डन करते हुए राजा कहते हैं कि तपस्वी अपनी तपस्या का जो फल हमें देते हैं, वह रत्नों के ढेर से भी अधिक है, यथा–

यदुतिष्ठतिं वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयितत्फलम्।

---

1. अभि॰शा॰ 2/7
2. मनुस्मृति॰ 11/241
3. अभि॰ शा॰ 7/12
4. मनुस्मृति॰ 11/242 : तपसेव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवोकसः।
   इज्याश्चप्रयिगृहणन्ति कामान्सवर्धयन्ति च।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपः षडभागमक्षय्यं वदत्यारण्यका हि नः।।[१]

यहां कालिदास ने मनु के इस कथन का–"राजाओं का ब्राह्मणों में प्रतिष्ठित तप रूपी धन अक्षय होता है" पुष्टि की है। मनु के अनुसार–

नृपाणामक्षयो ह्येष निधिब्राह्मीऽभिधीयते।[२]

उत्तररामचरित में तपस्या द्वारा शूद्र शम्बूक ने साक्षात् भगवान् के दर्शन प्राप्त किए। भगवान् श्रीराम से वह कहता है कि आप सैंकड़ों योजन पार कर मेरे वध के निमित्त यहां उपस्थित हुए। यह मेरे तप का ही प्रभाव है–

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथः शरण्वो,
मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।
क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां संप्रसादोऽन्यथा तु,
क्वायोध्यायाः पुनस्थगमो दण्डकायां वने वः?[३]

भगवान राम शूद्र शम्बूक को उसकी उग्र तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मलोक प्राप्ति का वरदान देते हैं–

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, यत्र पुण्याश्च सम्पदः।
वैराजा नाम ते लोकात्तेजसाः सन्तु ते शिवाः।।[४]

मनु के अनुसार तप से समर्थ होकर ही ब्रह्मा ने शास्त्र व ऋषियों ने वेदों की रचना की।[5] इसी कथन का वर्णन महावीरचरित नाटक में भवभूति ने विश्वामित्र द्वारा राम को जृम्भकास्त्र प्रदान करते समय व्यक्त किया है। विश्वामित्र कहते हैं कि इन दिव्यास्त्रों के दर्शन ब्रह्माजी ने तप के उपरान्त ही किये हैं–

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परः सहस्रं शरदस्तपांसि।
एतान्वदर्शन् गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसितपोमयानि।।[६]

इस प्रकार वेददर्शियों ने देवता व मनुष्य दोनों के लिए तप को ही सुख का मूल कहा है–

---

1. अभि॰ शा॰ 2/13
2. मनुस्मृति॰ 7/82
3. उ॰रा॰चरि॰ 2/13
4. वही 2/12
5. मनुस्मृति॰ 11/243 : प्रजापतिरिदं.... प्रतिपेदिरे।
6. महा॰चरि॰ 1/42

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपोमूलमिदं सर्वं देवमानुषकं सृजम्।
तपोमध्यं बुधेः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः॥[1]

दान

धार्मिक कार्मकाण्डों के अन्तर्गत दान का विशेष महत्व है। वेदों एवं ग्रन्थों में वर्णित आख्यानों के अनुसार भारतभूमि पर अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले अनेकों दानवीर हुए हैं। इस लोक में किया गया दान परलोक में फलदायी होता है। परलोक में मनुष्य के साथ कोई बन्धु-बान्धव गमन में सहयोगी नहीं होता केवल इस लोक में उसके द्वारा अर्जित पुण्य ही परलोकगामी होते हैं। मनु के अनुसार–

ना पुत्र ही सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिधर्मस्तिष्ठति केवलः॥[2]

इस संसार में मनुष्य का आगमन एवं प्रत्यागमन एकाकी ही होता है तथा अपने द्वारा ही अर्जित पुण्य व पापों का फल भी वह अकेले ही भोगता है यथा–

एकः प्रजायते जन्तुरेक प्रतीयते।
एको नुभङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥[3]

मनुष्य का पंचभूतों से निमित्त शरीर मृत होने के पश्चात् उन पंचमहाभूतों, आकाश, वायु, पृथिवी, अग्नि व जल में ही विलीन हो जाता है लेकिन इस लोक में दान पुण्यादि किया धर्म उसके पीछे-पीछे जाता है। यथा–

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठंलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥[4]

मनु दान की महिमा प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि इस संसार में रहते हुए मानव जिस अभिलाषा से युक्त होकर वस्तु दान करता है, जन्मजन्मान्तर में उसे प्राप्त करता है–

1. मनुस्मृति॰ 11/234
2. वही 4/239
3. मनुस्मृति॰ 4/240
4. वही 4/241

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन तु भावेन यतदानं प्रयच्छति।
तत्तत्तेनैव भावेनप्राप्नोति प्रतिपूजित:।।[१]

दान भी दो प्रकार का होता है—प्रथम तो वह जो आदरपूर्वक स्वयं दिया जाता है तथा दूसरे वह जो अश्रद्धा से दिया जाता है। मनु ने दानी द्वारा श्रद्धा से दिया गया दान पवित्र तथा आदरपूर्वक दान देने वालों को तथा लेने वालों को स्वर्ग प्राप्ति का अधिकारी बताया है—.

तान्प्रजापतिराहैत्य मा कृध्वं विषमं समम्।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयैतरत्।।[२]
योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च।
तावुभौ गच्छत: स्वर्गं नरकं तु विपर्यये।।[३]

श्रद्धा से दिये गये दान का वर्णन स्वप्नवासवदत्ता में मिलता है। पद्मावती तपस्वियों को दान के लिए निमन्त्रण देती है। यथा—

अभिप्रेतदानेन तपस्विजन उपनिमन्दयताम्।।[४]

श्रद्धापूर्वक वेदज्ञानी ब्राह्मणों को नित्य दिये जाने वाले दान का वर्णन मालविकाग्निमित्र में मिलता है। इस नाटक में मालिन मधुरिका द्वारा सारसक से मुद्रा की पेटी ले जाने का कारण पूछे जाने पर वह कहती है—

"मधुरिके! वेदपारगाणां ब्राह्मणानांनित्यदक्षिणादातव्या। तदार्थपुरोहितस्य हस्तं प्रापयिष्यामि।।"[५]

द्वितीय प्रकार का दान याचना करने पर दिया जाने वाला दान है जिसके बारे में मनु कहते हैं—

यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वत:।।[६]

मनु के इस कथन की अनुकरणीयता करते हुए भास जी ने कर्णभार नाटक में इन्द्र द्वारा कवच व कुण्डल मांगने के प्रसंग का वर्णन किया है।

---

1. मनुस्मृति॰ 4/234
2. मनुस्मृति॰ 4/225
3. वही 4/235
4. स्वप्नावा॰ 1/पृ॰ 22
5. मालविका॰ 5/पृ॰ 322
6. मनुस्मृति॰ 4/228

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध भूमि में जाते हुए कर्ण से इन्द्र के द्वारा कवच व कुण्डल मांगने पर कर्ण उन्हें सब कुछ समझते हुए भी अपने कवच व कुण्डल दान में दे देते हैं। क्योंकि, कर्ण एक बहुत बड़े दानवीर थे। कर्ण का सारथि शल्यराज उन्हें ऐसा करने पर रोकता है तब कर्ण दान में दी हुई वस्तु के विषय में कहते हैं–

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्,
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति,
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति।।[1]

भास के नाटक पंचरात्र में भी दान के लिए दिये हुए वचन से न लौटने का वर्णन किया गया है। दुर्योधन गुरु द्रोण को गुरुदक्षिणा स्वरूप पाण्डवों को पांच रातों में मिल जाने पर उनका राज्य वापिस देने का वचन देते हैं तथा शकुनि के कहने पर वे कहते हैं कि एक बार दान जल देने पर वापिस नहीं लिया जाता है–

गुरुकरतलमध्ये तोयमावर्जितं मे
श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाणं पृथिव्याम्।
तदिदमपनयो वा वंचना वा यथा वा
भवतु नृप! जलं तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम्।।[2]

दान का सम्बन्ध सम्पन्नता व धार्मिक-भावना दोनों से ही है। क्योंकि, धनाभाव में दानशक्ति भी समाप्त हो जाती है। भास ने यज्ञ के पश्चात् अग्निदेव के शान्त होने की तुलना धन के अभाव में क्षीण हुई दानशीलता से की है। ब्राह्मण यज्ञ की समाप्ति पर शान्त हुई अग्नि को देखकर कहता है–

एतदग्नेर्बलं नष्टमिन्धनानां परिक्षयात्।
दानशक्तिरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात्।।[3]

भास ने इसी भाव को चारुदत्त नाटक में दान के कारण दरिद्रावस्था को पहुंचे हुए चारुदत्त के माध्यम से प्रदर्शित किया है। इस नाटक में नायक

---

1. कर्णभा॰ 1/22
2. पंच॰ 1/47
3. वही 1/17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारुदत्त को दरिद्र प्रदर्शित किया है जो कभी ऐश्वर्यसम्पन्न था। उसकी यह अवस्था दान के कारण हुई है लेकिन उसे इसका जरा भी रंज नहीं है। वे दान को महत्व देकर कहते हैं—दान देना उत्तम कर्म है, यथा–

क्षीणा ममार्थाः प्रणयिक्रियासु, विमानितं नैव परं स्मरामि।
एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्यं, सत्त्वं सखे! न क्षयमभ्युपैति।।[१]

सब दानों का सम्बन्ध धन से है लेकिन इन दानों के अतिरिक्त जीवन दान को भी बहुत बड़ा दान माना गया है। भवभूति ने इसी अभय-दान का वर्णन महावीर चरित में किया है। यद्यपि परशुराम राम पर शिवधनुष खंडन होने के कारण क्रोधित हैं लेकिन राम के चरित्र से आकृष्ट होकर कहते हैं–

सम्भाव्यसप्तभुवनाभयदानपुण्य
सम्भारमस्य वपुरत्र हि विस्फुरन्ति।
लक्ष्मीश्च सात्त्विकगुणज्वलितं च तेजो
धर्मश्च मानविजयौ च पराक्रमश्च।।[२]

मनु ने भी राजा द्वारा अभयदान को श्रेष्ठ प्रदर्शित किया है।[3]

दान करना त्याग का ही एक दूसरा रूप है। किसी वस्तु के प्रति मोह को त्यागकर निःस्वार्थ भाव से उसका दान करना उस मनुष्य की उदारता का परिचायक है। भवभूति ने इसी प्रकार का उदाहरण परशुराम के चरित्र के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। श्रीराम क्रोधित परशुराम का क्रोध शान्त करने के लिए उन्हें उनके द्वारा किये गये पराक्रम व त्याग का स्मरण कराते हुए कहते हैं–

उत्पत्तिर्जमदग्नितः स भगवानदेवः पिनाकी गुरुः
शौर्यं यत्तु न तद्गिरां पथि ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभिः।
त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः
क्षत्रप्रब्रह्मतपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोकोत्तरम्।।[४]

---

1. चारु॰ 1/4
2. महा॰चरि॰ 2/40
3. मनुस्मृति॰ 8/303 : अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सतत नृपः।
   सत्रं हि वर्धते लस्य सदैवाभय दक्षिणम्।।
4. महा॰चरि॰ 2/36

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संसार में विद्या व ज्ञानादि का दान सर्वश्रेष्ठ दान है जो एक गुरु द्वारा अपने शिष्यों को प्रदान किया जाता है। महावीरचरित में विश्वामित्र जृम्भकास्त्र व सभी अस्त्र विद्यातत्त्व राम व लक्ष्मण को प्रदान करते हैं वे राजा कुशध्वज से कहते हैं–

यानि हि भगवतः कृशाश्वादगुरुचर्याव्रतेरधीतस्य सरहस्य-जृम्भकप्रयोगसंहारस्य दिव्यास्त्र मन्त्रपारायणस्य विघातत्त्वबीजानि, तानि मत्प्रसादादर्थतः शब्दात्मना च रामभद्रस्य संप्रतिप्रकाशन्ताम्–

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परः सहस्रं शरदस्तपांसि।
एतान्यदर्शन् गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि॥[१]

इसी नाटक में मातामह माल्यवान व रावण के दूत के विचार विमर्श द्वारा भी विश्वामित्र द्वारा राम को अस्त्रविद्या के प्रदर्शन का वर्णन मिलता है। यथा–

दिव्यामस्त्रोपनिषदमृषेर्यः कृशाश्वस्य शिष्या-
द्विश्वामित्राद्विजयजननीमप्रमेयः प्रपेदे॥[२]

मनु ने भी ब्रह्मविद्य का दान सब दानों से बढ़कर प्रदर्शित किया है।[3]

पुरश्चरण

प्रत्येक वर्ण के लिए कर्मों का निर्धारण करने वाले प्राचीन ग्रन्थ वेद, पुराण व स्मृतियां हैं। वेदों में वर्णित धार्मिक-कार्य ही मनुष्य के जीवन को नियन्त्रित व संयमित करते हैं। इन्हीं धार्मिक कर्मों के अन्तर्गत पुरश्चरण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अन्तर्गत इस प्रकार के यज्ञों को सम्मिलित किया जाता है जो निश्चित अवधि के लिए किसी तिथि या अवसर के उपलक्ष में आयोजित किये जाते हैं। जैसे चातुर्मासिक यज्ञ, पशुयज्ञ, व सोमरसयुक्त यज्ञ आदि। मनु के अनुसार–

सस्यान्ते नवसस्येष्टया तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः।
पशुना त्ववनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मुखः॥[४]

1. महा० चरि० 1/42
2. वही 2/2
3. मनुस्मृति० 4/233 : सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमदीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम्॥
4. मनुस्मृति० 4/26

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न तिथियों के अन्तर्गत अमावस व पूर्णिमा आदि पर किये जाने वाले यज्ञों का वर्णन है, यथा–

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यदन्ते द्युनिशोः सदा।
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि॥[1]

धार्मिक कार्य मनुष्य को अक्षय सुख की प्राप्ति कराने वाले होते हैं। इन कामों के द्वारा मनुष्य आत्मसन्तोष का अनुभव करता है, इसलिए मनु ने कहा है कि अधर्म से दुख व धर्म से सुख प्राप्त होता है–

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम्।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम्॥[2]

मनु ने प्रत्येक वर्ण के लिए पृथक्-पृथक् यज्ञ निहित किये। वे वानप्रस्थी के लिए पुरश्चरण का निर्देश करते हैं।[3] संन्यासाश्रम से पूर्व प्राजापत्ययज्ञ का निर्देश करते हुए मनु कहते हैं कि यज्ञानुष्ठान बिना संन्यास लेने वाला निकृष्ट गति को प्राप्त करता है।[4] प्रत्येक धार्मिक कार्य फलदायी होता है, अतः मनु दीर्घ जीवन की कामना के लिए पुरश्चरण को आवश्यक बताते हैं–

नानिष्वा नवसस्येष्टया पशुना चाग्निमान्द्विजः।
नवान्नमदयान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषः॥[5]

वैदिक-संस्कृति का अनुगमन करने वाले भवभूति के नाटक में पुरश्चरण का वर्णन मिलता है। उत्तररामचरित में दशरथ के जामाता द्वारा बारह वर्ष तक चलने वाले यज्ञ का वर्णन मिलता है। सूत्रधार व नट के वार्तालाप द्वारा इस यज्ञ की सूचना व गुरुजनों का यज्ञ में सम्मिलित होने की सूचना नाटक के प्रारम्भ में ही मिलती है–

तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्।[6]

---

1. मनुस्मृति॰ 4/25
2. मनुस्मृति॰ 6/64
3. वही 6/37, 38
4. वही 4/27
   वेतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि।
   दशमस्कन्दयन्पर्वं पौर्णमासं च योगतः॥
6. उ॰रा॰चरि॰ 1/पृ॰ 21

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालतीमाधव नाटक में तांत्रिकों के गुरु अघोरघण्ट द्वारा पुरश्चरण का वर्णन उनकी शिष्या कपालकुण्डला के वार्तालाप के माध्यम से मिलता है। जिसकी समाप्ति पर पूजा सामग्री के लिए वह मालती को भी पर्वत पर ले जाती है तथा कहती है–

"यत्र पर्यवसितमन्त्रसाधनस्यास्मद्गुरोरघोरघण्टस्याज्ञयासविशेषमद्य मया पूजासभारः संनिधापनीयः॥"[1]

इसी नाटक में अघोरघण्ट द्वारा पुरश्चरण के प्रारम्भ में मालती की बलि चढ़ाने का वर्णन है। वह कहता है–

चामुण्डे! भगवति! मन्त्रसाधनादाबुदिदष्टामुपनिहितां भजस्व पूजाम्॥[2]

व्रत

प्राचीन ग्रन्थ मनुष्य के सच्चे मार्गदर्शक हैं तथा संसार में रहते हुए जीवन को संयमित करने का मूल आधार है। अतः वैदिक-संस्कृति के अनुरूप चलकर ही मनुष्य जीवन के सार्थक मूल्यों को प्राप्त करता है। वेदों में अन्य धार्मिक कार्यों के साथ-साथ व्रतों का विधान है, जिनके द्वारा मनुष्य अनेकों पुण्य अर्जित करता है तथा पापों का नाश करता है। प्रत्येक धार्मिक कार्यों, यज्ञों व उत्सवों के अवसर पर व्रत रखने का विशेष महत्व है।

मानव इस लोक में गमन करते हुए ही इच्छित कामनाओं की पूर्ति हेतु या कामनापूर्ति के उपरान्त व्रत रखता है। व्रत जहां एक ओर मनुष्य की नियमबद्धता को प्रदर्शित करते हैं वहीं दूसरी ओर प्रयोजन के प्रति प्रयोजनकर्ता की अनन्य श्रद्धा व भक्ति को प्रदर्शित करते हैं।

व्रत का अभिप्राय एक नियमित जीवन प्रक्रिया से है जिनके द्वारा मनुष्य एक असीम आत्मानन्द का अनुभव करता है। व्रत को तपस्या का ही पर्याय माना जा सकता है क्योंकि दोनों का आधार इन्द्रिय संयम ही है। वेदों व स्मृतियों में विभिन्न अवसरों व तिथियों के अनुरूप विभिन्न व्रतों का उल्लेख है यथा शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष दोनों में ही चान्द्रायण व्रत का विधान है–

एकैकं ह्रासयेत्पिंडं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं व्रतम्॥[3]

---

1. माल०मा० 5/पृ० 203
2. वही 5/25
3. मनुस्मृति० 11/216

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार कृच्छसान्तपनव्रत का वर्णन मिलता है–

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशीदकम्।

एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम्॥[१]

व्रत जहां मनुष्य के धार्मिक पुण्यों की वृद्धि करते हैं वहीं समस्त पापों का नाश भी करते हैं यथा–

यतात्मनो प्रमतस्य द्वादशाहमभोजकम्।

पराको नाम कृच्छ्रो यं सर्वपापनोदनः॥[२]

पूर्वकाल में देवताओं ने भी पापनाश के लिए चान्द्रायण व्रत किया था ऐसा वर्णन स्मृतियों में मिलता है।[3]

इस प्रकार इन्द्रिय संयमपूर्वक जो मनुष्य व्रत करता है वह चन्द्रलोक को गमन करता है–

यथाकथंचित्पिण्डानां तिस्त्रो शीतोः समाहितः।

मासे नश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्येति सलोकताम्॥[४]

सभी धार्मिक कर्मकाण्ड एक दूसरे के पूरक व सहयोगी हैं। जिस प्रकार तपस्या में दान का महत्व है उसी प्रकार व्रत में दान देने का विधान है, यथा चारुदत्त नाटक में चारुदत्त की पत्नी विदूषक से, स्वस्ति पाठ कराने हेतु, रत्नावली दान में देने का वर्णन करते हुए कहती है कि मैं–

"ननुषष्ठीमुपवसामि"[५]

मनु के अनुसार कोई भी धार्मिक कार्य बिना कामना के नहीं होता[6] इसी प्रकार कामनामय व्रत का वर्णन कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् नाटक में प्रस्तुत किया है। राजा पुरूरवा की पटरानी प्रियानुप्रसादन का व्रत का संकल्प लेती है तथा राजा से कहती है–

---

1. मनुस्मृति० 11/212
2. मनुस्मृति० 11/215
3. वही 11/221
4. वही 11/220
5. चारु० 3/पृ०सं० 84
6. मनुस्मृति० 2/4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आर्यपुत्रं पुरस्कृत्य कोऽपि व्रतविशेषोमयासम्पादनीयः।।"[१]

तथा राजा द्वारा इस व्रत का नाम पूछे जाने पर रानी की दासी निपुणिका उत्तर देती है–"भर्तः! प्रियप्रसादनं नाम।" इसी नाटक में राजा का मित्र विदूषक रानी के चन्द्रव्रत करने का वर्णन करता है।

"उत भवन्तमन्तरेण चन्द्वव्रतव्यपदेशेन मुक्तरोषा अद्यमे क्ष्णोः सुखदर्शना देवी।"[२]

उपवास का यही रूप चारुदत्त नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार व नटी के वार्तालाप के माध्यम से मिलता है–

"सूत्रधार–किन्नामधेय आर्याया उपवासः।
नटी–अभिरपपतिर्नाममम्।"[३]

मनु ने संकल्प कामना का मूल कहा है तथा यज्ञव्रतादि धार्मिककार्य भी इसी के निमित्त कहे हैं–

"संकल्पमूलः कामो वै यज्ञा संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यम धर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।।"[४]

धार्मिक कर्मकाण्डों में अनन्य आस्था को प्रतिज्ञा-योगन्धरायण में श्रेष्ठ व सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है। राजा वत्सराज प्रद्योत की कैद में हैं परन्तु वे विपरीत परिस्थिति होते हुए भी अपने धार्मिक कार्यों को नहीं छोड़ते। उनके चतुर्दशी व्रत का वर्णन विदूषक मन्त्रियों से कहता है कि–

अद्य चतुर्दशीं स्नायमानः प्रतिपालितश्च।[५]

मालतीमाधव नाटक में व्रतों के अनन्तर तन्त्रसिद्धि हेतु कापालिक व्रत का वर्णन मिलता है। इस नाटक में अवलोकिता कामन्दकी से सौदामिनी के भी पर्वत पर कापालिक व्रत करने का वर्णन करती है।

"सेदानीं सौदामिनी समासादिताश्चर्यमन्त्रसिद्धिप्रभावा श्रीपर्वतेकापालिकव्रतं धारयति।"[६]

---

1. विक्रमो॰ 3/पृ॰ 118
2. विक्रमो॰ 3/पृ॰ 116
3. चारु॰ 1/पृ॰सं॰ 4
4. मनुस्मृति॰ 2/3
5. प्रति॰यो॰ 3/पृ॰ 89
6. माल॰मा॰ 1/पृ॰ 31

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायश्चित्त

जिस प्रकार धार्मिक कर्मकाण्डों के अन्तर्गत तप का सम्बन्ध दान से व दान का सम्बन्ध व्रत से है, उसी प्रकार व्रत का सम्बन्ध प्रायश्चित से है। प्रत्येक पाप का प्रायश्चित व्रतों के अनुष्ठान द्वारा ही सम्भव है। मनु ने प्रायश्चित के अन्तर्गत तप व निश्चय को प्रतिस्थापित करते हुए कहा है–

प्रायो नाम तप प्रोक्तंचित्त निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चय संयुक्त प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।।[१]

मनुष्य जन्म से मृत्युपर्यन्त अपनी संस्कृति के अनुसार अनेकों नियमों व कर्तव्यों से बंधा रहता है। इन्हीं कर्तव्यों के पालन करने में जब-जब भूल करता है तब तब पाप का भागी होता है। अतः अपने द्वारा की गई भूलों का निराकरण ही प्रायश्चित है। अर्थात्–

अकुर्वन्तिहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायचित्तीयते नरः।।[२]

मनुस्मृति में मनुष्य द्वारा किये गये पाप भी दो प्रकार के वर्णित किये गये हैं। प्रथम तो अनजाने में किये गये पाप और द्वितीय प्रकार के पाप वह हैं जिन्हें मनुष्य इच्छा से मोहवश करता है। इन दोनों ही प्रकार के पापों के प्रायश्चित के लिए विभिन्न मत हैं, यथा–

अक्रामतः कृते पापे प्रायश्चितं विदुर्बुधाः।
कामकारकृतऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात्।।[३]

मनु ने दोनों ही प्रकार के पापों को प्रायश्चित योग्य निर्धारित करते हुए निर्देश दिया है कि वेद पाठ द्वारा अनिच्छा से किये गये पाप का प्रायश्चित हो सकता है–

अकामतः कृतं पाप वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तु कृतंमोहात्प्रायश्चित्तेः पृथग्विधैः।।[४]

---

1. मनुस्मृति॰
2. वही 11/44
3. वही 11/45
4. मनुस्मृति॰ 11/46

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु के अनुसार मनुष्य यदि पाप करता है तो उसके प्रायश्चित्त का विधान देवता व ऋषियों ने निश्चित किया है–

यैरभ्युपायैरेनांति मानवो व्यपकर्षति।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान॥[१]

अतः प्रायश्चित्त की अवस्था को प्राप्त कर भी जो मनुष्य प्रायश्चित नहीं करता वह सज्जनों की संगति के योग्य नहीं होता।[2]

अन्यत्र भी मनु ने प्रायश्चित्त न करने वाले को व्यवहार के अयोग्य व प्रायश्चित्त किये हुए को अनिन्दनीय वर्णित किया है–

एनस्विभिरनिर्णितैनार्यं किंचित्सहाचरेत्।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित्॥[३]

यदि मनुष्य स्वयं भूल करने के पश्चात् उसका ज्ञान हो जाने पर पश्चात्ताप करता है तो वह भी एक प्रकार का प्रायश्चित है उसके लिए किसी अन्य प्रायश्चित्त का विधान नहीं है। अर्थात् पश्चात्ताप स्वयं में प्रायश्चित्त ही है यथा–

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्तात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यात् पुनरिति निवृत्या पूयते तु सः॥[४]

इसी तरह के प्रायश्चित का वर्णन भवभूति ने किया है। राम सुग्रीव की ओर से बाली के साथ युद्ध करते हैं तथा बाली श्रीराम के साथ युद्ध करके मृत्यु को प्राप्त होता है तथा अन्त समय में बाली राम के साथ युद्ध करने के कारण स्वयं को धिक्कारता है–

दौरात्म्यादरिभिर्निजार्जज्ञुवो मायाविभिर्वन्विते
धर्मात्मन्यतिथौ निजानपि जगत्पूज्ये गृहानागते।
एतस्मिन्नुचितं न नाम विहितं वाचापि नोक्तं प्रियं
धिक्पापेन मया रिपाविव कथं बद्धो वधायोधमः॥[५]

---

1. मनुस्मृति० 11/210
2. वही 11/47 : प्रायश्चित्तीतयां प्राप्य देवात्पूर्वकृतेन वा।
न संसर्ग व्रजेत्सदिभः प्रयश्चित्तेऽकृते द्विजः॥
3. वही 11/189
4. मनुस्मृति० 11/230
5. महा०चरि० 5/46

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापकर्ता अपने पाप को लोगों में कहने, पछताने, तप, दान व अध्ययन करने से पापमुक्त हो जाता है।[1] इसी तरह का वर्णन महावीर चरित नाटक में मिलता है। राम परशुराम के साथ अपने द्वारा किये गये अविनय व्यवहार के लिए क्षमा मांगकर प्रायश्चित्त करते हैं–

यद्ब्रह्मवादिभिरूपासितवन्द्यपादे विधातपोव्रतनिधौ तपतां वरिष्ठे।
दवात्कृतस्त्वयि मया विनयापचारस्तत्र प्रसीद भगवन्नयमाञ्जलिस्ते।।[2]

मनु ने वेदाध्ययन, यज्ञ व क्षमा द्वारा पापों का नाश होना वर्णित किया है।[3]

परशुराम क्रोधित होने पर गुरु वशिष्ठ व विश्वामित्र का अनादर करते हैं अतः क्रोध शान्त होने पर अपने वृद्धों के अनादर जन्य पाप का प्रायश्चित करने के उपाय के लिए धर्मद्रष्टा वशिष्ठ जी से निवेदन करते हैं–

वृद्धातिक्रमसंभृतस्य महतोनिर्णिक्तये पाप्मनः
प्रायश्चेतनमादिशन्तु गुरवो रामेण दान्तस्य मे।
प्राग्धर्मस्य भवन्त एव हि परं द्रष्टार आसन् गुरो-
र्लब्ध्वा ज्ञानमनेकधा प्रवचनैर्मन्वादयः प्राणयन्।।[4]

ज्ञानता में क्रोधवश परशुराम विश्वामित्र व वशिष्ठ की बात का उल्लंघन करते हैं तथा कहते हैं कि मैं आप की बात का उल्लंघन कर रहा हूं। इसका प्रायश्चित्त कर लूंगा। यथा–

प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात्।
न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम्।।[5]

उरूभंग नाटक में महारानी गान्धारी के पश्चाताप का वर्णन बलदेव द्वारा मिलता है। गदायुद्ध में घायल पड़े दुर्योधन की मृत्यु व पराजय पर पश्चाताप में आंसू बहाती हुई गान्धारी को देखकर बलदेव कहते हैं–

---

1. मनुस्मृति॰ 11/226 : ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
   पापकृन्मुच्यते पापात्तथादानेन चापदि।।
2. महा॰चरि॰ 4/21
3. मनुस्मृति॰ 11/245 : वेदाभ्यासोऽन्तवहशक्तया महायज्ञक्रिया क्षमा।
   नाशयन्त्याशुपापानि महापातकजान्यपि।।
4. महा॰चरि॰ 4/25
5. महा॰चरि॰ 3/8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या पूत्रपौत्र वदनेष्वकृतूहलाक्षी
दुर्योधनास्तमितशोकनिपीतधैर्या।
अस्त्रैरजस्त्रमधुना पतिधर्मचिह्न-
माद्रीकृतं नयनबन्धमिदं दधाति।।[1]

अज्ञानवश किये गये पापों के अन्तर्गत वे पाप आते हैं जिनके विषय में मनुष्य को ज्ञान नहीं होता। ऐसे पाप अप्रत्यक्ष रूप में होते हैं। मनु के अनुसार जिन पापों का प्रायश्चित नहीं होता वह स्वयं अपनी सामर्थ्यानुसार निर्धारित करना चाहिए–

अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामनुत्तये।
शक्ति चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चितं प्रकल्पयेत्।।[2]

इसी भाव के दर्शन भास रचित प्रतिमानाटक में मिलते हैं। भरत ननिहाल से लौटते समय प्रतिमागृह में अपने पिता की मूर्ति देखकर व उनकी मृत्यु का कारण स्त्रीशुल्क में राज्य मांगे जाना विदित होने पर मूर्छित हो जाते हैं तथा पुनः चेतना प्राप्त कर स्वयं विचार करते हैं कि यदि स्त्रीशुल्क का उद्देश्य बनाया गया हूंगा तब अपनी देहशुद्धि द्वारा ही प्रायश्चित्त करना होगा, यथा–

हृदय! भव सकामं यत्कृते शङ्कते त्वं
शुणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत्।
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वय च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः।।[3]

अन्यत्र भी भरत, वन में श्रीराम से मिलने जाते हैं तथा स्वयं को इक्ष्वाकुवंश पर कलंक मानते हैं। वे स्वयं को दण्डित करने हेतु व प्रायश्चित्त के लिए कृतघ्न, अधमादि सम्बोधित करते हैं–

निघृणाश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानगतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति।।[4]

1. उरु॰ 1/40
2. मनुस्मृति॰ 11/209
3. प्रति॰ना॰ 3/9
4. वही 4/5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य-कर्मकाण्ड

धार्मिक कर्मकाण्डों–व्रत, तप, दान, पुरश्चरण व प्रायश्चित्त के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थों, वेदों व स्मृतियों में अन्य कर्मकाण्डों का भी वर्णन है, जो प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है क्योंकि धर्म ही एक ऐसा साधन है जो मनुष्य को लोक व परलोक दोनों में परम सुख प्राप्त कराने वाला होता है।

मनु ने भी सभी दुखों की उत्पत्ति अधर्म से मानते हुए कहा है–

अधर्म प्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम्।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम्।।[१]

प्रत्येक मानव के लिए वेदों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि वेद ही भारतीय-संस्कृति के द्योतक व सच्चे मार्गदर्शक हैं तथा मानव के कर्तव्यों को निर्धारित करते हैं। मनु ने वेदपाठ को ही श्रेष्ठ धर्म कहा है।

वेदमेवाभ्यसे नित्यं यथाकालमनन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते।।[२]

इसी प्रकार दिवस रात्रि में अग्निहोत्र तथा अमावस व पूर्णिमा को यज्ञ करने का विधान है।

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा।
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि।।[३]

सभी वेद और उन वेदविज्ञों की स्मृति आदि सब धर्म के ही मूल हैं।[4] अतः वेदों में अनिष्ट की आशंका हेतु या दुःस्वप्न आदि के देखने पर उनके निराकरण हेतु अनेकों समाधान मिलते हैं। ऐसे अवसरों पर शान्ति होम करने का निर्देश है।

सावित्रान्छान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः।
पितृंश्चेवाष्टकास्वर्वन्नित्यमन्वष्टकासु च।।[५]

---

1. मनुस्मृति० 6/64
2. वही 4/147
3. वही 4/25
4. वही 2/6 : वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
   आचारश्चैव साधुनामा त्मनस्तुष्टिरेव च।।
5. मनुस्मृति० 4/150

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री भास के नाटक बालचरित में भी शान्तिहोम का वर्णन मिलता है। कंस देवकी के सातवें गर्भ रूप कन्या का वध करते हैं तथा वह कन्या दो टुकड़ों में विभक्त हो आकाशवाणी करती हुई आकाश में चली जाती है। कंस इस दुःशकुन की शान्ति हेतु शान्ति कर्म करने के लिए भवन में प्रवेश करते हैं–

अतः प्रविश्य शान्त्यर्थे शान्तिकर्मोचितं गृहम्।
करोमि विपुलां शान्तिं मम शान्तिर्भविष्यति।।[१]

मनु ने यमों के सेवन का विधान बताया है अन्यथा नियमों का पालन करने वाला भी पतित हो जाता है–

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः।
यमात्प्रतत्यकुर्वाणा नियमान्केवलान्भजन्।।[२]

अभिषेक-नाटक में मृत्यु के पूर्व किये जाने वाले धार्मिक-कृत्य के दर्शन होते हैं। बाली मृत्यु से पूर्व हनुमान से पानी मांगते हैं व आचमन करते हैं–

बाली–आचम्या : परित्यजन्तीव मां प्राणाः। इमा गङ्गा प्रभृतयो महानद्य एता उर्वश्यादयोऽप्सूरसोमामभिगताः एष सहस्त्रहंसप्रयुक्तो वीरवाही विमानः कालेन प्रेषितो मां नेतुमागतः। भवतु। अयमयमागच्छामि।[३]

मनुस्मृति में भी शरीरशुद्धि हेतु आचमन करने का वर्णन मिलता है–

त्रिराचानेदपः पूर्वं द्विः प्रभृज्यात्ततो मुखम्।
शारीरं शोचमिच्छन्हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत्सकृत्।।[४]

♣♣♣

---

1. बा॰चरि॰ 2/25
2. मनुस्मृति॰ 4/205
3. अभि॰ना॰
4. मनुस्मृति॰ 5/139

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

सामाजिक न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

सामाजिक न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

प्राचीन वैदिक सामाजिक-व्यवस्था तत्कालीन समाज का सुन्दर प्रतिबिम्ब हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। इसी सामाजिक-व्यवस्था के आधार पर ही भारतीय संस्कृति ने अपने उज्ज्वलतम रूप को प्राप्त किया है। आज सदियों के पश्चात् भी समाज का आधार वेदों में वर्णित सामाजिक न्याय व दण्ड व्यवस्था है। आधुनिकतम न्याय ग्रन्थों का आधार वेद ही हैं। स्वधर्म की रक्षा व चराचर जीवों के सुख प्राप्ति हेतु दण्ड ईश्वर द्वारा निर्मित वर्णित किया गया है, यथा–

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः॥
तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्नचलन्ति च॥[1]

वेदों का अनुकरण करने वाले मनु ने राष्ट्र की अभिवृद्धि के निमित्त साम व दण्ड को आवश्यक माना है, यथा–

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः।
सामदण्डो प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये॥[2]

प्रजा में अनुशासन बनाये रखने व उचित-अनुचित का ज्ञान कराने हेतु न्याय व दण्ड दोनों आवश्यक हैं। अतः प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की सुरक्षा व शान्ति स्थापित रखने के निमित्त राजा को दण्ड की व्यवस्था बनाये रखनी चाहिए क्योंकि–

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।

---

1. मनुस्मृति॰ 7/14,15
2. मनुस्मृति॰ 7/109

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मे विदुर्बुधाः॥[1]

वेद में राजा की न्यायपूर्वक सेना शस्त्रादि को राष्ट्र हित में उपयोग करना चाहिए। ईश्वर उपदेश–

स्थिराः वः सन्त्वायुधा पराणुदे बीलु उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मामर्त्यस्य मायिनः॥[2]

मनु के अनुसार राजा को दण्ड का निर्णय करते समय देश-काल व परिस्थिति तथा शास्त्रोचित ज्ञान का विचार करना आवश्यक है क्योंकि यही दण्ड चारों आश्रमों के लिए ब्रह्मा के समान है–

तं देशकालो शक्तिं न विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु॥
स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥[3]

महाकवि भवभूति ने महावीर चरित नाटक में मनु के इसी कथन का अनुसरण करते हुए सामाजिक न्याय व दण्ड व्यवस्था का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। शिव धनुष के टूट जाने से क्रुद्ध हुए परशुराम को राम के साथ युद्ध करने को तत्पर देखकर शतानन्द राजा जनक से परामर्श करते हैं। अतः राजा जनक एक राजा के रूप में परिस्थिति का विचार करते हुए सामाजिक न्याय व दण्ड-व्यवस्था का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–

ऋषिरयमतिथिरयेद्विष्टरः पाद्यमर्घ्यं
तदनु च मधुपर्कः कल्प्यतां श्रोत्रियाय।
अथ तु रिपुरकस्माद्द्वेष्टि नः पुत्रभाण्डं
तदिह नयविहीने कार्मुकस्याधिकारः॥[4]

भवभूति ने राजा को केवल दण्ड देने वाला ही नहीं वरन् प्रजा का सही मार्गदर्शक रक्षक प्रदर्शित किया है। परशुराम का क्रोध राजा दशरथ के वचनों से शान्त हो जाता है तथा वह राजा दशरथ को अपना क्षत्रिय शासक बताते हैं। इस पर राजा दशरथ कहते हैं–

1. मनुस्मृति॰ 7/18
2. ऋग्वेद 1.39.2
3. वही 7/16, 17
4. महा॰चरि॰ 2/44

137826

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञो वा यदि वा विपर्ययगतज्ञानोऽथ संदेहभृद-
दृष्टादृष्टविरोधि कर्म कुरुते यस्तस्य गोप्तागुरुः।
निःसन्देहविपर्यये सति पुनर्ज्ञाने विरुद्धक्रियं
राजा वेत्पुरुषं न शास्ति तदयं प्राप्तः प्रजाविप्लवः।।[१]

मनु स्मृति में भी प्रजापालन क्षत्रियों का परम धर्म कहा है।[2] तथा प्रजारक्षण, ब्राह्मणों की सेवा राजा के लिए यही श्रेयस्कर बताया है। कालिदास ने क्षत्रिय राजा का कर्तव्य साम दाम दण्ड भेद सभी प्रकार से प्रजा का पालन दिखाया है–

नियमसि कुमाग्रं प्रस्थितानातदण्डः,
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तुनाम्,
त्वयितुपरिसमाप्तवन्धकृत्यं प्रजानाम्।।[३]

इसी नाटक में भवभूति ने दण्डनीय को उचित दण्ड देना आवश्यक प्रदर्शित किया है। परशुराम के अत्यन्त क्रोधित होकर राम को मारने के लिए उद्यत होने पर तथा किसी प्रकार भी शान्त न होने पर दशरथ कहते हैं–

दुर्दान्तानां दमनविधयः क्षत्रियेष्वायतन्ते
दुर्दान्तस्त्वं वयमपि च ते क्षत्रियाः शासितारः।
सद्यः शान्तो भव किमपरं दम्यसे चाधुनैव
क्व ब्राह्मणः प्रज्ञमनपराः क्षत्रधार्यं क्व शस्त्रम्।।[४]

धर्मस्वरूप मनु का भी यही कथन है–

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात्।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनः तत्पराः।।[५]

मनु ने दुष्टों को मारना राजा के लिए एक यज्ञ के समान प्रदर्शित किया

---

1. महा०चरि० 3/35
2. मनुस्मृति० 7/144
3. अभि०शा० 5/8
4. महा०चरि० 3/34
5. मनुस्मृति० 9/253

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उनके अनुसार धर्मपूर्वक प्राणियों की रक्षा व मारने योग्य दुष्टों का मारकर राजा नित्य प्रति एक लाख दक्षिणा वाले यज्ञों को करता है।[1]

प्रजा पालन के लिए प्रजा की भलाई के लिए राजा द्वारा स्वयं अपने सुखों का त्याग भवभूति जी ने उत्तररामचरित में प्रदर्शित किया है। केवल प्रजा के कहने पर तथा स्वयं सत्य विदित होते हुए भी सीता का परित्याग करने की आज्ञा देकर राजा राम सामाजिक न्याय का एक अद्भुत रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं तथा दुर्मुख द्वारा प्रजाजनों को दुर्जनों की संज्ञा देने पर इसका विरोध करते हुए तथा प्रजाजनों को सर्वथा निर्दोष प्रदर्शित करते हुए कहते हैं–

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां जातं च द्वैवाद्वचनीय बीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद्यदिदूर वृत्तम्।।[२]

कालिदास ने मनु के इस कथन से सहमत होते हुए भी प्रजा के व्यवहार पर विचार करने के लिए मन्त्री और अन्य सहयोगियों का परामर्श लेना चाहिए।[3]

मालविकाग्निमित्र नाटक में अकेले न्याय लेना पक्षपातपूर्ण माना है। गुरु हरदत्त व गणदास में परस्पर नाट्यकला को लेकर विवाद उपस्थित हो जाने पर राजा अग्निमित्र उनके साथ न्याय करने के लिए महारानी व कौशिकी को बुलाते हैं तथा उनके विचारों से सहमत होकर परिव्राजिक कहती है–

देवी! नतन्यायूयम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय।[४]

मनु के अनुसार भी राजा न्यायासन पर बैठकर सब स्थितियों पर दृष्टि डालते हैं–

सत्यमर्थं च सपश्येदात्मानमथः साक्षिणः।
देशं रूपं च काल च व्यवहार विधौ स्थितः।।[५]

1. मनुस्मृति॰ 8/306
2. उ॰रा॰चरि॰ 1/44
3. मनुस्मृति॰ 8/1
4. मालविका॰ 1/गद्यभाग 118
5. मनुस्मृति॰ 8/45

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री भास ने सामाजिक न्याय व दण्ड-व्यवस्था का एक दूसरा रूप प्रदर्शित किया है। मन्त्री योगन्धरायण स्वयं कैद में शत्रु राजा द्वारा पूजित होने पर विस्मय से कहते हैं–

अपरोक्षराज्यव्यवहारो भवानिति ब्रवीति समरावर्तितेषु शत्रुषु किमाह शास्त्रम्?[१]

आगे दण्डनीति को प्रदर्शित करते हुए मंत्री योगन्धरायण कहते हैं कि दण्ड-विधान से ही मेरी पूजा की जा रही है वरना अपराधी की पूजा तो केवल वध है।[2]

मनु के कथनानुसार अभयदान भी एक यज्ञ के समान है, क्योंकि प्रजा को अभय प्रदान करने वाला राजा सदा पूजा जाता है क्योंकि प्रजापालनरूपी यज्ञ में अभय प्रदान दक्षिणा के समान है।[3]

मनु ने राजा को न्याय हेतु निम्न निर्देश दिए–

स्वराष्ट्र न्यायावृत्तः स्यादभृशदण्डश्च शत्रुषु।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः।।[४]

पिता के पश्चात् पुत्र का राज्याभिषेक कर गद्दी पर बैठाना भी सामाजिक न्याय के अन्तर्गत आता है। राजा दुर्योधन की मृत्यु के पश्चात् अश्वत्थामा उनके पुत्र को राजा घोषित करते हैं।

पितृविक्रमदायाद्ये राज्ये भुजबलाजिते।
विनाभिषेकं राजा त्वं विप्रोक्तैर्वचनैर्भव।।[५]

राजगद्दी पर सामाजिक न्याय के अनुसार पिता के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र का ही अधिकार होता है इसी न्यायव्यवस्था को प्रतिमा नाटक में भरत ने प्रदर्शित किया है। शत्रुघ्न राम से राज्याभिषेक कराने का आग्रह करते हुए कहते हैं–

---

1. प्रति॰यो॰ 4/पृ॰ 126
2. वही 4/पृ॰ 128
3. मनुस्मृति॰ 8/303 : अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सतत नृपः।
   सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम्।।
4. वही 7/32
5. उरु॰ 1/65

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वय माहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात्।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तभिवारविन्दम्।।[1]

भवभूति ने सामाजिक न्याय स्वरूप राज्याभिषेक का वर्णन दशरथ द्वारा महावीर चरित में प्रदर्शित किया है। राजा दशरथ परशुराम विजय के उत्सव की राज्याभिषेकोत्सव में परिणत करने का आदेश देते हैं तथा इस उत्सव में प्रत्येक नागरिक को मनवांछित वस्तु प्रदान करने का आदेश देते हैं।[2]

भास ने सामाजिक न्याय के अन्तर्गत जुए में हारे दश स्वर्ण मुद्रा हेतु धनिक द्वारा संवाहक का पीछा किए जाने पर गणिका वसन्तसेना द्वारा उसे द्रव्य देकर न्याय करने का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वह आदेश देती है कि विजयी जुआरी को द्रव्य देकर विदा करो।[3]

♣♣♣

1. प्रति॰ ना॰ 7/9
2. महा॰चरि॰ 4/पृ॰ 181
3. चारु॰ 2/पृ॰ 56

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम अध्याय

सामाजिक एवं पारिवारिक कर्तव्य

1. राजा का कर्तव्य 2. प्रजा का कर्तव्य 3. माता का कर्तव्य
4. पिता का कर्तव्य 5. भ्राता का कर्तव्य 6. पुत्र का कर्तव्य
7. पति का कर्तव्य 8. पत्नी का कर्तव्य 9. मित्र का कर्तव्य
10. गुरु का कर्तव्य

सामाजिक एवं पारिवारिक कर्तव्य

इस समाज में रहते हुए मनुष्य किसी न किसी रूप में एक-दूसरे से सम्बन्धित है। सम्बन्धों के इसी जाल को समाज कहते हैं।[1] अत: इन संबन्धों को स्थापित करने तथा समाज को सुसंगठित करने व सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने कर्तव्यों का ज्ञान होना आवश्यक है।

परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है। परिवार के अन्तर्गत माता-पिता, भ्राता-पुत्र, पति व पत्नी आते हैं। अत: परिवार को स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्रत्येक पारिवारिक सदस्य को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार व्यक्तियों के समूह से परिवार बनता है, उसी प्रकार परिवारों का एकत्रित समूह समाज का निर्माण करता है। सामाजिक कर्तव्यों के अन्तर्गत राजा, प्रजा, गुरु व मित्र आदि के कर्तव्य आते हैं। तथा पारिवारिक कर्तव्यों के अन्तर्गत माता-पिता, भ्राता-पुत्र, पति व पत्नी के कर्तव्य आते हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति द्वारा वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत पारिवारिक व सामाजिक कर्तव्यों का ज्ञान होना अनिवार्य है। मनु के अनुसार

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्मे वर्त्मनि तिष्ठतोः।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान्॥[2]

पूंजीपति व श्रमजीवियों की समस्या को हल करने के लिए वेदादि

1. सोसा० मैकाइवर ओर पेज
2. मनुस्मृति० 9/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रों में गृहस्थाश्रम के अन्तर्गत सम्मिलित परिवार की व्यवस्था की गई है।[1]

भारतीय संस्कृति के दर्पण रूप वेदों में जहां एक ओर वैदिक कर्मों के उज्ज्वल प्रतिबिम्ब के दर्शन होते हैं वहीं दूसरी ओर सामाजिक व पारिवारिक कर्तव्यों का उचित निर्धारण मिलता है।

राजा का कर्तव्य

सामाजिक कर्तव्यों के अन्तर्गत राजा का कर्तव्य होता है। प्राचीन वैदिक समाज में राजा का स्थान सर्वश्रेष्ठ था तथा राजा को ईश्वर का ही दूसरा रूप माना जाता था, जो कि प्रजा की रक्षा करने व पालन करने के लिए राजा के रूप में इस संसार में आता था। मनु के अनुसार–

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।।[२]

सामाजिक कर्तव्यों व अधिकारों को नियमित करने वा न्यायपूर्वक धर्म की रक्षा करने के लिए ही स्वयं भगवान् ने उसकी रचना की। जिस प्रकार समस्त सृष्टि के रचयिता स्वयं ब्रह्मा हैं उसी प्रकार समस्त सृष्टि का रक्षक राजा है। राजा को देवताओं के समान परम तेजस्वी प्रदर्शित किया गया है, क्योंकि राजा की रचना ही समस्त देवताओं के एकत्रित तेज समूह से वर्णित है–

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्ते शयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।।[३]

वेद में वर्णित है कि किस प्रकार के व्यक्ति को राजा मानना चाहिए–

"इमं देवाऽअसपत्नꣳसुवध्वंमहते" क्षत्रायंमहतेज्येष्ठयायंमहते जानंराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियायं।।[४]

---

1. अथर्ववेद–14.1.22
"इहैव स्तमावियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्रितुम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौस्वस्तिकौ।।
2. मनुस्मृति॰ 7/3
3. मनुस्मृति॰ 7/4
4. यजु॰ 9.40

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मनुष्य के रूप में कोई विशेष देवता ही प्रतिष्ठित होता है। अतः समस्त देवताओं के तेज समूहों से निर्मित होने के कारण वह इन्हीं के समान रूपों को इच्छानुसार धारण कर सकता है।[1] इसलिए प्रजा के कल्याण हेतु राजा इन्द्रवत् प्रजा को अर्थवर्षण से सन्तुष्ट करे व सूर्यव्रत, वायुव्रत, यमव्रत, चान्द्रव्रत, अग्निव्रत तथा पार्थिव व्रत को धारण करे।[2] राजा को साक्षात् युग ही माना गया है व उसके द्वारा किये गये कार्यों को विभिन्न युगों के रूप में वर्णित किया गया है, यथा–

कृतं त्रेतायुगं चेदं द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते॥
कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रत द्वापरम् युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्॥[३]

मनु ने राजा के कर्मों व कर्तव्यों का निर्धारण इस प्रकार किया है–

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्डश्च शत्रुषु।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः॥[४]

वेदों में राजा के कर्तव्य को इस प्रकार कहा गया है–

त्रीणि राजाना विदर्थे पुरुणि परिविश्वानिभूषणः सदांसि॥[५]

अन्यत्र कहा है कि राजधर्म को तीनों समान मिलकर पालन करें।[6]

यद्यपि राजा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है परन्तु राजा को वेदविज्ञब्राह्मणों की सेवा करने व उनकी आज्ञा में चलने का निर्देश दिया गया है।

ब्राह्मणान्पर्युपासीत् प्रातरुत्थाय पार्थिवः।

---

1. मनुस्मृति॰ 7/7 : सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
   स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥
2. मनुस्मृति॰ 9/304-312
3. मनुस्मृति॰ 9/301-302
4. वही 7/32
5. ऋग्वेद 3.38.6
6. अथर्ववेद-15.2.9.2, 19.7.55.6
   तं सभा च समीर्तिश्च सेना च।
   सभ्यः सभा मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रैविधवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तैषां च शा सने॥[१]

क्योंकि मनु ने स्नातक को राजा से विशिष्ट माना है।[2] राजा द्वारा की जाने वाली धार्मिक व्यवस्था को मनु ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है।

जातिजानपदान्धर्मान्श्रेणीधर्माश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥[३]

गुरु की सेवा व आज्ञा पालन राजा के लिए आवश्यक है—यह बात उत्तररामचरित में राजा राम द्वारा प्रदर्शित की गई है। महर्षि अगस्त्य द्वारा आश्रम में आतिथ्य स्वीकार करने व पुनः अश्वमेध यज्ञ में शामिल होने की आज्ञा करने पर राजा राम शीघ्र आश्रम के लिए प्रस्थान करते हैं व पंचवटी का अतिक्रमण कर लौटने के अपराध की क्षमा मांगते हुए कहते हैं कि गुरु की आज्ञा पालन राजा का परम कर्तव्य है।[4]

महावीर चरित में गुरु शतानन्द के क्रोधित होने पर राजा दशरथ उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि परशुराम घर आये हुए विद्वान ब्राह्मण हैं तथा विद्वान होते हुए भी मार्गच्युत हो रहे हैं अतः उन्हें विनीत करना राजा का कर्तव्य है, आप शान्त हो जाइये।[5]

मनु ने, घोर विपत्ति में पड़कर भी राजा द्वारा ब्राह्मण को कुपित न करने का निर्देश दिया है। क्योंकि कुपित हुए ब्राह्मण राजा को सेना वाहनादि सहित शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं।[6]

महाकवि भास ने राजा के दूत के प्रति होने वाले कर्तव्यों को प्रदर्शित किया है। राजा दुर्योधन दूत रूप में आये घटोत्कच के कटु वचन बोलने पर भी कहते हैं—

दूतः खलु भवान् प्राप्तो न त्वम् युद्धार्थमागतः।
गृहीत्वा गच्छ सन्देशं न वयं दूतघातकाः॥[७]

1. मनुस्मृति॰ 7/37
2. मनुस्मृति॰ 2/139
3. वही 8/41
4. उ॰रा॰चरि॰ 2/पृ॰ 175 : गुरुजनादेशो परोधात्क्षणं क्षम्यतामतिक्रमो रामस्य।
5. महा॰ चरि॰ 3/22 : श्लाघ्यो गुणैर्द्विजवरश्च निजश्च बन्धुस्तस्मिन् गृहानुपगते सदृशं किमेतत्। विद्वानपि प्रचलितस्तु यदेष मार्गात्क्षणं हि तत्र विनयाय रामं भजत्वम्॥
6. मनुस्मृति॰ 9/313
7. दु॰घटो॰ 1/48

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास के अनुसार राजा को राज्यलक्ष्मी का मोह नहीं करना चाहिए अपितु धर्म का पालन करना चाहिए, जो शरीरपात के पश्चात् यश रूप में जीवित रहता है। ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र युद्धभूमि में जाते हुए कर्ण से भिक्षा मांगने हेतु उसके समीप जाते हैं तथा कर्ण के प्रणाम के उत्तर में सूर्य के समान यशस्वी होने का आशीर्वाद देते हैं। यह सुनकर कर्ण इन्द्र से कहते हैं–भगवन् दीर्घायु होने का आशीर्वाद क्यों नहीं दिया लेकिन यही ठीक है क्योंकि–

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्धया हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते॥[१]

यही भाव पंचरात्र नाटक में कर्ण द्वारा दुर्योधन को कहे गये हैं। राजा दुर्योधन द्वारा यज्ञ रूपी धार्मिक अनुष्ठान को समाप्त कर श्रद्धालु व प्रसन्न दिखाई देने पर कर्ण उनसे कहते हैं कि न्यायपूर्वक प्राप्त धन का दान करके आपने ठीक ही किया है–

बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः पुत्रापेक्षीवन्च्यते सन्निधाता।
विप्रोत्सङ्गे वित्तमावर्ज्य सर्वं राजा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः॥[२]

दान के विषय में मनु ने भी कहा है कि इस लोक में किया गया दान पुण्यादि कर्म उसके पीछे-पीछे जाता है।[3]

महाकवि कालिदास ने राजा का कर्तव्य पीड़ितों की रक्षा करना है, अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रदर्शित किया है। राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए एक मृग का पीछा करते हैं व आश्रम के समीप दो ऋषि कुमार उन्हें शस्त्र चलाने से रोकते हुए कहते हैं–कि हे राजन्! आश्रम का मृग है इसे नहीं मारना चाहिए क्योंकि–

तत्साधंकृतसंधानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि॥[४]

आगे राजा का कर्तव्य केवल प्रजा की रक्षा ही नहीं अपितु तपोवन भी

---

1. कर्णभा॰ 1/17
2. पंच॰ 1/24
3. मनुस्मृति॰ 4/241 : मृत शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमंक्षितो।
विमुखा बान्धवा शान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥
4. अभि॰शा॰ 1/10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा द्वारा रक्षणीय वर्णित किए गए हैं। भ्रमर द्वारा शकुन्तला को पीड़ित किए जाने पर व रक्षा की पुकार करने पर शकुन्तला की सखियां उसका उपहास करते हुए कहती हैं–

"के आवां परित्रातुम्। दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।।"[१]

राजा का कर्तव्य तपोवन की रक्षा व तपोवन में होने वाले यज्ञ की रक्षा करना भी है। ऋषि कुमारों द्वारा यज्ञ की रक्षा हेतु आमन्त्रित किए जाने पर तथा राजा द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर दोनों तपस्वी प्रसन्न हो कर कहते हैं–

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरुपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः।।[२]

मनु ने भी राजा के कर्तव्य के विषय में इसी प्रकार बताया है–

यथोद्धरति निर्दाता कक्ष धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्र हन्याच्च परिपन्थिनः।।[३]

अन्यत्र भी राजा के लिए विश्राम से बढ़कर कर्तव्य को प्रदर्शित किया गया है। राजा दुष्यन्त के धर्मासन से उठकर विश्रामगृह में जाने के पश्चात् ऋषि कुमार आते हैं। कंचुकी राजा को विश्राम गृह से बुलाने के विषय में विचार करता है व स्वयं ही निर्णय लेता है कि प्रजापालन के अधिकार में विश्राम कहां क्योंकि–

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव
रात्रिदिवं गन्धवहः प्रमाति।
शेषः सदैवाहित भूमिभारः
षष्ठाशं वृत्तेरपि धर्म एषः।।[४]

महाकवि कालिदास ने इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय नाटक में प्रजा के प्रत्येक प्राणी की रक्षा करना राजा का कर्तव्य प्रदर्शित किया है। दानवों द्वारा

---

1. अभि०शा० 1/11
2. अभि० शा० 2/16
3. मनुस्मृति० 7/110
4. अभि० शा० 5/6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी को पकड़े जाने पर उसकी सखियां प्रलाप करती हैं। राजा उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहते हैं कि सूर्योपस्थान से निवृत्त हुए मुझ पुरूरवा के समीप आकर कहो कि किससे आपकी रक्षा करनी है। क्योंकि आपदग्रस्तों की रक्षा ही राजा का कर्तव्य है।[1]

इसी प्रकार उत्तररामचरित में प्रजा की रक्षा राजा का कर्तव्य महारानी कौशल्या के मुख से वर्णित है। राजा जनक बाल्मीकि आश्रम में लव द्वारा सीता के वन त्याग रूपी दारुण दुःख को सुनकर क्रोधित हो जाते हैं तथा अपना चाप उठाकर शाप देने की बात करते हुए देखकर महारानी कौशल्या अरुन्धती से राजा जनक के क्रोध को शान्त करने की प्रार्थना करती है एवं अरुन्धती राजा जनक को उनके राज्योचित कर्तव्य का स्मरण कराती है कि दीन प्रजाजन रक्षणीय होते हैं। राजा जनक शान्त होकर अपने कर्तव्य का स्मरण करते हुए कहते हैं–

शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्रभाण्डं हि मे।
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पोरो जनः॥[2]

मनु ने भी प्रजापालन रूपी यज्ञ अभय रूपी दक्षिणा से सदैव बढ़ता है। यह वर्णित कर अभयदान राजा का कर्तव्य बताया है।[3]

महाकवि कालिदास ने नारद जी के माध्यम से राजा को बीच के लोक की रक्षा करने वाला वर्णित किया है–"विजयतांमध्यलोकपालः।"[4]

मनु जी ने भी राजा को इस लोक का रक्षक बताया है।[5]

भवभूति जी ने प्रजापालन, प्रजानुरंजन को राजा का परम कर्तव्य बताया है। उत्तररामचरित में लोकानुरंजन को पत्नी से भी अधिक, राजा राम के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है–

स्नेहं, दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

---

1. विक्रमो॰ 1/पृ॰ 9 : सूर्योपस्थान...इति।
2. उ॰रा॰चरि॰ 4/25
3. मनुस्मृति॰ 8/303 : अभ्यस्य हि यो दाता स पूज्यः सतत नृपः।
   सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभय दक्षिणम्॥
4. विक्रमो॰ 5/पृ॰ 231
5. मनुस्मृति॰ 7/3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[१]

आगे वह लोकाराधन करना श्रेष्ठ व्यक्तियों का कर्तव्य प्रदर्शित करते हुए प्रजा की भलाई के लिए प्राणों का बलिदान भी करने को तत्पर हैं–

सतां केनापि कार्येण, लोकस्याराधनं व्रतम्।
तत्प्रतीतं हि तातेत, मां च प्राणांश्च मुञ्चता।।[२]

अन्यत्र भवभूति राजा राम सूर्यवंशी को अपने कर्तव्य पालन करने में समर्थ न होने पर धिक्कारने का वर्णन करते हैं। वह राजाओं के उज्ज्वल चरित्र पर अपने कारण लोकापवाद नहीं लगाना चाहते व राजाओं के चरित्र पर यदि उनके कारण दोष लगे तो राजा राम स्वयं को राजा होने पर धिक्कारते हैं।[3] सीता को वन भेजने की आज्ञा देने पर दुर्मुख द्वारा प्रजा को दुर्जन कहे जाने पर राजा राम उसे रोकते हैं तथा कहते हैं कि देशवासी दुर्जन नहीं हैं। राजा को प्रजा अत्यन्त प्रिय होती है अतः उसे दोष देना राजा का कर्तव्य नहीं है।[4] राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा पालन है अतः प्रजा की भलाई के लिए प्रजा बिना राजा के वैसे है जैसे बिना गोपाल के गायें, इस कथन को भास ने प्रतिमानाटक में सुमन्त्र के माध्यम से प्रदर्शित किया है। राम के वनागमन का समाचार सुनकर दुखी भरत राज्याभिषेक कराने से मना करते हैं तब सुमंत्र उन्हें राजा का कर्तव्य स्मरण कराते हुए कहते हैं–

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वे प्रजाः।।[५]

प्रत्येक राजा का कर्तव्य है दूसरे देश से आये किसी भी दरबारी या प्रजाजन से उस राज्य के राजा का कुशलक्षेम पूछे। राजा उदयन वासवदत्ता के पिता के देश से आगत कंचुकी से सम्मानपूर्वक राजा के कुशल समाचार को पूछते हैं कि–

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयाऽस्तमयप्रभुः।

---

1. उ॰रा॰चरि॰ 1/12
2. उ॰रा॰चरि॰ 1/41
3. उ॰रा॰चरि॰ 1/42 :
   यत्सावित्रेर्दीपितं भूमिपाले-लोकश्रेष्ठः साधुचित्रम् चरित्रम्।
   मत्संबन्धात्मकमला किंवदन्ती, स्याच्चेदस्मिन्हन्त! धिङ्मामधन्यम्।।
4. उ॰रा॰चरि॰ 1/44
5. प्रति॰ना॰ 3/23

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः॥ स्वप्नवा॰ ६/६

महाकवि कालिदास ने मनु के इस कथन को कि राजा प्रजा पालन में सूर्यव्रत को धारण करता है विक्रमोर्वशीय नामक नाटक में परिलक्षित किया है। इस नाटक में पुरूरवा के माध्यम से राजा को सूर्य के समान समस्त प्रजाओं के पापों को दूर करने वाला वर्णित किया है।[1]

इसी प्रकार मनु ने राजा को सूर्य के समान नेत्र व मन को तपानेवाला बताया है–

तपस्यांदित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्॥[2]

राजा का कर्तव्य पुत्र के समान प्रजा का पालन करना है, यही भाव महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त के माध्यम से वर्णित किये हैं। राजा दुष्यन्त सम्पूर्ण प्रजा को सन्तान के समान समझते हुए घोषणा करवाते हैं–

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धवाः।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्॥[3]

मनु ने भी राजा का कर्तव्य इसी प्रकार निर्धारित किया है–

वशा पुत्रासु चैव स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुराच च॥[4]

महाकवि भास ने भी राजा के इसी रूप का वर्णन किया है। भीम हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच को न पहचान कर उसे पुत्र शब्द से सम्बोधित करता है। स्वयं को पुत्र कहने पर घटोत्कच क्रोधित होता है, क्योंकि वह भीम को पिता के रूप में नहीं पहचानता। अतः ऐसी स्थिति में भीम घटोत्कच को समझाते हैं कि राजा के लिए सम्पूर्ण प्रजा पुत्र के समान होती है–

सर्वाः प्रजाः क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयते।[5]

---

1. विक्रमो॰ 1/पृ॰ 9 : सूर्योपस्थान...इति।
2. मनुस्मृति॰ 7/6
3. अभि॰शा॰ 6/23
4. मनुस्मृति॰ 8/28
5. मध्यमव्या॰ 1/पृ॰ 35

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति जी ने राजा के कर्तव्य को किसी अवस्था विशेष के बन्धन से नहीं बांधा है। उन्होंने महावीर चरित नाटक में यह प्रदर्शित किया है "राजा वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता", इस कथन को राजा जनक के माध्यम से दर्शाया गया है। धनुष भंग के कारण क्रोधित परशुराम राम के वध को तत्पर हो जाते हैं तथा गुरुजनों आदि के द्वारा समझाये जाने पर भी शान्त नहीं होते तो राजा जनक कहते हैं–

शत्रुध्वंसा त्परिणतिवशाद्गृह्यतन्त्रव्रतानां
नैरन्तर्यादपि च परमब्रह्मतत्त्वोपलम्भात्।
क्षात्रं तेजो विजयसहजं यदव्यरंसीदिदं,
तत्प्रत्युद्भूय त्वरयति पुनः कर्मणेकार्मुकं नः।।[1]

आगे राजा दशरथ राजा का कर्तव्य दुर्दान्तों का दमन बताते हैं एवं क्रोधित परशुराम को शान्त होने के लिए कहते हैं।[2] राजा दशरथ परशुराम से कहते हैं कि तुम ज्ञानवान हो अतः यदि तुम विरुद्ध आचरण करोगे तो राजा का कर्तव्य तुम्हें दण्ड देकर शासित करना है–

अज्ञो वा यदि वा विपर्ययगतज्ञानोऽथ संदेहभृ-
दृष्टादृष्टविरोधि कर्म कुरुते यस्तस्य गोप्ता गुरुः।
निःसंदेहविपर्यये सति पुनर्ज्ञाने विरुद्धक्रियं
राजा चेत्पुरुषं न शास्ति तदयं प्राप्तः प्रजाविप्लवः।।[3]

विश्वामित्र राजा दशरथ के कथन का अनुमोदन करते हुए परशुराम को उचित व्यवहार न करने पर राजा द्वारा उद्दण्ड को दण्ड देना स्वीकार करते हैं।[4] मनुस्मृति में भी राजा के लिए दण्डनार्थी को दण्ड देने का निर्देश है–

---

1. महा०चरि० 3/25
2. महा०चरि० 3/34 :
दुर्दान्तानां दमनविधयः क्षत्रियेष्वायतन्ते
दुर्दान्तस्त्वं वयमपि च ते क्षत्रियाः शासितारः।
सद्ब्रह्यः शान्तो भव किमपरं दम्यसे चाधुनैव
क्व ब्राह्मणः प्रशमनपराः क्षत्रधार्यं का शस्त्रम्।।
3. वही 3/35
4. वही 3/36
अनुत्पन्नं ज्ञानं यदि यदि च संदेहविधुरं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदण्डयान्दण्डयन्राजा दण्ड्याश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति।।[1]

अन्यत्र राजा को वैद्य की तरह प्रदर्शित किया गया है। राम जामदग्न्य के शान्त होने पर उनसे अस्त्र उठाने की क्षमा मांगते हैं तब परशुराम उन्हें राजा के कर्तव्य का स्मरण कराकर उनके इस कार्य को उचित बताते हुए कहते हैं–

असाध्यमन्यथादोषं परिच्छिद्य शरीरिणः।
यथा वैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति।।[2]

महाकवि कालिदास ने भी विरुद्ध आचरण करने वाले शत्रु राजा पर राजा द्वारा आक्रमण उचित प्रदर्शित किया है। राजा अग्निमित्र अपने मंत्रियों से सलाह लेते हैं। वह भी इस आक्रमण को शास्त्रानुकूल बताते हैं।[3]

राजा का कर्तव्य मन्त्रियों से विचार-विमर्श करना भी है यही भाव मनुस्मृति में मिलता है।[4]

महाकवि कालिदास ने राजा का कर्तव्य प्रजा से 'कर' लेना भी है, यह विदूषक के माध्यम से वर्णित किया है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला को देखना चाहते हैं इस पर उनका मित्र उन्हें आश्रम में कर हेतु जाने का बहाना सुझाता है–

"नीवारषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति।"[5]

मनु ने भी राजा का कर्तव्य प्रजाओं से कर लेना व पितृवत् व्यवहार करने का निर्देश दिया है। मनु के अनुसार–

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्।

विपर्यस्तं वा स्यातपरिचर वसिष्ठस्य चरणौ।
ध्रुवं ज्ञाने दोषः कथमपरथा दुर्व्यवहृति-
विशुद्धो चेत्पापं चरसि न सहन्ते नृपतयः।।

1. मनुस्म॰ 8/128
2. महा॰चरि॰ 4/23
3. मालविका॰ 1/45 गद्यभागः –''प्रकृत्यमित्रः प्रतिकूलचारी च मे वैदर्भः। तद्यातव्यपक्षे स्थितस्यपूर्वसङ्कल्पितममुन्मूलनाय वीरसेनप्रमुखं दण्डवक्रमाज्ञापय।''
4. मनुस्म॰ 8/1
5. अभि॰शा॰ 2/पृ॰ 74

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृप्।।[1]

इस प्रकार मनु ने राजा के लिए निम्न कर्तव्य निश्चित किए हैं, यथा

"समोत्तमाधमे राजात्वाहूतः पालयन्प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्।।
संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम्।।"[2]

राजा प्रजा से कर लेने के कारण प्रजापालन रूप धर्म से बंधा है।[3]

कालिदास ने राजा को पृथ्वी की रक्षा करने वाला बताया है। उन्होंने विक्रमोर्वशीय नाटक में राजा विक्रम के माध्यम से राजा की जाति ही कर्तव्यपरायण प्रदर्शित की है। राजा के लिए कोई आयु सीमा निर्धारित नहीं की है, यथा–

शमयति गनानन्यान्गान्धद्विपः कलभोऽपि सन्।
प्रभवतितरां वेदोदग्रं भुजङ्गशिशोर्विषम्।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो गणः।।[4]

प्रजा का कर्तव्य

वैदिक-संस्कृति के अन्तर्गत राजा के प्रजा के प्रति कर्तव्यों के साथ-साथ प्रजा के भी अपने राजा के लिए कर्तव्य निहित हैं। प्रत्येक प्रजाजन राजा का अनुकरण करते हैं इसलिए राजा का योग्य होना अनिवार्य है। मनु ने भी प्रजा को राजा के पीछे चलने वाला प्रदर्शित किया है–

कामक्रोधो तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति।
प्रजास्तमनु वर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः।।[5]

प्रजा के लिए राजा देवता के समान श्रद्धास्पद है, क्योंकि राजा की उत्पत्ति इन्द्रादिक देवताओं के एकत्रित तेज समूह से होती है अतः मनु ने

---

1. मनुस्मृति० 7/80
2. मनुस्मृति० 7/87–88
3. वही 7/144 : क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।
   निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते।।
4. विक्रमो० 5/18
5. मनुस्मृति० 8/175

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्यावस्था को प्राप्त राजा को भी देवता के समान पूज्य प्रदर्शित किया है।

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।[1]

इसलिए प्रजा को राजा से द्रोह नहीं करना चाहिए वरना वह क्षय को प्राप्त होता है–

त यस्तु द्वेष्टि मोहात्स विनश्यत्यसंशयम्।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः।।[2]

सैनिकों के लिए युद्ध में पीठ न दिखाना व राज्य तथा राजा के हित हेतु प्राणों की आहुति देने का निर्देश है। वेदों के अनुसार सैनिकों का कर्तव्य है कि वह युद्ध में जीते हुए अश्व, रथ, हाथी आदि सब द्रव्य राजा को अर्पित कर दें तथा–

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्।।[3]

प्रजा का कर्तव्य अपने धर्म का पालन करे व नवीन अभिषिक्त राजा का सम्मान कर भेंट देकर उसे प्रसन्न करे। यथा–

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान्।
रत्नैश्च तूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह।।[4]

भास ने प्रजा के रूप में मंत्री के कर्तव्य का सुन्दर रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। प्रजा का कर्तव्य राजा के दुख में दुखी होना व सुख में सुखी होना है क्योंकि वह नदियों के समान राजा का अनुगमन करती है। यही भाव स्वप्नवासवदत्ता नाटक में दृष्टिगत होते हैं। राजा उदयन अपनी पत्नी के विरह में अत्यन्त दुखी हैं अतः उनके दुख में दुखित प्रजाजनों का वर्णन ब्रह्मचारी योगन्धरायण से करता है कि मन्त्री रुमण्वान किस प्रकार राजा को संभालने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी अवस्था राजा के सदृश वर्णित करता है यथा–

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः

---

1. मनुस्मृति॰ 7/8
2. मनुस्मृति॰ 7/12
3. वही 7/97
4. वही 7/203

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।
दिवा वा रात्रौ वा परचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः।।[१]

प्रजा का कर्तव्य राजा को समय-समय पर उचित परामर्श देना भी है। मंत्री रूप में राजा को कर्तव्यों का उचित समय पर स्मरण कराना तथा मंत्री को राजा के हितार्थ कटुवचन बोलने का भी अधिकार है तथा प्रजा की भलाई हेतु वह राजा के आराम में विघ्न डालने से नहीं हिचकिचाता, क्योंकि प्रजानुरंजन ही राजा का कर्तव्य है तथा प्रजा का कर्तव्य राजा को लोकोपवाद से रक्षित करना है। उत्तररामचरित नाटक में दुर्मुख के माध्यम से यहीभाव लक्षित होता है। गुप्तचर दुर्मुख जनवासियों के विचार जानकर भी श्रीराम से सीता जनित जनापवाद को कहते हुए संकोच करता है परन्तु फिर, अपने कर्तव्य का स्मरण कर समयानुसार यही उचित मानता है।[2] यही भाव कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में कंचुकी द्वारा प्रदर्शित किए हैं। राजा दुष्यन्त के धर्मासन से उठकर विश्रामगृह में जाने के पश्चात् ऋषि कण्व के आश्रम में आये तपस्वी जनों के पधारने का समाचार राजा को देने में कंचुकी पहले तो संकोच करता है परन्तु राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य का स्मरण कर इस अवसर पर अपना यही कर्तव्य उचित मानता है।[3] प्रजाजन राजा के मनोरंजन उत्सवादि पर प्रसन्न होते हैं तथा राजा के दर्शनों से कृतार्थ होते हैं। राजा राम के अभिषेकोत्सव में सम्मिलित प्रजाजन श्रीराम के दर्शनों को उत्सुक हैं यह समाचार शत्रुघ्न राम से सुनाते हैं–

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन,
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात्।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम्।।[४]

राजा के न होने से ही राज्य विनष्ट हो जाता है इसलिए एक राजा के

1. स्वप्नवा॰ 1/14
2. उ॰रा॰चरि॰ 1/पृ॰ 93 : "हा कथमिदानीं देवीमन्तरेणेदृशमचिन्तनीय जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेयस्येष।"
3. अभि॰शा॰ 5/पृ॰164 : भोः। कामं...निवेदितुम्।
4. प्रति॰ ना॰ 7/9

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हटते ही नवीन राजा चुनकर अभिषेक कराना प्रजा का कर्तव्य है। प्रतिमा नाटक में सुमन्त्र अपने व प्रजावासियों की ओर से भरत को राज्याभिषेक कराने का अनुग्रह करते हैं–

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः॥[1]

मालविकाग्निमित्र नाटक में मन्त्री द्वारा प्रजा का कर्तव्य वर्णित है। नवीन अभिषिक्त राजा यदि शत्रु प्रवृत्ति रखे तो उसे राज्य से हटा देने का वर्णन है, यथा–

अचिराधिष्ठित राज्यः शत्रुः प्रकृतिष्व रुढ़ मूलत्वात्।
नव संरोहण शिथिलस्तरूरिव सुकरः समुद्धर्तुम्॥[2]

प्रजावासी राज्यादेश का पालन ही अपना कर्तव्य समझते हैं। यद्यपि इस मार्ग पर वे अत्यन्त दुःख उठाते हैं व अपने को निःसहाय अनुभव करते हैं। श्रीराम के वनागमन का राजा दशरथ द्वारा आदेश देने पर व राजा को पुत्र विरह में जलता हुआ देखकर कंचुकी अपनी असहाय अवस्था व राजा की करुण अवस्था का वर्णन करता है। प्रतिहारी को सावधान होने का आदेश कंचुकी द्वारा दिया जाता है इसलिए वह इस आदेश के कारण को जानना चाहती है, कंचुकी उसे कहता है–

"एष हिं महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तु मुपावर्त्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहुप्रलपन् समुद्रगृहके शयानः॥"[3]

आगे वह राम के वन जाने पर अयोध्यावासियों की अवस्था का वर्णन करते हुए कहता है–

नागेन्द्रा यव साभिलाषविमुखाः सास्त्रेक्षणा वाजिनो,
ह्रेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा-
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी॥[4]

---

1. प्रति॰ना॰ 3/23
2. मालविका॰ 1/8
3. प्रति॰ना॰ 2/पृ॰ 58
4. प्रति॰ना॰ 2/2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा का राम के प्रति अथाह प्रेम भरत राम को बताते हुए चरणपादुका लेकर जल्दी अयोध्या लौटाना चाहते हैं क्योंकि–

आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया।

तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात्॥[१]

मन्त्री का कर्तव्य, राजा के हित के लिए अप्रिय कार्य करना भी अनुचित नहीं है। राजा के पत्नी वासवदत्ता के मोह में राज्य को भूल जाने पर मन्त्री वासवदत्ता को मृत घोषित कर उसे छिपा देता है तथा अपने इस कृत्य को राजा के हित में जानकर उचित ठहराते हुए सोचते हैं कि–

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थ-
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे॥[२]

भास ने अतिशूद्रक गात्रसेवक के माध्यम से भी प्रजा के कर्तव्य का सुन्दर निरूपण किया है। वह राज्य की सेवा हेतु कहता है–

"नवं शराबं सलिलैः संपूर्णं सुसंस्कृतं दर्शकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं सगच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥"[३]

माता का कर्तव्य

वैदिक युग से ही मां पूजनीय रही है। इस सृष्टि में मां का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। माता से ही जीव की उत्पत्ति होती है अर्थात् प्रथम जन्म माता से ही होता है। वह जननी है। बालक की प्रथम पाठशाला परिवार है एवं प्रथम गुरु भी मां है–

मातृरग्रेऽधिजननं द्वितीय मोञ्जिबन्धने।

तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्॥[४]

अतः मानव की जन्मदात्री व निर्मात्री दोनों ही मां है। माता को पृथिवी

1. प्रति॰ना॰ 4/28
2. स्वप्नवा॰ 6/15
3. प्रति॰या॰ 4/2
4. मनुस्मृति॰ 2/169

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना गया है। क्योंकि वह पृथ्वी के समान् ही धैर्यवान् व कर्तव्यों का पालन करती है। जिस प्रकार पृथ्वी का कर्तव्य बीज को अंकुरित व पल्लवित करना है। उसी प्रकार माता अपने कर्तव्य का पालन करती है। इसी कारण ऋषिगण स्त्री को खेत मानते हैं।[1]

यद्यपि पृथ्वी सब जीवों का शाश्वत उत्पत्ति स्थान है, लेकिन उसका कोई गुण पौधे में नहीं होता, वरन् वह स्वयं के गुणों से अंकुरित होता है।[2]

माता ममता का सागर है इसी कारण वह लक्ष्मी के समान मान्या व पूजनीया है–

प्रजनार्थ महाभागाः पूजर्हां गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु विशेषोऽसि कश्चन॥[३]

माता का धर्म समाज, परिवार व संसार को स्वर्ग बनाना है क्योंकि समस्त गृहकार्यों की सार्थकता नारी से ही है यथा–

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्राणाः प्रत्यक्षं स्त्रीबन्धनम्॥[४]

माता का कर्तव्य पुत्र का उचित पालन व उसे उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराना है। यही कर्तव्य पालन कालिदास जी के नाटक विक्रमोर्वशीय में मिलता है। माता की झोली सदैव आशीर्वाद से भरी होती है। उर्वशी बहुत समय पश्चात् लौटे अपने पुत्र द्वारा प्रणाम करने पर आशीर्वाद देती है–

वत्स! पितरमाराधयन् भव।[५]

महाकवि भास ने प्रतिज्ञायोगन्धरायण नाटक द्वारा माता के कर्तव्य व प्रेम का सुन्दर रूप प्रदर्शित किया है। कालिदास ने माता के कन्यादान रूपी कर्तव्य को वर्णित किया है। राजा प्रद्योत कन्या के विवाह के विषय में रानी

---

1. मनुस्मृति॰ 9/33 : क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
   क्षेत्रबीजसमायोगात्सम्भवः सर्वदेहिनाम्॥
2. मनुस्मृति॰ 9/37 : इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते।
   न च योनिगुधणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु॥
3. मनुस्मृति॰ 9/26
4. मनुस्मृति॰ 9/23
5. विक्रमो॰ 5/पृ॰ 212

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वार्तालाप करते हैं तो रानी कहती है कि धर्म व स्नेह माताओं के लिए कष्टकर होता है–

अदत्ते त्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिता खलु मातरः।।[1]

माता का कर्तव्य कन्या का दान करने से पूर्व वर के विषय में जानकारी प्राप्त करना है अतः रानी राजा से कहती है–

"अभिप्रेतं में प्रदानम्। वियोगो मां सन्तापयति। अथ कस्मै पुनर्दत्ता।।"[2]

भरत के श्रीराम वन-गमन व पिता की मृत्यु से दुखी होकर वह इस सब के लिए अपनी माता कैकेयी को दोषी मानकर उन्हें प्रणाम नहीं करते, लेकिन कौशल्या अपने मातृत्व के कर्तव्य का पालन करते हुए उन्हें प्रणाम करने का स्मरण कराती है–

"जात! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम्।"[3]

माता का कर्तव्य पुत्र पालन के पश्चात् उसे राजा बनते हुए देखकर प्रसन्न होना व स्वयं को धन्य मानना है। माता कैकेयी राम को वन से लौटाने के लिए भरत के साथ जाती है व श्रीराम से कहती है–

"धन्या खल्वस्मि। इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेहितुमिच्छामि।"[4]

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय नाटक में पुत्र मिलन को उत्सुक व ब्रह्मचर्याश्रम से लौटे हुए पुत्र को देखने को आतुर ममतामयी मां का चित्र राजा विक्रम के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। राजा उर्वशी का ममतामय रूप अपने पुत्र को दिखाते हुए कहते हैं–

"इयं ते जननी प्राप्ता त्वदालोकनतत्परा।
स्नेहप्रस्रवनिर्भिन्नमुद्वहन्ती स्तनांशुकम्।।"[5]

---

1. प्रतिज्ञाया० 2/7
2. वही 2/पृ० 54
3. प्रति०ना० 3/114
4. वही 7/214
5. विक्रमो० 5/12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता का कर्तव्य

पारिवारिक कर्तव्यों के अन्तर्गत पिता का कर्तव्य प्रमुख है। भारतीय वैदिक-संस्कृति के अनुसार भारतीय समांज में पितृ सत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं। जिनमें पिता परिवार का कर्ता व रक्षक माना जाता है। यद्यपि जन्म देने से माता श्रेष्ठ होती है, परन्तु–

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते।

सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता॥[1]

गृहस्थाश्रम में रहते हुए पिता का कर्तव्य समस्त परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करना व पारिवारिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन करना है। विवाह योग्य सन्तान का यथा समय विवाह सम्पन्न कराना व नित्य-यज्ञों को यथाविधि सम्पन्न कराना ही पितृ धर्म है। गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से उच्च है क्योंकि सब आश्रम इसी से आश्रय पाते हैं, इसलिए इस आश्रम का पालन अत्यन्त धैर्यवान् तथा जितेन्द्रिय होकर करना ही पिता का कर्तव्य है क्योंकि–

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।

मुखं चेहेच्छता नित्यंयोऽधायो दुर्बलेन्द्रियैः॥[2]

पिता को विवाहयोग्य कन्या हो जाने पर उसके लिए उचित वर की खोज कर कन्यादान करना चाहिए कन्या का विक्रेता नहीं क्योंकि मनु जी ने पिता के लिए निर्देश दिया है कि–

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहणीयाच्छुल्कमणवपि।

गृहणंश्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी॥[3]

पिता कों गुणवान वर को ही कन्या देनी चाहिए। चाहे योग्य वर की खोज में कन्या अधिक आयु को प्राप्त हो जाये। यथा–

काममामरणातिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि।

न चैवेनां प्रयच्छेत्तु गुहीनाय कर्हिचित्॥[4]

---

1. मनुस्मृति॰ 9/35
2. वही 3/79
3. मनुस्मृति॰ 3/51
4. वही 9/89

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य सुन्दर कुल व जाति का वर मिलने पर पिता को अवश्य ही कन्या का विवाह करा देना चाहिए क्योंकि पिता के लिए योग्य व गुणी वर को ढूंढना कठिन कार्य है–

उत्कृष्टायाभिस्माय वराय सुदृशाय च।

अप्राप्तामपितां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि॥१

महाकवि कालिदास ने शकुन्तला के गन्धर्व-विवाह का समाचार ज्ञात होने पर ऋषि कण्व द्वारा पिता के इस कर्तव्य को सुन्दर रूप प्रदर्शित किया है। यथा–

मनु ने वाग्दान हो जाने पर कन्यादान के विषय में पिता के लिए निर्देश किया है।[2]

संकल्पितं प्रथमेव मया तवार्थे

भर्तारमात्मसदृशं सुवृतैर्गता त्वम्।

चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय–

मस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः॥३

इसी नाटक में कवि कुलशिरोमणि कालिदास ने पिता के कर्तव्य पालन व प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है। महर्षि कण्व शकुन्तला को विवाहोपरांत पति गृह भेजने पर प्रसन्न भी होते हैं व दुखी भी तथा आश्रमवासियों के व्याकुल होने पर उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहते हैं कि–

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।

जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥४

भास जी ने पिता का कर्तव्य पुत्री के लिए योग्य वर ढूंढने के विषय में चिन्तित होना राजा प्रद्योत के माध्यम से वर्णित किया है। राजा कंचुकी से कहते हैं–

---

1. मनुस्मृति॰ 9/88
2. मनुस्मृति॰ 9/71 : न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः।
   दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानूतम्॥
3. अभि॰शा॰ 4/13
4. वही 4/22

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्याया वरसम्पत्तिः पितुः (प्रायः) प्रयत्नतः।
भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा॥[1]

आगे वह पितृ-प्रेम व पुत्री की रक्षा के लिए प्रयत्नवान् होते हुए पुत्री के लिए किस प्रकार के गुणों को ग्रहण करने वाला वर चाहिए, यह बताते हैं, यथा–

कुलं तावच्छ्लाघ्यं प्रथममभिकाङ्क्षो हि मनसा
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान्।
ततो रूपे कान्तिं न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः॥[2]

पिता चाहे राजा हो या सामान्य जन लेकिन पिता होते हुए उसके कुछ कर्तव्य होते हैं जिनके लिए वह सदा चिन्तित रहता है। राजा अपनी पुत्री कुरंगी के यौवनास्था को प्राप्त हो जाने पर चिन्तित है, इसलिए वह अपनी पत्नी को बुलाने की आज्ञा देकर विचार करते हैं–

इष्टा मखा द्विजवराश्च मयि प्रसन्नाः
प्रज्ञापिता भयरसं समदा नरेन्द्राः।
एवं विधस्य च न मेऽस्ति मनः प्रहषः
कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम्॥[3]

पिता के कर्तव्य का एक दूसरा रूप भी भवभूति ने उत्तररामचरित में वर्णित किया है कि पुत्री पर अन्याय किये जाने वाले को चाहे वह उसका पति ही हो पिता दण्डित कर सकता है। वन में सीता के लोकापवाद के कारण परित्याग का समाचार ज्ञात होने पर जनक क्रोधित होकर धनुष उठा लेते हैं–

एतद्वैशसवज्रघोरंपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः।
क्रोधस्य ज्वलितुंझटित्यवसरश्चापेन शापेन वा॥[4]

---

1. प्रति॰यो॰ 2/5
2. प्रति॰यो॰ 2/4
3. अवि॰ 2/4
4. उ॰रा॰चरि॰ 4/24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः अरुन्धती उन्हें शान्त करते हुए समझाती है कि राम आपके पुत्र रूप धन हैं आपका क्रोध करना व्यर्थ है। अतः क्रोध शान्त होने पर जनक अपने कर्तव्य का स्मरण कर भूल का अनुभव करते हैं तथा चाप व शाप दोनों को शान्त होने के लिए कहते हैं।[1]

पिता का कर्तव्य परिवार का मुखिया होने के नाते परिवार की रक्षा करना है। अपने कर्तव्य पालन में प्राणों का बलिदान करने का वर्णन ब्राह्मण केशवदास के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। राक्षस घटोत्कच के द्वारा ब्राह्मण व उसके परिवार का पीछा किये जाने पर ब्राह्मण राक्षस से अपने परिवार की रक्षा चाहता है। अतः राक्षस कहता है कि यदि तुम अपने दो पुत्रों व पत्नी सहित प्राणों को बचाना चाहते हो तो एक पुत्र मुझे दे दो। इस पर ब्राह्मण कहता है कि मैंने यह निश्चयं किया है कि–

कृतकृत्यं शरीरं में परिणामेन जर्जरम्।
राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी होष्यामि विधिसंस्कृतम्।।[2]

पुत्र के प्राणों की रक्षा करना पिता का धर्म है। इसका बहुत सुन्दर वर्णन पंचरात्र नाटक में कविवर भास ने प्रस्तुत किया है। जो जन्म-जन्मान्तर सम्बन्धों से पिता होते हैं उनका पुत्र के प्रति तो कर्तव्य होता ही है, लेकिन जो कुल के अनुसार धर्मपिता होते हैं उनका पुत्र के प्रति कर्तव्य होना चाहिए वही इस नाटक में प्रदर्शित किया गया है। पाण्डव पुत्र अभिमन्यु के राजा विराट के युद्ध में अपहरण कर लिये जाने का समाचार सुनकर दुर्योधन उसे छुड़ाने के लिए तत्पर हो जाते हैं तथा कहते हैं कि प्रथम वह मेरा पुत्र है, बाद में पाण्डवों का–

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेद-
स्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीयः।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात्
सति च कुल विरोधे नापबाध्यन्ति बालाः।।[3]

---

1. उ॰रा॰चरि॰ 4/25 :
शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्रभाण्डं हि मे।
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रेणश्च पोरो जनः।।
2. मध्य॰का ॰ 1/15
3. पंच ॰ 3/4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता का कर्तव्य पुत्र द्वारा किसी श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न करने पर आशीर्वाद देना है। ब्राह्मण केशवदास का मध्यम पुत्र पिता व परिवार के प्राणों की रक्षा हेतु राक्षस के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने का निश्चय करता है। अतः पुत्र के इस त्यागमय विचारों पर प्रसन्न होकर पिता आशीर्वाद देता है–

विनिमाय गुरुप्राणान् स्वैः प्राणैर्गुरुवत्सल।
अकृतान्मदुरावायं ब्रह्मलोकमवाप्नुहि॥[1]

राज़कुमार अविमारक अपने विवाहोपरान्त अपने श्वसुर व मामा कुन्तिभोज को प्रणाम करते हैं तथा राजा कुन्तिभोज अपने पितृ कर्तव्य का पालन करते हुए उन्हें आशीर्वाद देते हैं–

क्षमया जय विपेन्द्रान् दयया जयसंत्रितान्।
तत्त्वबुद्धया जयात्मानं तेजसा जयपार्थिवान्॥[2]

पिता अपने पुत्र को वरवेष में देखकर अत्यधिक प्रसन्नता को प्राप्त करते हुए अपने हृदय को उद्‌गारों को आशीर्वाद रूप में प्रकट करता है। कुमार अविमारक विवाह के पश्चात् पिता सौवीरराज को प्रणाम करते हैं, तथा पिता आशीर्वाद देते हैं।

विरचित वरवेषदर्शनीयो गुरुजनवन्दनमित्रशुभवक्त्रः।
वयमिव भव हर्षवाष्पनेत्रं स्त्वमिह भवत्तनयं समीक्षमाणाः॥[3]

पिता का धर्म पुत्र या पुत्रियों को अपने मित्र या गुरुजनों के उपस्थित होने पर उनका परिचय देते हुए प्रणाम व आदर सत्कार करना सिखाना है। राजा जनक के भाई कुशध्वज विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ के निमित्त सीता व उर्मिला के साथ उपस्थित होने जाते हैं तथा पितृ समान कर्तव्य का पालन करते हुए दोनों कन्याओं से गुरु विश्वामित्र को प्रणाम करने को कहते हैं–

"आयुष्मत्यौ सीतोर्मिले! अद्य भगवान् विश्वामित्रः
कौशिकः श्रद्धानेन चेतसा वत्साभ्यां प्रणन्तव्यः॥"[4]

---

1. मध्य ०का ० 1/21
2. अवि ० 6/17
3. वही 6/18
4. महा ०चरि ० 1/पृ ० 9

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कालिदास ने राजा पुरूरवा के माध्य म से यही कर्तव्य वर्णित किया है। तापसी द्वारा पुत्र लाने पर राजा उसे आलिंगनबद्ध करने के बाद मित्र विदूषक का परिचय देते हुए प्रणाम करने को कहते हैं।

"वत्स! प्रियसखं ब्राह्मणशङ्कितो वन्दस्व।"[1]

पिता का कर्तव्य व प्रेम पुत्र को आलिंगनबद्ध कर आनन्दित होना है। राजा पुरूरवा पुत्र को देखकर गले लगाते हुए कहते हैं–

सर्वाङ्गीणः स्पर्शः सुतस्य किल तेन मामुपनतेन।
आह्वादयस्व तावत् चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव।।[2]

आश्रम व्यवस्था के अनुसार पिता को पुत्र के वयस्क हो जाने पर राज्यभाव सौंपकर वनों की ओर जाना चाहिए। यही भाव राजा पुरूरवा के माध्यम से दृष्टिगत होते हैं। उर्वशी के लौटने पर दुखी राजा उसे आश्वासित करते हुए अपने कर्तव्य का स्मरण कराते हैं।

नहि सुलभवियोगा कर्तुमात्मप्रियाणि
प्रभवति पश्वत्ता शासने तिष्ठ भर्तुः।
अहमपि तव सूनावद्य विन्यस्य राज्यं
विचरितमृगयूथान्याश्रयिष्ये वनानि।।[3]

मनु ने भी गृहस्थी के लिए यही कर्तव्य निश्चित किया है।[4] राजा सौवीरराज मित्र भूतिक के उपस्थित होने पर अपने पुत्र वियोग से भावविह्वल होकर कहते हैं कि पुत्र प्रेम बड़ा होता है व प्रत्येक पिता की इच्छा होती है कि उसका पुत्र उसके मित्रों व गुरुजनों का आदर करे, क्योंकि पिता के लिए इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी।[5] पुत्र के योग्य व वयस्क

---

1. विक्रमो ॰ 5/पृ ॰ 210
2. वही 5/11
3. विक्रमो ॰ 5/17
4. मनुस्मृति॰ 6/1,2 : एवं गृहाश्रमेस्थित्वा विधिवत्स्नातकोद्विजः।
   वने वसेतु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः।।
5. अवि॰ 6/4 : अनुपमबलवीर्यरूपवन्तं सुतविमारकमचिन्तयामि।
   तवचरण रजोन्वितागवेशो, यदि स भवेदिह को न मुद्रिविष्ट।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर पिता पुत्र का राज्याभिषेक कर अपने धर्म का पालन करता है। राजा पुरूरवा पुत्र "आयु" के वयस्क होने पर मन्त्रियों को राज्याभिषेक की तैयारी करने की आज्ञा देते हैं।[1]

भ्राता का कर्तव्य

वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत पिता के पश्चात् भ्राता का कर्तव्य आता है क्योंकि पिता के मरणोपरान्त परिवार का कर्ता ज्येष्ठ पुत्र होता है, अतः सम्पूर्ण परिवार के पालन-पोषण का भार ज्येष्ठ भ्राता पर आ जाता है। वेदों के अनुसार छोटे भाइयों व माता की रक्षा व पालन भ्राता का कर्तव्य हो जाता है इसलिए उसे छोटे भाईयों के साथ पिता के समान पुत्रवत् व्यवहार करना चाहिए। यथा–

पितेव पालयेत् पुत्रान्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः।
पुत्रवच्चापि वर्तेरन्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः।।[2]

श्रेष्ठ व्यवहार करने वाला बड़ा भाई माता-पिता के समान श्रद्धासम्पन्न होता है–

योज्येष्ठोज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात् सपूज्यस्तु बन्धुवत्।।[3]

अतः ज्येष्ठ भ्राता का धन में भी अधिक भाग होता है–

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्धरम्।
ततोऽर्थ मध्यस्त स्यात्तुरीय तु यवीयसः।।[4]

भाइयों के समान उनकी स्त्रियां भी आदर की अधिकारी हैं। छोटे भाई की स्त्री के प्रति बड़े भाई का व बड़े भाई की स्त्री के प्रति छोटे भाई का क्या कर्तव्य होना चाहिए यह मनु ने इस प्रकार वर्णित किया है–

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा।
यवीयसस्तुया भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता।।[5]

---

1. विक्रमो० 5/पृ० 221 : "मद्‌वचनात् अमात्यपर्वतं ब्रूहि, संश्रियतामायुष्मतो राज्यभिषेकः।"
2. मनुस्मृ 9/108
3. वही 9/110
4. वही 9/112
5. मनुस्मृति० 9/57

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि बड़े भाई की असमय व सन्तानरहित मृत्यु हो जाती है, तो छोटे भाइयों का कर्तव्य उसके धन व स्त्री की रक्षा करना है–

धनं यो विभृयादभ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च।
सो पत्यं भ्रतुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम्।।[1]

बड़ा भाई कुल की वृद्धि भी कर सकता है व नष्ट भी कर सकता है। इसलिए कुल व लोक में श्रेष्ठ व पूजनीय है–

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः।।[2]

इसी प्रकार भास ने मध्यमव्यायोग नाटक में ज्येष्ठ भाई को पूजनीय व श्रेष्ठ वर्णित किया है। राक्षस घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण का वध करने के लिए उद्यत होते देखकर ब्राह्मण का बड़ा पुत्र अपने प्राणों को देने की इच्छा प्रकट करता है। बड़े भाई को प्राण देने में तत्पर देखकर ब्राह्मण का द्वितीय पुत्र अपने भ्रातृ कर्तव्य को प्रदर्शित करता है–

ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले लोके पितृणां च सुसंप्रियः।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरुवृत्तिमनुस्मरन्।।[3]

आगे ज्येष्ठ भाई को पिता के समान श्रद्धास्पद मानते हुए तृतीय भाई अपने प्राणों का बलिदान कर पिता समान दोनों बड़े भाईयों की रक्षा करना चाहता है।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः कथितो ब्रह्मवादिभिः।
ततोऽहं कर्त्तुमस्म्यहो गुरुणां प्राणरक्षणम्।।[4]

मनु ने भी बड़े भाई को पिता के समान श्रद्धास्पद बताया है। बड़े भाई का कर्तव्य छोटे भाइयों को क्रोध करने पर उचित व अनुचित का बोध कराना है। लक्ष्मण द्वारा राम के लिए चौदह वर्षों का बनवास व भरत के लिए राजगद्दी ये दोनों वरदान माता कैकेयी द्वारा मांगे गये हैं, यह बात होने पर तथा पिता को दीन मूर्च्छित अवस्था में देखकर क्रोधावेश में धनुष उठाकर पृथ्वी को स्त्री शून्य करने के लिए संकल्प करते हुए देखकर,

1. मनुस्मृति॰ 9/146
2. वही 9/109
3. मध्य॰ व्या॰ 1/17
4. वही 1/18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भ्रातृ-कर्तव्य का पालन करते हुए, उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि पिता माता व भाई सब ही तुम्हारे अपने हैं क्या इनका वध तुम्हारे रोष की समाप्ति करने में सक्षम है।[1] राम छोटे भाई लक्ष्मण को उनके कर्तव्य का स्मरण कराते हुए कहते हैं कि राज्य चाहे किसी भी भाई को मिले तुम्हारा कर्तव्य भाई के समान दूसरे भाई की रक्षा करना है न कि क्रोध करना क्योंकि–

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम्।
यदि तेऽस्ति धनुः श्लाघा स राजा परिपाल्यताम्।।[२]

वैदिक-संस्कृति के अनुकरणक भास के नाटक सामाजिक कर्तव्यों से ओत प्रोत हैं। प्रतिमा नाटक में तो भाइयों के प्रेम, त्याग व सेवा का आदर्श रूप परिलक्षित होता है तथा प्रत्येक पात्र अपने कर्तव्यों की मर्यादा से बंधा हुआ दृष्टिगत होता है। बड़े भाई के वनगमन का समाचार सुनकर छोटे भाई लक्ष्मण भी समस्त सुख व ऐश्वर्य का त्याग कर उनकी सेवा हेतु साथ जाना चाहते हैं तथा राम की आज्ञा से सीता द्वारा उन्हें अपने साथ ले जाने से रोकने पर वह कहते हैं–

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेको कर्तुमिच्छसि।
तवेव दक्षिणः पादो मम सेवयो भविष्यति।।[३]

छोटे भाई का कर्तव्य बड़े भाई की आज्ञा पालन है। यही बात अभिषेक नाटक में मिलती है। राम द्वारा सीता को वन में छोड़ आने की आज्ञा मिलने पर एक ओर तो लक्ष्मण माता-समान भाभी सीता की पवित्रता पर विचार करते हैं तो दूसरी ओर बड़े भाई की आज्ञा पालन अपना धर्म मानते हुए सोचते हैं--

विज्ञाय देव्याः शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम्।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम।।[४]

---

1. प्रति० ना० 1/22 : ताते धनुर्न मयि सत्यवेक्षमाणे,
मुन्वानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि,
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु।।
2. वही 1/20
3. वही 1/27
4. अभि०ना० 6/23

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास ने प्रतिमा नाटक द्वारा वैदिक संस्कृति को प्रत्येक जनमानस तक पहुंचाने की सफल चेष्टा की है। भ्रातृत्व का जितना आदर्श हमें इस नाटक में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं मिलता। उनके भरत भ्रातृ-प्रेम के आधार हैं वे अपने प्रिय भाईयों–राम व लक्ष्मण के पास वन जाना चाहते हैं क्योंकि उनकी अयोध्या तो वहीं हैं जहां उनके भाई हैं–

तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः।
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः॥[1]

भरत वन में जाकर राम से अभिषेक कराने की प्रार्थना करते हैं तथा मां के अपराध की वजह से स्वयं को दोषी मानने के लिए क्षमा मांगते हैं। तथा बड़े भाई के नाते छोटे भाई को क्षमा करना ही उनका कर्तव्य प्रदर्शित करते हैं।[2] राम द्वारा पिता की आज्ञा से वन में ही रहने व भरत को राज्यभार ग्रहण करने को कहने पर भरत बड़े भाई को राज्यभार सौंपने का कर्तव्य पालन करते हुए कहते हैं कि जब तक आप अपनी कार्यसिद्धि कर नहीं लौटते, तब तक मैं आपका प्रतिनिधि बन आपके राज्य रूपी धरोहर को संभालूंगा अतः

पादोपभुक्ते तव पादुके म एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना।
यावद्भवानेष्यति कार्यसिद्धिंतावद्भविष्याम्यतयोर्विधयः॥[3]

बड़े भाईयों का कर्तव्य छोटे भाई से बहुत समय पश्चात् मिलने पर प्रेम-प्रदर्शन कर आलिंगन करना व उसके प्रणाम करने पर आशीर्वाद देना है। यही भाव भरत के राम लक्ष्मण से वन में जाकर मिलने पर प्रदर्शित होता है। राम भरत का आलिंगन करते हैं व लक्ष्मण बड़े भाई होने से भरत के अभिवादन के उत्तर में उन्हें रघुवंश के अनुरूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर यशस्वी व दीप्यमान गुणों का भाजन बनने का आशीर्वाद देते हैं।[4] तथा राम

---

1. प्रति०ना० 3/24
2. पति०ना० 4/20 : अपि सगुण! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः।
   स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च॥
   सुपुरुष! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो।
   वरद! भरतमातं पश्य तावद्यथावत्॥
3. वही 4/25
4. वही 4/10 : असुरसमरदक्षैवज्रसंघष्टचापेरनुपमबलवीर्यः स्वः कुलैस्तुल्यवीर्यः।
   रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशोभवजगति गुणानां भजनं भ्राजितानाम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरंजीवी होने का आशीर्वाद देते हुए आलिंगन द्वारा शोक की ज्वाला में दग्ध हृदय को शीतल करने के लिए कहते हैं।[1] इसी प्रकार राम के रावण पर विजय प्राप्त करने व सीता सहित लंका से वनों में लौटने पर भरत गुरुजनों व माताओं सहित उनका अभिनन्दन करने जाते हैं, तब राम भरत को भुजायें फैलाकर आलिंगन करते हुए आशीर्वाद देते हैं–

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपलेन भुजद्वयेन।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम्॥[2]

महाकवि भवभूति ने भाई का सुन्दर आदर्श रूप रघुवंशी राम के माध्यम से हमारे समक्ष प्रदर्शित करने की अभूतपूर्व चेष्टा की है। भगवान् राम विश्वामित्र द्वारा दिये गये दिव्यास्त्रों को भी अकेले न ग्रहण कर लक्ष्मण के साथ ग्रहण करने की बात कहकर भ्रातृ-कर्तव्य का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करते हैं–

एष प्रह्वोऽस्मि भगवन्नैषा विज्ञापना च नः।
दिव्यास्त्रसंप्रदायोऽयं लक्ष्मणेन सहास्तु मे॥[3]

भाई का बहन के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए भवभूति जी ने रावण के माध्यम से प्रदर्शित किया है। कोई भी भाई बहन का अपमान एवं भाईयों का वध सहन नहीं कर सकता यह कथन जटायु व सम्पाति के वार्तालाप द्वारा प्रदर्शित किया गया है। राम के खर-दूषण का वध करने व शूर्पणखा की लक्ष्मण द्वारा नाक काटे जाने पर सम्पाति रावण की शत्रुता से चिन्तित होकर जटायु को उनके हर पल साथ रहने के प्रति संकेत करते हुए कहता है–

स्वसुः सोदर्यायाः कथमिव निकारं दशमुख-
स्तथा भूयोभूयः स्वजनविनिपातं च सहते।
मदान्धो मायावी प्रभुरमितवीर्योऽन्तिकचरः
सपत्नः कष्टं नो निपुणमनुपाल्या हि शिशवः॥[4]

---

1. प्रति॰ना॰ 4/16
2. प्रति॰ना॰ 7/7
3. महा॰चरि॰ 1/47
4. वही 5/14

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र का कर्तव्य

वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत माता-पिता पुत्रोत्पादन कर पितृ ऋण से मुक्त होते हैं तथा पुत्र जीवनपर्यन्त उनकी सेवा सुश्रुषा कर, माता-पिता द्वारा सन्तानोपादन में सहन करने वाले कष्ट से निस्तारण होने का प्रयत्न करता है। यद्यपि यह सम्भव नहीं क्योंकि मनु के अनुसार–

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्ष शतैरपि।।[१]

वैदिक समाज के अनुसार पुत्र मनुष्य की मोक्ष प्राप्ति का आधार है। नरक से उद्धार कर स्वर्ग प्राप्ति का आधार पुत्र ही है। उसके जन्म के साथ ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर लेता है व प्रप्रौत्र के जन्म से सूर्यलोक।[2] इसी आधार पर ब्रह्मा ने अपने से उत्पन्न को पुत्र कहा है–

पूं नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्राक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा।।[३]

वेद में पुत्र के पिता के अनुकूल सत्यव्रती व माता के साथ एक मन वाला होने को कहा है–

"अनुव्रतः पितुः पुत्रौ, मात्रा भवतु संमनाः।"[४]

पुत्र के लिए सब धर्म, कर्म, जप व तप माता-पिता व आचार्य की सेवा ही है।

तेषां त्रयाणां शुश्रुषा परमं तप उच्यते।
न तेरभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्।।[५]

मनु ने माता-पिता व आचार्य इन तीनों को तीन आश्रम, तीन वेद व तीन अग्नि माना है, यथा–

---

1. मनुस्मृति॰ 2/227
2. वही 9/137 : पुत्रेण लोकान्जयति पौत्रेणान् त्यमश्नुते।
   अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रह्मस्याप्नोतिविष्टपम्।।
3. वही 9/138
4. अथर्ववेद - 3.30.3
5. मनुस्मृति॰ 2/229

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता ने गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः।

गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी।।[१]

पुत्र माता की भक्ति से इहलोक, पिता की भक्ति से मध्यम लोक, तथा गुरु शुश्रूषा से ब्रह्मलोक का भोग करता है।

त्रिष्वप्रमाद्यन्नैतेषु त्रींल्लोकान्विजयेद्गृही।

दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते।।[२]

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।

गुरुशुश्रुषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते।।[३]

इसी प्रकार भास ने मातृभक्ति को पितृभक्ति से भी उच्च प्रदर्शित किया है। राक्षस घटोत्कच माता की आज्ञा पालन को विशिष्ट मानता है, तथा माता की आज्ञा पालन रूपी कर्तव्य में पिता के आदेश का भी उल्लंघन करने में संकोच नहीं करता है। माता की आज्ञा से हिडिम्बा राक्षसी का पुत्र घटोत्कच अपनी माता के आहार के निमित्त ब्राह्मण परिवार के मध्यम पुत्र को ले जाने लगता है तथा भीम द्वारा छोड़ने के लिए कहने पर कहता है, कि–

मुच्यतामिति विस्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता।

न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया।।[४]

इसी प्रकार ब्राह्मण केशवदास द्वारा प्राणों की रक्षा हेतु प्रार्थना करने पर वह अपने को माता के आदेश से बंधा हुआ प्रदर्शित करते हुए कहता है कि

"अस्ति मे तत्र भवती जननी। तयाऽहमाज्ञप्तः। पुत्र! ममोपवासनिसर्गार्थमस्मिन्वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः प्रतिगृह्यानेतव्य इति। ततो सादितो भवान्।।"[५]

मध्यम व्यायोग में भास ने पुत्र के कर्तव्य के अनेक रूप वर्णित किए हैं। एक ओर तो पुत्र माता की आज्ञा से प्राण लेना चाहता है, दूसरी ओर

---

1. मनुस्मृति॰ 2/230
2. वही 2/231
3. वही 2/232, 233 :
   कोरियावासी यह मानते हैं कि पितृभक्त बालक को पृथ्वी पर उच्चतम सम्मान मिलता है और परलोक में भास्वरतम स्वर्ग प्राप्त होता है (ग्रिफिथ-कोरिया पृ॰ 236)
4. मध्य॰व्या॰ 1/36
5. वही 1/पृ॰12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण पुत्र अपने पिता-माता व परिवार की रक्षा अपने प्राण देकर करना चाहता है। ब्राह्मण केशवदास का वध की इच्छा से राक्षस द्वारा पीछा किये जाने पर व माता-पिता को प्राण त्यागने में तत्पर जानकर अपने पुत्र कर्तव्य का पालन करने की पिता से आज्ञा मांगता है।

मम प्राणैर्गुरु प्राणानिच्छामि परिरक्षितुम्।
रक्षणार्थं कुलस्यास्य भोक्तुमर्हति मां भवान्।।[१]

आगे वह आपत्ति में पड़े पिता की रक्षा करना ज्येष्ठ पुत्र का कर्तव्य प्रदर्शित करता है।

आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठ पुत्रेण नार्यते।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरुणां प्राणरक्षणात्।।[२]

इसी प्रकार माता-पिता व बड़े भाई की रक्षा करना द्वितीय पुत्र का कर्तव्य प्रदर्शित किया गया है। राक्षस द्वारा ब्राह्मण के वध की इच्छा करने पर क्रमशः ज्येष्ठ पुत्र व अन्य दोनों पुत्र अपने प्राण देना चाहते हैं, लेकिन बड़ा पुत्र पिता को प्रिय है व छोटा पुत्र माता को प्रिय है, इसलिए मध्यम पुत्र अपने प्राणों को देने के लिए तत्पर होता है। व माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य को प्रदर्शित करता है-

धन्योऽस्मि यद् गुरु प्राणाः स्वैःप्राणपरिरक्षिताः।
बन्धुस्नेहादिभः महतः कार्यस्नेहस्तु दुर्लभः।।[३]

पुत्र की मृत्यु से दुखी पिता को सान्त्वना देना पुत्र का कर्तव्य है। राजा दुर्योधन भीम के गदाप्रहार से घायलावस्था में मरणासन्न रणभूमि में पड़े हैं, उनकी यह अवस्था देखकर पिता धृतराष्ट्र अत्यन्त शोकाकुल हैं। अतः पुत्र दुर्योधन पिता को समझाते हैं कि मैं शूरवीर पुत्र की भांति युद्ध में बहादुरी से सबके सामने मारा गया हूं अतः आपका शोक करना व्यर्थ है, क्योंकि-

त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमांलिर्ज्वलन्तमप्यग्निमचिन्तयित्वा।
यैनेव मानेन समं प्रसूतस्तेनैव मानेव दिवं प्रयामि।।[४]

---

1. मध्य० व्या० 1/16
2. वही 1/19
3. वही 1/20
4. उरु० 1/47

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री भास ने अपने नाटकों में एक ओर तो अपनी मृत्यु से शोक संतप्त पिता को पुत्र द्वारा सान्त्वना देते हुए प्रदर्शित किया है तो अन्य स्थान पर पिता को मूर्च्छितावस्था में देखकर तथा उन्हें इस दयनीय स्थिति में पहुंचाने वाले, चाहे वह उनकी माता ही क्यों न हो, का वध करने का निश्चय करते हैं। महाकवि भास ने मध्यमव्यायोग में पुत्र को माता की आज्ञा के लिए पिता के आदेश का भी अतिक्रमण करते हुए वर्णित किया है तथा प्रतिमा नाटक में लक्ष्मण के माध्यम से पुत्र को पिता के लिए क्रोधवश माता का वध करने को तत्पर दिखाया है। लक्ष्मण माता कैकेयी द्वारा भाई को वन भेजने का वरदान मांगने से दयनीय स्थिति में पहुंचे पिता को देखकर राम से कहते हैं–

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पर्श मा दया
स्वजननि भृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते।
अय न रुचितं मुग्ध त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलितां वयम्॥[१]

अन्यत्र भास ने पुत्र के आदर्शत्व को प्रदर्शित किया है कि यदि माता लोभवश कोई अनुचित कार्य करती है तो पुत्र का कर्तव्य माता का अनुसरण न कर वरन् उन्हें इस कार्य के प्रति सचेत करना है। प्रतिमा नाटक में भरत का यही आदर्श प्रदर्शित किया गया है। भरत अपनी माता कैकेयी द्वारा किये गये क्रूर अपराधों से त्रसित हैं व अपनी माता को उनके अनुचित व्यवहारों व लोभी स्वभाव का स्मरण कराते हैं।[2]

भास के नाटकों में पुत्र कर्तव्य अनेक रूपों में दृष्टिगत होता है। भरत प्रथम तो माता से क्रुद्ध होने पर बुरा भला कहते हैं तत्पश्चात् माता के निर्दोष सिद्ध होने पर उनसे क्षमा मांगते हैं।

"हन्त त्रलोक्यसाक्षिणः खल्वेते। दिष्टयानपराद्धात्र भवती। अम्ब! यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तत् सर्व मर्षयितव्यम्। अम्ब! अभिवादये।"[३]

---

1. प्रति॰ना॰ 1/18
2. प्रति॰ना॰ 3/21, 22 : अयशिथदिलोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्,
   किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात्।
   अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
   वदतु भवति! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः?
3. वही 6/पृ॰ 195

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र का मां के प्रति अत्यन्त स्नेह होता है, वह चाहता है कि प्रत्येक जन्म में मुझे ममतामयी मां मिले। दुर्योधन मरणावस्था में युद्ध भूमि में पड़े हैं। यह समाचार विदित होने पर गान्धारी वहीं पहुंचती हैं। इस अवस्था में भी दुर्योधन पुत्र कर्तव्य का पालन करते हुए माता को प्रणाम करते हैं व आशीर्वाद मांगते हैं–

नमस्कृत्य वदामि त्वां यदि पुण्यं मया कृतम्।
अन्यस्यामपि जात्यां मे त्वमेव जननी भव।।[1]

महान कवि भास के नाटक समाज के लिए एक आदर्श हैं। राजा उदयन वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा द्वारा महारानी अंगारवती का सन्देश लेकर जाने पर उनसे माता के विषय में सम्मानपूर्वक कुशल पूछकर पुत्र कर्तव्य का पालन करते हैं–

षोडशान्तः पुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता।
मम प्रवासदुःखार्ता मार्ता कुशलिनी ननु?।।[2]

भवभूति ने राम के माध्यम से पुत्र के कर्तव्य का आदर्श रूप प्रदर्शित किया है। राम माता कैकेयी द्वारा मांगे गये वरदानों के मांगने की इच्छा पूरी करने के लिए पिता से प्रार्थना करते हैं–

योऽसो वरद्वयन्यासस्तं मेऽद्य मध्यमा।
यथेष्टं नाथ ते तात तत्प्रसादार्थिनो वयम्।।[3]

पुत्र का परम कर्तव्य पिता के मरणोपरान्त श्राद्ध करना है, क्योंकि शास्त्रों में इसीलिए पुत्र की उत्पत्ति प्रदर्शित की गई है। पिता को अक्षय सुख की प्राप्ति कराने के लिए पुत्र द्वारा पितर कर्म करना ही पितृयज्ञ है जो देवकर्म से भी श्रेष्ठ प्रदर्शित किया गया है।[4] राम वन में पिता का श्राद्ध करना चाहते हैं तथा वहां राजवैभव न होते हुए वन-सामग्री से श्राद्ध करते हुए दुःखित होते हैं। वे मरने के पश्चात् भी पिता को दुःख नहीं पहुंचाना चाहते थे। वे सीता से कहते हैं–

---

1. उरु० 1/50
2. स्वप्नवा० 6/9
3. महा०चरि० 4/47
4. मनुस्मृति० 3/202

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषुस्वहस्तरचितानि नः।

स्मरितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति॥[1]

पत्नी का कर्तव्य

वेदों में नारी का स्थान पूजनीय रहा है तथापि उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं स्वीकार किया गया क्योंकि विवाह से पूर्व वह माता-पिता व विवाह के पश्चात् पति तथा पुत्र द्वारा शासित रही है। अतः उसके लिए सब धर्म पति की सेवा में निहित हैं। क्योंकि स्त्री के सब आश्रम गृहस्थाश्रम में ही पूर्णता पाते हैं।

यथा– वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।

पतिसेवा गुरो वासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया॥[2]

वेद में पत्नी के लिए निर्देश है कि पत्नी मधुर भाषी, शान्ति देने वाली वाणी बोले–

"जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शांतिवाम्।"[3]

पिता द्वारा पाणिग्रहण के पश्चात् जिस व्यक्ति को वह प्रदान की जाती है उसी व्यक्ति के साथ उसके सब जन्म-मरणादि बन्धन बंध जाते हैं एवं उसकी सेवा पत्नी का परम तप हो जाता है। मनु ने भी पत्नी के लिए इसी धर्म का निर्देश दिया है, यथा–

यस्मै दद्यात्पता स्वेनां भ्राता वानुमते पितुः।

न जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥[4]

पत्नी के लिए पतिव्रत से भिन्न कोई यज्ञ या व्रत नहीं है। क्योंकि पति सेवा ही उसके स्वर्ग प्राप्ति का आधार है।[5]

---

1. प्रति॰ना॰ 5/6
2. मनुस्मृति॰ 2/67
3. अथर्ववेद-3.30.3
4. मनुस्मृति॰ 2/151
5. वही 5/155 : नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के अनुसार स्त्रियों का सबसे बड़ा व्रत तप, धर्म और देवपूजन पतिसेवा है।[1] भागवत पुराण ने भी इसी कथन का अनुमोदन करते हुए स्त्रियों का परम तप धर्म पति-शुश्रुषा व्यक्त किया है।[2] मनु ने तो यहां तक कहा है कि पति दु:शील, स्वच्छन्दगामी या गुण शून्य भी हो, तब भी साध्वीपत्नी का कर्तव्य पति सेवा ही है। उनके लिए कोई पृथक् यज्ञ-पूजन नहीं है।[3] पत्नी का कर्तव्य मन, वचन और देह से पति के विपरीत आचरण न करना है। यही साधन उसे स्वर्ग गमन कराने वाले हैं।

पति या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तुलोकानाप्नोतिसद्भि:साध्वोतिचोच्यते।।[४]

पति के जीविका की व्यवस्था करने के लिए विदेश जाने पर पत्नी को नियमपूर्वक रहना चाहिए व उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।[5]

वैदिक समाज में पत्नी का कर्तव्य पति के साथ सती होना था क्योंकि वेदों के अनुसार पत्नी का जन्म व मरण पति के साथ ही है। वेदों का अनुगमन कर ही भास ने उरुभंग नाटक में दुर्योधन की पत्नी पौरवी के माध्यम से सती प्रथा का वर्णन किया है। राजा दुर्योधन के रणभूमि में मरणावस्था में होने पर व पत्नी को सान्त्वना देने पर उनकी पत्नी पौरवी पति-व्रत का पालन करते हुए सती होने का दृढ़ निश्चय कर कहती है-

"एककृतप्रवेशनिश्चया न रोदिमि"[६]

इसी प्रकार ब्राह्मण पत्नी अपने परिवार व पति की रक्षा अपने प्राण देकर करना चाहती है। ब्राह्मण व उसके परिवार पर राक्षसी पुत्र घटोत्कच किसी एक को अपनी माता हिडिम्बा के भोजन हेतु ले जाना चाहता है।

पाति:शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।।

1. ब्रह्म॰पृ॰कु॰खं॰उ॰57/18 : पति सेवाव्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तप:।
2. मि॰महा॰ 5/34/75
3. मनुस्मृति॰ 5/154 : विशील: कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जित:।
   उपचर्य: स्त्रिया साध्वा सततं देववत्पति:।।
4. मनुस्मृति॰ 9/29
5. वही 9/75,76
6. उरु॰ 1/पृ॰ 46

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए ब्राह्मण अपने प्राण त्यागना चाहता है लेकिन ब्राह्मण पत्नी अपने पतिव्रत धर्म की दुहाई देकर कहती है–

"आर्य मा मैवम्। पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रतेति नाम।
गृहीतफलेनेतेन शरीरेणार्यं कुलं च रक्षितुमिच्छामि।।"[1]

पत्नी का कर्तव्य दुख व सुख दोनों में पति का अनुसरण करना है। यह भाव महाकवि प्रकृति-प्रेमी भास ने प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है। राम के वनवास गमन के समय सीता भी उनके साथ जाना चाहती हैं। उनके कष्टों का स्मरण करते हुए राम लक्ष्मण से उन्हें रोकने के लिए कहते हैं, परन्तु लगभग एक साध्वी पत्नी का कर्तव्य स्मरण कराते हुए कहते हैं कि इस प्रशंसनीय अवसर पर आर्या को रोकने का साहस नहीं हो रहा है, क्योंकि–

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा,
पतति वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कं लग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मे भर्तुनाथा हि नार्यः।।[2]

महाकवि कालिदास ने पत्नी का कर्तव्य पतिगृह में ही रहते हुए, विस्मृत हो जाने पर भीदासी रूप में रहना, ऋषिकुमारों के माध्यम से अव्यक्त किया है। दुष्यन्त शापवश शकुन्तला को पहचानने से इन्कार करते हैं तो ऋषि कुमार पत्नी के कर्तव्य का स्मरण कराते हुए शकुन्तला को वहीं छोड़ देते हैं एवं कहते हैं–

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा
त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः
पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।।[3]

मनु ने तो यहां तक कहा है कि पत्नी बेचे जाने पर भी उस पति के पत्नीत्व से नहीं छूटती।[4]

---

1. मध्य॰का॰ 1/पृ॰ 14
2. प्रति॰ना॰ 1/25
3. अभि॰शा॰ 5/25
4. मनुस्मृति॰ 9/46

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी का कर्तव्य पति के लिए विजयश्री की मंगलकामना करना है। रावण की लंका में सीता जब हनुमान द्वारा राम के लंका पर आक्रमण की बात सुनती है तो मन ही मन राम की विजय की प्रार्थना करती है।

"ईश्वरः! आत्मानः कुलसदृशेन चारित्रेण यद्यहमनुसराम्यार्यपुत्रम्, आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु॥"[१]

दूसरी ओर सीता रावण द्वारा पति की मृत्यु का झूठा समाचार विदित होने पर उद्विग्न हो जाती है तथा रावण से प्रार्थना करती है कि जिस तलवार से तुमने मेरे पति को मारा उसी से मेरा वध कर दो, क्योंकि पति के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।[2] पत्नी के कर्तव्य का अद्‌भुत रूप सीता के अग्नि-परीक्षा देने के माध्यम से प्रदर्शित होता है। सीता राम के द्वारा स्वयं को दूषित मानना जानकर अपने सतीत्व की परीक्षा हेतु अग्नि-परीक्षा देने को तैयार हो जाती है लेकिन एक आदर्श पत्नी के नाते प्रत्येक कार्य से पूर्व पति की आज्ञा लेना अपना धर्म मानकर लक्ष्मण से आज्ञा लाने का निवेदन करती है–

"लक्ष्मण! जयत्वार्य। आर्यस्याभिप्रायं श्रुत्वेवाग्निप्रवेशाय प्रसादं प्रतिपालयत्यार्या।"[३]

पत्नी का कर्तव्य पति की ओर से चिन्तित होना है। यद्यपि सीता जानती हैं कि राम परमवीर, पराक्रमी व सर्वसमर्थ हैं फिर भी क्रोधित परशुराम के समीप जाने से रोकती हैं तथा अपने कर्तव्य का पालन करते हुए समझती है कि–

"सर्वक्षत्रियसन्तापकारी परशुराम इति।"[४]

पति द्वारा दुःख दिये जाने पर भी पत्नी अपने पति के प्रति क्रोधित नहीं होती तथा उसके प्रत्येक अपराध को क्षमा कर देती है। सीता वैदिक युग की एक आदर्श व सती नारी हैं। वे राम द्वारा एक पत्नीव्रत पालन का प्रमाण, अश्वमेध यज्ञ के लिए स्वर्णमयी सीता बनाना ज्ञात होने पर अपने पति को

---

1. अभि०ना० 5/पृ० 93
2. वही 5/पृ० 85 : हा आर्यपुत्र!.......मारय।
3. अभि०ना० 6/पृ० 105
4. महा०चरि० 2/पृ० 79

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं के परित्यागजन्य अपराध से मुक्त कर उन्हें एक सच्चे एकपत्नीव्रत मानती हैं।[1] अपने पत्नीव्रत कर्तव्य का पालन करते हुए अदृश्य होते हुए भी उन्हें नमस्कार करती हैं।[2] इसी प्रकार शकुन्तला को शाप की समाप्ति पर दुष्यन्त द्वारा पहचान लिये जाने से, वह उनसे क्षमा मांगते हैं तो शकुन्तला इस पर भी उनके द्वारा भूल जाने का कारण स्वयं को किसी पूर्वजन्म का फल ही मानती है तथा कहती है–

"उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीद्येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः।"[३]

पति का कर्तव्य

वेदों में प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक्-पृथक् कर्तव्यों का निर्देश दिया गया है। वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत जिस प्रकार पत्नी का कर्तव्य पति सेवा है उसी प्रकार पति का कर्तव्य प्रत्येक परिस्थिति में पत्नी की रक्षा करना व पालन करना है, यह निश्चित किया गया है। पति व पत्नी का सम्बन्ध मानव स्थापित नहीं होता वरन् पूर्व-निश्चित होता है। ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के साथ-साथ दाम्पत्य संबंधों को भी निश्चित कर दियां होता है। इसलिए स्त्रियों की रक्षा व सम्मान कर्तव्यों के वशीभूत होकर ही नहीं वरन् देवताओं की प्रसन्नता के लिए भी आवश्यक है। मनु के अनुसार–

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः।
तां साध्वीं विभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन्॥[४]

हिन्दू परिवार में पति का यह कर्तव्य है कि वह पत्नी की सब प्रकार की आपत्तियों से रक्षा करे। मनु ने तो स्त्री रक्षा को धन रक्षा से भी श्रेष्ठ प्रदर्शित किया है–

आपदर्थधनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥[५]

---

1. उ॰रा॰चरि॰ 3/पृ॰ 268
2. वही 3/पृ॰ 269
3. अभि॰शा॰ 7
4. मनुस्मृति॰ 9/95
5. मनुस्मृति॰ 7/213

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत में महात्मा विदुर ने भी इसी बात का प्रतिपादन किया है कि आपत्ति के लिए धन को बचाये व धन से स्त्रियों की रक्षा करें।[1]

नारी रक्षा किसी एक वर्ण के लिए नहीं अपितु सब वर्णों का अपनी पत्नी की रक्षा करना यही मुख्य धर्म है। पति निम्न वर्ण का हो या दुर्बल हो लेकिन उसका कर्तव्य पत्नी-रक्षा है। मनु ने कहा है–

इमं हि सर्व वर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम्।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बलाअपि।।[२]

पति का कर्तव्य पत्नी के पालन-पोषण के लिए उचित धन का भी प्रबन्ध करना है क्योंकि धनाभाव में पत्नी के पथभ्रष्ट होने का भय रहता है, इसलिए मनु कहते हैं–

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः।
आवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्योत्स्थितिमत्यपि।।[३]

पत्नी पति के लिए वंश चलाने वाली होती है अतः पत्नी की रक्षा कर पति अपने परिवार की मर्यादा व वंश, चरित्र, अपत्य, आत्मा व धर्म की रक्षा करता है।[4]

भास ने पति के कर्तव्य व प्रेम का सुन्दर भाव राम के माध्यम से प्रदर्शित किया है। सीता लोकापवाद के कारण स्वयं को निर्दोषिता सिद्ध करने हेतु अग्निपरीक्षा के लिए लक्ष्मण द्वारा राम से आज्ञा मांगने की प्रार्थना करती है। राम पूर्व तो आज्ञा देते हैं– "लक्ष्मण! अस्याः पतिव्रतायाश्छन्दमनुतिष्ठ"।[5] पुनः लक्ष्मण द्वारा यह कहने पर कि कोमलांगी सीता अग्नि में प्रवेश कर रही हैं, राम उन्हें रोकने के लिए कहते हैं–

"आश्चर्यमाश्चर्यम्! लक्ष्मण! निवारय! निवारय!"[६]

पत्नी के बेटी के विवाह के विषय में अतिशीघ्रता दिखाने पर राजा अपने कर्तव्य का पालन करते हुए रानी को कर्तव्य बोध कराते हुए कहते हैं कि देवि विवाह बहुत सोच समझकर करना चाहिए क्योंकि–

---

1. महा॰ 5/37/18 : आपदर्थे...धनैरपि।
2. मनुस्मृति॰ 9/6
3. मनुस्मृति॰ 9/74
4. वही 9/7 : स्वा प्रसूतिं चरित्रं च कूलमात्माननैव च।
   स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति।।
5. अभि॰ना॰ 6/पृ॰ 105
6. वही 6/पृ॰ 107

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जामातृसम्पत्तिचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात्।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्ध-जला नदीव॥[1]

पति का कर्तव्य पत्नी को आपत्ति के समय धैर्य बंधाना है। परशुराम को क्रोधपूर्वक आते देखकर सीता भयभीत होते हुए राम को उनके समक्ष जाने से रोकती है परन्तु श्रीराम क्षत्रियवीर व पराक्रमी हैं। वे अपने कर्तव्य का पालन करते हुए सीता को समझाते हैं।[2]

इसी प्रकार भास ने मध्यमव्यायोग नामक नाटक में राक्षस से भयभीत ब्राह्मणी को उसके पति ब्राह्मण के द्वारा धैर्य बंधाते हुए वर्णित किया है–

"ब्राह्मणि! न भेतव्यम्। पुत्रकाः न भेतव्यम्। सविमर्शा हास्य वाणी।"[3]

इसी प्रकार उरुभंग नाटक में मरणावस्था में पड़े भी राजा दुर्योधन अपनी वीरता का वर्णन करते हुए उन्हें रोते हुए सान्त्वना देते हैं। भीम द्वारा गदायुद्ध में घायल दुर्योधन को देखने धृतराष्ट्र, गान्धारी व राजा दुर्योधन की पत्नियां व पुत्र वहां आकर उनकी अवस्था देखकर रोते हैं तब दुर्योधन अपनी पत्नी से कहते हैं–

भिन्ना मे भ्रकुटी गदानिपतितैर्व्यायुद्धकालोत्थिते-
र्वक्षस्युत्पतितैः प्रहाररुधिरेर्हरावकाशो हृतः।
पश्येमो व्रणकान्वनाङ्गदधरो पर्याप्तशोभो भुजौ
भर्ता ते नपराङ्गमुखो युधि हतः किं क्षत्रियैरोदिषि॥[4]

पति का कर्तव्य पत्नी के सम्मान की रक्षा करना व उसे सम्मान देना भी है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला को शापवश न पहचाने जाने व इतने दिनों तक दुःख प्राप्त करने के दोषी स्वयं को मानते हुए शकुन्तला से अपने अपराध की क्षमा मांगते हैं–

---

1. अवि॰ 1/5
2. महा॰चरि॰ 2/27
3. मध्य॰का॰ 1/पृ॰ 7
4. उरु॰ 1/51

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुतनु! हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसामेवप्रायाः शुभेषुप्रवृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया॥[1]

मित्र का कर्तव्य

वैदिक काल से ही मित्र को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। सर्वगुण सम्पन्न, व हितकारी वचन बोलने वाला मित्र सदैव से ही प्रिय रहा है। सच्चा मित्र वही है जो मनुष्य के केवल गुणों को ही नहीं अपितु उसके दोषों से भी अवगत कराये तथा हितैषी परन्तु अप्रिय वचन बोलने का साहस रखता हो। मनु ने तो राजा की वृद्धि ही सच्चे मित्र से वर्णित की है तथा एक अच्छे मित्र के सम्मुख पृथ्वी व धन को भी स्थान नहीं दिया है, यथा–

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथामित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्॥[2]

मनु ने मित्र का महत्व संख्या में अधिक होने से नहीं वरन् गुणों का आधिक्य होने से प्रदर्शित किया है–

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघु मित्र प्रशस्यते॥[3]

भास ने अपने नाटकों में वैदिक-संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को स्पर्श किया है। उनके नाटकों में प्रत्येक पात्र अपने कर्तव्यों का उचित निर्वाह करता हुआ दृष्टिगत होता है। भास ने राम के माध्यम से मित्रता की कसौटी प्रदर्शित की है। राम रावण के घर से लौटी सीता को राक्षस स्पर्श से दूषित समझते हैं एवं कुल की पवित्रता का स्मरण करते हुए विभीषण से सीता को अपने समक्ष आने से रोकने के लिए कहते हैं तथा विभीषण के असमंजस में पड़ने पर उन्हें सच्चे मित्र का कर्तव्य स्मरण कराते हैं–

मज्जामानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै।
निवारयति यो राजन्! स मित्रं रिपुरन्यथा॥[4]

1. अभि०शा० 7/24
2. मनुस्मृति० 7/208
3. वही 7/209
4. अभि०ना० 6/22

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति ने मैत्री धर्म को सुग्रीव के माध्यम से प्रदर्शित किया है। मृत्यु के पश्चात् बाली सुग्रीव का हाथ राम के हाथ में देते हुए उससे मैत्री धर्म पूछते हैं, तो सुग्रीव उत्तर देते हैं–

प्राणैरपि हिता वृत्तिरद्रोहो व्याववर्जनम्।
आत्मनीव प्रियाधानमेतन्मैत्री महाव्रतम्।।[१]

भवभूति के बाली ने अयोग्य व्यक्ति रावण के साथ मित्रता करने का प्रायश्चित प्राण देकर किया, लेकिन अयोग्य जानते हुए भी मैत्री -धर्म का पालन किया व मित्रता का आदर्श हमारे समक्ष रखा।[2]

भास का प्रत्येक पात्र स्वकर्तव्य के पालन में भावनाओं को स्थान नहीं देता। भास के स्वप्नवासवदत्ता की महारानी वासवदत्ता छिपे रूप में राजकुमारी पद्मावती के साथ सखि रूप में रहती है। राजा उदयन व पद्मावती के पुनर्विवाह की तैयारियां हो रही हैं तथा रानी वासवदत्ता, जो कि उदयन की प्रथम पत्नी है, यह सब जानते हुए भी सखि के लिए वरमाला गूंथते हुए अपने मन में सोचती है–

"एतदपि मया कर्तव्यमासीत्"[३]

भवभूति ने मित्रता के लिए एक संन्यासिनी को भी सांसारिक कार्यों में नियुक्त कर दिया। भूरिवसु द्वारा कामन्दकी को मालती-माधव के विवाह रूप कार्य में नियुक्त किया जाता है। अवलोकिता द्वारा कामन्दकी से संन्यासी द्वारा इस कार्य में उद्यत होने का कारण पूछने पर वह कहती है–

यन्मां विधेयाविषये स भवान्नियुङ्क्ते स्नेहस्य तत्फलमसो प्रणयस्य सारः।

प्राणेस्तपोभिरथवाभिमतं मदीयेः कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात्।।[४]

---

1. महा॰चरि॰ 5/59
2. वही 5/58 : यदासक्तं देवादनभिमतसज्येऽपि हि जने।
   मया सख्यं प्राणैरनृण इव तस्याहमधुना।।
   यदन्यत्साधनां तव च गुणराशैः समुचितम्।
   प्रहाणे प्राणानां तदपि हि यथा शक्तिविदधे।।
3. स्वप्नवा॰ 3/पृ॰ 64
4. माल॰ माध॰ 1/10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास ने योद्धा मित्र का राजा के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए यह बलदेव के माध्यम से भीम द्वारा धोखे से दुर्योधन को गदायुद्ध में घायल कर देने पर प्रदर्शित किया है। बलदेव कहते हैं कि तुम क्षणमात्र के लिए आत्मा को थाम लो मैं अभी–

आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखितैः शरीरै-
निर्दारितां सहृदयान्मुसलप्रहारैः।
दास्यामि संयुगहतान्सरश्वनागान्
स्वर्गानुवात्रपुरुषांस्तव पाण्डुपुत्रान्।।[1]

इसी प्रकार दुर्योधन को घायलावस्था में देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा क्रोधित होकर कहते हैं–कि हे कुरुराज! मैं आपके सत्कार के लिए अपेक्षित सामग्री प्रस्तुत करूंगा–

युद्धोद्यतं गरुड़पृष्ठ निविष्टदेह-
मष्टार्धभीमभुजमुद्यतशार्ङ्ग-चक्रम्।
कृष्णं सपाण्डुतनयं युधि शस्त्रजालैः
संकीर्ण लेखयमिव चित्रपटं क्षिपामि।।[2]

मित्र का कर्तव्य अनावश्यक युद्धोद्यत मित्र को शान्त करना है। क्रोधित बलदेव को देखकर दुर्योधन समझाते हैं–

प्रतिज्ञावसिते भीमे गते भ्रातृशते दिवम्।
मयि चैवं गते राम! विग्रहः किं करिष्यति।।[3]

इसी प्रकार महावीर चरित में धनुषभंग के कारण क्रोधित हुए परशुराम पर अस्त्र उठाना चाहते हैं तब ही दशरथ अपने मित्र कर्तव्य का पालन कर उन्हें ब्राह्मण वध रूपी पाप से बचाते हुए क्षत्रिय धर्म का स्मरण कराते हैं।[4] मित्र के कर्तव्य व प्रेम का सुन्दर उदाहरण कुन्तीभोज व उनके मित्र सौवीरराज के बहुत समय पश्चात् मिलन से मिलता है। राजा कुन्तीभोज कहते हैं–

---

1. उरु० 1/32
2. वही 1/60
3. उरु० 1/33
4. महा०चरि० 3/30 : विरम नरपते कथं द्विजे स्मिन्नविरतयज्ञवितीर्ण गोसहस्रः।
तव पलित निरन्तरः पुषत्कंस्पृशतिपुराणधनुर्धस्यपाणिः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किं प्रेक्षसे मम मुखं चिरकाल दृष्टो
गाढं परिष्वज सखे! स्मर बालभावम्।
प्रीत्या भवन्तमनिमेषमवेक्षितु मे
स्नेहान्नवीकृत इवाद्य वयस्यभावः॥[१]

भवभूति ने माधव के माध्यम से मित्र का कर्तव्य मित्र के साहसिकता पूर्ण सहयोग के लिए कृतज्ञता प्रकट करना वर्णित किया है। माधव को राजभटों के साथ अकेले ही युद्ध करते हुए देखकर उसका मित्र मकरन्द भी युद्ध करता है। अतः माधव अपने मित्र की वीरता व साहसिकता का वर्णन करता है।[2]

कालिदास ने मित्र का कर्तव्य मित्र के कार्य के लिए प्रयत्नशील रहना वर्णित किया है। राजा मित्र विदूषक से अपने कार्य के लिए शीघ्रता करने का स्मरण कराता है तो विदूषक कहता है कि आपके कार्य के लिए मैं वचन देता हूं कि अपना पूरा समय जुटा दूंगा–

गृहीतक्षणोऽस्मि।[३]

यज्ञ से निवृत्त हुआ दुर्योधन गुरुजनों को प्रणाम करने के पश्चात् स्नेह वश मित्र कर्ण से आलिंगनबद्ध होना चाहता है।

"वयस्य! कर्ण! गुरुजनप्रणामावसाने प्राप्तक्रममुपभुज्यतां वयस्यविस्रम्भः।"[४]

इसी प्रकार मित्र का कर्तव्य कष्ट में होने पर भी मित्र की सहायता करना नन्दगोप व वासुदेव के माध्यम से मिलता है। कृष्ण को नन्दग्राम पहुंचाने गये वासुदेव मित्र नन्दगोप से कहते हैं–

यद्यस्मि भवतः किञ्चिन्मया पूर्वकृतं भवेत्।

---

1. अवि॰ 6/1
2. माल॰ माध॰ 8/7 : हरेतुलविक्रमप्रणय लालसः साहसे
   स एव भवतिवकणत्कररह प्रचण्डःसखा।
   स्फुटत्करटकोटरस्खलितदानसिक्तानन
   द्विपेश्वरशिरः स्थिरास्थिदलनेकवीरःकरः॥
3. माल॰मा॰ 2/पृ॰ 136 गद्यभाग 57
4. पंच॰ 1/पृ॰ 22

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य प्रत्युपकारस्य कालस्ते समुपागतः॥[१]

आदर्श मित्र का कर्तव्य मित्र सखि के लिए कल्याण की कामना करना व उसके सुखों के प्रति प्रार्थना करना है। सखि चित्रलेखा अपनी प्रिय सखी उर्वशी को विवाह हेतु राजा पुरूरवा को सौंपने के समय राजा से वचन लेती है–

"वसन्तानन्तरमुष्णसमये भगवान् सूर्यो मया उपचरितव्यः।
तद्यथा इयं मे प्रियसखी स्वर्गस्य नोत्कण्ठते तथा वयस्येन कर्तव्यम्।"[२]

गुरु का कर्तव्य

वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत गुरु का सर्वोच्च स्थान है। पिता-माता मनुष्य को जीव रूप में इस लोक में जन्म देने वाले होते हैं। लेकिन इस संसार में संस्कारयुक्त कर, वेदज्ञान देकर वास्तविक जीवन प्राप्त कराने वाला गुरु ही होता है। जीवन की प्रथमावस्था, ब्रह्मचर्याश्रम में बालक गुरु-गृह में रहकर ही अपने कर्तव्यों व धार्मिक कर्मकाण्डों आदि का ज्ञान प्राप्त कर पूर्णरूपेण संसारी पुरुष बनता है व जीवन की अन्य अवस्थाओं का सम्यक् ज्ञान अर्जित करता है। इसलिए मनु ने जन्मदाता व ब्रह्मज्ञानदाता दोनों में गुरु को ही श्रेष्ठ प्रदर्शित किया है। क्योंकि ब्रह्म प्राप्ति का आधार ही गुरु है, यथा–

उत्पादकब्रह्मदात्रोगरीयान्ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रत्य चेह च शाश्वतम्॥[३]

दोनों पिताओं में जन्म देने वाले से वेदज्ञान देने वाले को श्रेष्ठ इसलिए भी वर्णित किया गया है क्योंकि गुरु संस्कार कराता है तथा ब्राह्मण का ब्रह्मजन्म यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा ही वर्णित किया गया है। इसलिए मनुस्मृति में गुरु के लिए निर्देश दिया गया है–

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च॥[४]

मनु ने गुरु को इस प्रकार परिभाषित किया है–

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।

1. वा॰चरि॰ 1/20
2. विक्रमो॰ 3/पृ॰ 127
3. मनुस्मृति॰ 2/146
4. मनुस्मृति॰ 2/69

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते॥२/१४२

मनु के अनुसार गुरु का कर्तव्य शिष्य को वेद पढ़ाना है, परन्तु वेद पढ़ाने का अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति न होकर निम्न को वेद पढ़ाने के लिए उचित ठहराया है–

आचार्यपुत्रः शुश्रुषर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः।
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधु स्वोऽध्याप्यादशधर्मतः॥[१]

गुरु के लिए मनु ने यह भी निश्चित किया है कि कैसे स्थान या व्यक्ति को विद्या का दान देना चाहिए, यथा–

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे॥[२]

क्योंकि विद्या की अधिष्ठात्री देवी ने अध्यापक से कहा कि वेदनिन्दकों को मुझे मत सौंपो।[3] गुरु के लिए यह निर्देश है कि विद्यावान पुरुष अन्याय से पूछने पर या अपात्र को विद्या का दान कदापि न करें। मनु के अनुसार–

विधयैव समं कामं कर्तव्यं ब्रह्मवादिना।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत्॥[४]

मनु ने गुरु के लिए कोमल वचन व अहिंसामय अनुशासन का वर्णन किया है अर्थात् गुरु-शिष्य को ज्ञान प्राप्ति के समय शिष्य की भलाई के लिए दण्ड भी प्रेमपूर्ण वचनों में दें–

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनम्।
वाक्चैव मधुरा श्लक्षणा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥[५]

महाकवि भवभूति के नाटकों में गुरु के कर्तव्य का सुन्दर उदाहरण मिलता है। महावीर चरित नाटक में गुरु विश्वामित्र अपने शिष्य राम व लक्ष्मण को राजा कुशध्वज का परिचय देकर उनके प्रति नम्र व्यवहार करने को कहकर, गुरु के रूप में अपने कर्तव्य का पालन करते हैं–

---

1. मनुस्मृति॰ 2/109
2. मनुस्मृति॰ 2/112
3. वही 2/114 : विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेऽस्मि रक्षमाम्।
   असूयकामय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तना॥
4. वही 2/113
5. वही 2/159

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तदस्मिन् राजन्यश्रोत्रिये वत्साभ्यां प्रश्रयेणवर्तितव्यम्।"[1]

महाकवि भास ने गुरु का कर्तव्य शिष्य को केवल शिक्षा देना ही नहीं निश्चित किया वरन् शिष्य द्वारा किये गये गुण व दोषों के प्रति जिम्मेदार प्रदर्शित किया है क्योंकि माता-पिता बाल्यावस्था से ही बालक को गुरु के आश्रम में भेज देते हैं। गुरु द्रोण दुर्योधन द्वारा किये गए यज्ञानुष्ठान से प्रसन्न होकर सोचते हैं–

अतीत्य बन्धूनवलङ्घ्य मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः।
बालं ह्यपत्यं मुखे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः॥[2]

इसी नाटक में भास ने गुरु का एक दूसरा रूप गुरु द्रोण के माध्यम से हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है कि गुरु केवल शिष्य को विद्या ही नहीं प्रदान करते अपितु अवसर आने पर शिष्य व शिष्य पुत्र के प्राणों की रक्षा में भी तत्पर रहते हैं। राजा विराट के युद्ध में अभिमन्यु के अपहरण का समाचार ज्ञात होने पर गुरु द्रोण विचलित हो जाते हैं तथा कहते हैं–

रणपटुरपनीतः केन मे शिष्यपुत्रः
क इह मम शरैस्तैर्दैवतेर्योद्धुकामः।
कथय पुरुषसारं यावदस्त्रं बलं वा,
बलवत् इषुदूतांस्तत्र सम्प्रेषयामि॥[3]

महाविभूति भवभूति ने गुरु का कर्तव्य पक्षपात रहित हृदय से अपने प्रत्येक शिष्य को समान रूप से शिक्षा प्रदान करना है, यह कथन आत्रेयी एवं वनदेवता के माध्यम से लव व कुश की विद्वत्ता व गुरु बाल्मीकि के लिए कहा गया है–

वितरतिः गुरुः प्राज्ञे विद्यां तथैव तथा जड़े,
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा,
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः॥[4]

---

1. महा॰चरि॰ 1/पृ॰ 16
2. पंच॰ 1/21
3. पंच॰ 3/2
4. उ॰रा॰चरि॰ 2/4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास के समान ही भवभूति ने राजगुरु का कर्तव्य राज्य या राजा की विपत्ति में रक्षा करना है। महावीर चरित में धनुषभंग के क्रोधित परशुराम राम का वध करने की बात कहते हैं तो राजा जनक के राजपुरोहित शतानन्द क्रोधित होकर अपने कर्तव्य का स्मरण कराते हुए कहते हैं कि–

वयमिव यथागृह्यो बहिनस्तथैव चिरंस्थिताः
सुचरितगुरुस्तम्भाधारे गृहे गृहमेधिनाम्।
यदि परिभवस्तत्रान्यस्मादूपैति धिगस्तु
तत्प्रियमपि तपो धिग्ब्राह्मण्यं धिगङ्गिरसःकुलम्।।[1]

गुरु का कर्तव्य समय-समय पर शिष्यों को ज्ञान देना व विद्वानों एवं दिव्य ज्योतियों का परिचय देकर उनकी वन्दना करना सिखाना भी है यथा महावीरचरित में दिव्यास्त्र प्रदान करते समय दिव्य-ज्योतियों के दर्शन होने पर गुरु विश्वामित्र राम को उनकी वन्दना करने के लिए कहते हैं।[2] गुरु का कर्तव्य शिष्य के अभिवादन करने पर उसे आशीर्वाद देना है। वैदिक-संस्कृति में गुरुजनों का आशीर्वाद अभीष्ट फलदायी है। शिष्य का कर्तव्य बिना गुरु की आज्ञा व आशीर्वाद के किसी कार्य को करना नहीं है तथा गुरु को सेवा एवं भक्ति से प्रसन्न कर आशीर्वाद प्राप्त करना है। भास के अविमारक नाटक में यह भाव परिलक्षित होता है। अविमारक द्वारा गुरु सदृश मामा कुन्तीभोज को प्रणाम किया जाता है तथा इसके प्रत्युत्तर में कुन्तीभोज उसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने व यशस्वी होने का आशीर्वाद देते हैं–

क्षमया जय विप्रेन्दान दमया जय संश्रितान्।
तत्त्व बुद्धया जयात्मान तेजसा जय पार्थिवान्।।[3]

और पितासदृश पराक्रमी होने का आशीर्वाद देते हुए कहते हैं–

---

1. महा॰चरि॰ 3/17
2. महा॰चरि॰ 1/46 :
   ब्रह्मेन्द्रद्रविणेशरुद्रवस्राचीनबर्हिर्मरु-
   त्कालाग्निव्यतिरेकिणां भगवतामाम्नायमन्त्रात्मनाम्।
   एतेषां तपसाभिवाप्रतिषतैर्वितेजोभिरुत्कर्षिणा-
   मकैकस्य जगन्त्रयप्रमंथनबाणावधिर्योग्यता।।
3. अवि॰ 6/17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञैः शुभर्हरिसमो भव नित्ययुक्तैः
सत्यैर्दृढैर्दशरथप्रतिमो भव त्वम्।।
नित्यार्पितैः पितृसमो भव सम्प्रदानैः
स्वेनात्मना सुसदृशेन पराक्रमेण।।[१]

मनु ने भी प्रणाम के उत्तर में गुरु का कर्तव्य शिष्य को आशीर्वाद देना वर्णित किया है, यथा–

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः।।[२]

महाकवि कालिदास ने गुरु का कर्तव्य योग्य शिष्य को अपनाना है; यह कथन राजा के माध्यम से वर्णित किया है क्योंकि शिष्य की अयोग्यता गुरु की बुद्धि का परिचायक होती है।

मालविकाग्निमित्र नाटक में गुरु गणदास व हरिदास में से गुरु की योग्यता अथवा श्रेष्ठता शिष्य की योग्यता अथवा श्रेष्ठता पर आधारित कर निर्णीत प्रदर्शित की गई है। रानी द्वारा यह कहे जाने पर कि यदि मन्द-बुद्धि शिष्य पढ़े-पढ़ाये पर धब्बा लगा दे तो शिक्षक का क्या दोष होगा। राजा अग्निमित्र उत्तर देते हैं–

विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति।[३]

इसलिए मनु ने कहा है कि भले ही विद्या सहित मरण को प्राप्त हो जाये लेकिन किसी अयोग्य को विद्या का दान न दे।[4]

महाकवि शिरोमणि जो कि वैदिक-संस्कृति के पूर्ण ज्ञाता थे, उन्होंने गुरु के विद्यादान को मात्र व्यापार न बताकर सरस्वती पूजा माना है। मालविकाग्निमित्र नाटक में संगीत सिखाने की कला को, सरस्वती पर चढ़ाये जाने वाले लड्डुओं को खाने का बहाना मात्र बताकर, विदूषक के व्यंग्य को सुनकर गुरु गणदास उत्तर देते हैं–

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरो-
स्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।

---

1. अविमा॰ 6/19
2. मनुस्मृति॰ 2/125
3. मालविका॰ 1/गद्यभाग 111 पृ॰ 70
4. मनुस्मृति॰ 2/113

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्यागमः केवल-जीविकाये
तं ज्ञान-पण्यं वणिजं वदन्ति॥[1]

गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्यों के दुखी व परेशान रहने पर उनके सुख साधन का उपाय करे। यहां तक कि गुरु द्रोण एक शिष्य से गुरु दक्षिणा में अन्य पाण्डव शिष्यों के लिए आधा राज्य ही मांग लेते हैं–यथा,

येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां संवत्सरेर्द्वादशभिर्न दृष्टा।
त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागमेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च॥[2]

इस प्रकार भवभूति, कालिदास व भास के सभी नाटकों में हमें कर्तव्यों का सुन्दर निर्वाह मिलता है तथा इन महान कवियों ने अपने नाटकों के पात्रों के माध्यम से उच्च आदर्शों एवं कर्तव्यों का मर्यादित रूप समाज के समक्ष रखा है जो समाज को सदैव प्रेरणा देता रहेगा।

♣♣♣

---

1. मालविका॰ 1/17
2. पंच॰ 1/33

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम अध्याय

उपदेश-परम्परा

1. पिता का उपदेश 2. माता का उपदेश 3. मित्र का उपदेश 4. गुरु का उपदेश

पिता का उपदेश

वेदों में उपदेश का बहुत महत्व है। अपने संचित ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करना ही उपदेश है। पिता परिवार का कर्ता होता है। उसका धर्म सन्तानोत्पत्ति कर सन्तान को केवल जीवन दान देना एवं उसका पालन-पोषण करना ही नहीं अपितु उसे सामाजिक प्राणी बनाना व धर्मपूर्वक समाज में रहकर आदर्श स्थापित करने का उपदेश देना भी है, क्योंकि पिता ही सन्तान का पारिवारिक गुरु होता है अतः वही सन्तान का उचित अनुचित का बोध कराकर, समाज व संसार में सामंजस्य स्थापित करना सिखाता है। वह पुत्र को उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरु गृह में जाकर विद्याध्ययन करने का उपदेश देता है–

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः।
गुरो वसन्संचिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः॥[1]

पिता पुत्र को चतुर्थ-आश्रमों के पालन का उपदेश करते हुए नित्य यज्ञों का पालन कर, पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करने के निमित्त पुत्र को नियमपूर्वक गुरुगृह में रहने का उपदेश देता है।

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरो वसन्।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपो वृद्यर्थमात्मनः॥
नित्यं स्नात्वा शुचि कुर्याद् देवर्षि पितृतर्पणम्।
देवताभ्यर्चनं च व समिधादानमेव च॥[2]

---

1. मनुस्मृति० 2/164
2. वही 2/175, 176

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता पुत्र को गुरु सेवा करने का उपदेश देता है तथा अभिवादन करने के नियमों को समझाते हुए कहते हैं–

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत्।
शय्यासनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्।।[१]

बड़े के आने पर उठकर अभिवादन करने के विषय में समझाते हैं कि–

उर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते।।[२]

पुनः वह अभिवादन व आदर से आयु, विद्या, यश व बल बढ़ने का उपदेश देते हैं।[3] इस प्रकार गुरु सेवा से प्राप्त होने वाले परिणाम का बोध कराते हुए पिता पुत्र से कहते हैं–

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।।[४]

पिता पुत्र को आश्रम–व्यवस्था का क्रम समझाते हुए प्रथम ब्रह्मचर्य तत् पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का उपदेश देते हैं–

"अयि वत्स! उषितं त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे। द्वितीयमध्यासितुं तव समयः।"[५]

राजा पुरूरवा पुत्र के वयस्क हो जाने पर उसे राज्यभार सौंपने का निश्चय करते हैं परन्तु पुत्र द्वारा अपनी अवस्था अल्प बताने पर समझाते हैं।

अयि वत्स! मा मैवम्।
शमयति गजानन्यान्गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
प्रभवतितरां वेदोदग्रं भुजङ्गशिर्शोविषम्।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुम्,

---

1. मनुस्मृति॰ 2/119
2. वही 2/120
3. मनुस्मृति॰ 2/121 :
   अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
   चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।
4. वही 2/218
5. विक्रमो॰ 5/पृ॰ 213

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च खलु वयसा जात्येवायं स्वकार्यसहो गणः॥[१]

त्रिजटा माल्यवान् से हनुमान् द्वारा लंका विध्वंस का समाचार सुनाते हुए सीता के मानुषी व मधुरभाषिणी होने पर प्रचण्ड राक्षसी रूप होने का वर्णन करती है। यह संवाद सुनकर माल्यवान् उसे पतिव्रत का उपदेश देते हुए कहते हैं–

"पतिव्रतामयं ज्योतिः शान्तं दीपं च घुष्यते।"[२]

महाकवि कालिदास ने ऋषि कण्व के माध्यम से एक गृहस्थ पिता द्वारा पुत्री के पतिगृह-गमन के समय दिये जाने वाले उपदेश का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। ऋषि कण्व कहते हैं कि तुम पतिगृह पहुंचकर–

शुश्रूषस्व गुरुन्कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तुविप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥[३]

आगे ऋषि कण्व पुत्रीजन्य वियोग से व्याकुल हैं परन्तु रोती हुई शकुन्तला को समझाते हुए कहते हैं–

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्येस्थिता गृहिणीपदे,
विभवगुरुभिः कृत्येस्तस्ये प्रतिक्षणमाकुला।[४]
तनयमचिरात् प्राचीवार्क प्रसूय च पावनम्,
मम विरहजां न त्वं वत्से। शुचः गणयिष्यसि॥[५]

कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में दुर्योधन भीम के गदाप्रहार से घायल अवस्था में रणभूमि में पड़े हैं तथा उनके पिता, माता, पत्नी, पुत्र एवं अन्य सभी उनकी अवस्था से शोकसंतप्त हैं। मृत्यु से पूर्व दुर्योधन अपने पुत्र को उपदेश देते हैं–

श्लाघ्यश्रीरभिमानदीप्तहृदयो दुर्योधनो मे पिता

1. विक्रमो॰ 5/18
2. महा॰चरि॰ 6/6
3. अभि॰शा॰ 4/18
4. वही 4/19
5. अभि॰शा॰ 4/19

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुल्येनाभिमुखं रणे हत इति त्वं शोकमेवं त्यज।
स्पृष्ट्वा चैवं युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षोमापसव्यंभुजं,
देयं पाण्डुसुतैस्त्वया मम समं नामावसाने जलम्।।[१]

माता का उपदेश

वेदों, पुराणों व ग्रन्थों में माता का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उसके वचन ही साक्षात् उपदेश हैं क्योंकि उसकी वाणी से निकला सन्तान के प्रति प्रत्येक हितकर शब्द ही उपदेश है। आदि महाकाव्यों व पुराणों में तो माता की आज्ञा के समक्ष पिता की आज्ञा का भी अतिक्रमण होना मिलता है अर्थात्–माता को पिता व आचार्य से भी श्रेष्ठ प्रदर्शित किया गया है। मनु के अनुसार–

उपाध्यायन्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।[२]

मनुष्य का प्रथम जन्म माता द्वारा माना गया है तथा दूसरा जन्म गुरु द्वारा प्राप्त कराये गये वेद ज्ञान से होता है, यथा–

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मोञ्जिबन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्।।[३]

जन्मदात्री होने से ही माता जननी होती है। वह जन्म देकर एवं उचित अनुचित का उपदेश देकर सन्तान को आदर्श बनाती है। माता पुत्रों को बड़ों के प्रति आदरभाव रखने का उपदेश देती है। क्योंकि वही सन्तान की प्रथम गुरु है। गुरु आश्रम में रहते हुए उसे किन-किन नियमों का पालन करना चाहिए यह उपदेश देते हुए माता कहती है–

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदागुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य परमं चैव संविशेत्।।[४]

इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र नाटक में गुरु हरदत्त व गुरु गणदास अपनी कला प्रदर्शित करते हैं तथा गुरु हरदत्त को राजा द्वारा अपनाये जाने पर रानी

---

1. उरु० 1/53
2. मनुस्मृति० 2/145
3. वही 2/169
4. वही 2/194

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तित होती हैं तब माता परिव्राजिका उपदेश देकर उन्हें महारानी के पद की गरिमा समझाते हुए कहती हैं–

अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः।
अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः॥[१]

अन्य महारानी द्वारा मालविका को सौत रूप में स्वीकार कर लेने पर माता परिव्राजिका कहती है–

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तु-वत्सलाःसाधव्यः।
अन्य सारितां शतानि हि समुद्रगाःप्रापयन्त्यविधम्॥[२]

महारानी मालविका को सपत्नी के रूप में स्वीकार कर लेती हैं तथा कहती हैं कि ये तो स्वयं राजकुमारी हैं इनको रानी बनाने के लिए किसी संस्कार की क्या आवश्यकता है। इस पर माता परिव्राजिका कहती है–

अप्याकर समुत्पन्ना मणिजातिरसंस्कृता।
जातरूपेण कल्याणि। न हि संयोगमर्हति॥[३]

उर्वशी बहुत समय पश्चात् लौटे हुए अपने पुत्र को पिता की सेवा करने का उपदेश देती है–

"वत्स! पितरमाराधयन् भव।"[४]

मित्र का उपदेश

माता, पिता, गुरु आदि सभी सम्बन्धों से अभिन्न सम्बन्धी मित्र ही है। वह सच्चा मार्गदर्शक व कर्तव्यबोध कराने वाला हितैषी तथा उपदेशक है। वेदों में इसका विशेष महत्व है। नाटकों में भी राजा के साथ विदूषक मित्र होता है जो राजा के कर्तव्यविमूढ़ होने पर अपने उपदेशों से सच्ची राह दिखाता है। इसीलिए मनु ने गुणी मित्र संख्या में अल्प होते हुए भी महत्वपूर्ण प्रदर्शित किया है–

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघु मित्र प्रशस्यते॥[५]

1. मालविका॰ 1/13
2. वही 5/19
3. वही 5/18
4. विक्रमो॰ 5/पृ॰ 212
5. मनुस्मृति॰ 7/209

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति ने मित्र का उपदेश राजा दशरथ के माध्यम से वर्णित किया है। क्रोधित परशुराम को शान्त करने हेतु राजा जनक उन पर अस्त्र उठा लेते हैं तो दशरथ मित्र रूप में उन्हें समझाते हैं–

विरम नरपते कथं द्विजेऽस्मिन्नविरतयज्ञवितर्तीणगोसहस्त्रः।
तव पलित निरन्तरः पृषत्कं स्पृशतिपुराणधनुर्धस्य पाणिः॥[1]

दुर्योधन की घायलावस्था को देखकर अश्वत्थामा भीम से बदला लेना चाहते हैं तो दुर्योधन शत्रुता नहीं बढ़ाना चाहते तथा मित्र को समझाते हैं–

गतं धात्र्युत्संगे सकलमभिषिक्तं नृपकुलम्,
गतः कर्णः स्वर्गं निपतितनुः शान्तनुसुतः।
गतं भ्रातृणां मे शतमभिमुखं संयुगमुखे,
वयं चैवं भूता गुरुसुत। धनुर्मुञ्चतु भवान्॥[2]

इसी प्रकार दुर्योधन युद्धोद्यत बलदेव को शान्त करते हुए कहते हैं–

प्रतिज्ञावसिते भीमे गते भ्रातृशते दिवम्।
मयि चैवं गते राम! विग्रहः किं करिष्यति॥[3]

राजा अग्निमित्र के मालविका पर आसक्त हो जाने व अन्य रानियों के प्रति उदासीन हो जाने पर मित्र विदूषक कहता है–

"नार्हति भवान् सर्वमन्तःपुरप्रतिष्ठितं दाक्षिण्यमेकपदे पृष्ठतः कर्तुम्।"[4]

कालिदास ने एक मित्र द्वारा दूसरे मित्र को उसके कर्तव्य का बोध कराने हेतु उपदिशित करते हुए वर्णित किया है। राजा दुष्यन्त द्वारा शापवश शकुन्तला को पहचानने से इन्कार करने पर शकुन्तला को पतिगृह छोड़ने आये हुए बालसखा ऋषि कुमारों द्वारा क्रोध व उपदेश का मिला-जुला भाव कालिदास ने प्रदर्शित किया है, यथा–

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा
त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।

---

1. महा॰चरि॰ 3/30
2. उरु॰ 1/61
3. वही 1/33
4. मालविका॰ 3/गद्यभाग 24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः
पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।।[1]

गुरु का उपदेश

वेद मानव जीवन के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं। उनमें वर्णित वाणी मानव जीवन का आधार है। वेद मानव के समस्त कार्यकलापों को संयमित कर उसका मार्गदर्शन करते हैं। संस्कृति व सभ्यता के निर्धारक वेदों में वर्णित गुरु माता व पिता के उपदेशों से ही आने वाली पीढ़ी ज्ञान प्राप्त कर जीवन मूल्यों को निर्धारित करती है। गुरु का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि माता-पिता तो मानव को जन्म देने के अधिकारी हैं परन्तु उसका वास्तविक जीवन गुरु के द्वारा प्राप्त उपदेशों से ही सार्थक होता है। मनु ने भी जन्मदाता व वेदज्ञान दाता दोनों में ब्रह्मज्ञान देने वाले को ही श्रेष्ठ सिद्ध किया है, यथा–

उत्पादकब्रह्मदात्रोगरीयान्ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रैत्य चेह च शाश्वतम्।।[2]

गुरु को भगवान् से भी उच्च स्थान दिया गया है क्योंकि भगवान तक पहुंचने का मार्ग भी गुरु ही प्रशस्त करता है। गुरु ही प्रत्येक मनुष्य को वेद पढ़ने का उपदेश करता है व वेद पढ़ने व पढ़ाने के लिए उचित समय का ज्ञान कराता है–

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधाऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि।।[3]

गुरु मनुष्य को वेदाध्ययन से प्राप्त होने वाली उपलब्धियों का निर्देश देते हैं, यथा–

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु।।[4]

1. अभि०शा० 5/27
2. मनुस्मृति० 2/146
3. वही 2/105
4. वही 2/107

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु अभिवादन करने के विषय में उपदेश देते हैं कि किस प्रकार के व्यक्ति सर्वप्रथम अभिवादन योग्य हैं–

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्।।[१]

गुरु ही शिष्य को प्रणाम करने की विधि सिखाता है व अभिवादन से प्राप्त होने वाले परिणामों का ज्ञान कराता है।

शय्यासने ध्यानचरिते श्रेयसा न समाविशेत्।
शय्यासनस्थाश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्।।[२]

किसी बड़े व्यक्ति के आने पर खड़े होकर अभिवादन करने के विषय में बताते हुए मनु कहते हैं–

उर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते।।[३]

नित्य वृद्धों की सेवा व अभिवादन करने से होने वाले फल को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।[४]

अभिवादन का प्रत्युत्तर देना आवश्यक है अतः अभिवादन के उत्तर में प्रत्यभिवादन न करने वाले पुरुष को प्रणाम न करने का निर्देश करते हुए मनु कहते हैं–

यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषां यथा शूद्रस्तथैव।।[५]

गुरु शिष्य को विद्या प्राप्त कराता है लेकिन इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए गुरु की सेवा का विशेष महत्व है क्योंकि सेवा से गुरु प्रसन्न होते हैं तथा गुरु को प्रसन्न कर ही शिष्य विद्या प्राप्त कर लेता है, यथा–

---

1. मनुस्मृति॰ 2/117
2. मनुस्मृति॰ 2/119
3. वही 2/120
4. वही 2/121
5. मनुस्मृति॰ 2/126

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।।[1]

गुरु ब्रह्म को प्राप्त कराने के लिए मार्गदर्शक है अतः वह शिष्य को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के निमित्त तप व जप आदि करने का उपदेश देता है–

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः।
गुरो वसन्संचिनुयाद् ब्रह्माधिगामिकं तपः।।[2]

गुरु गृह में रहकर शिष्य के लिए वेदाभ्यास करना आवश्यक है क्योंकि इस संसार में वेदाभ्यास ही परम तप है–

वेदमेव सदाभ्यस्यैक्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।।[3]

यज्ञ दीक्षा विप्र के लिए परम आवश्यक है क्योंकि इसी से ब्राह्मण तीसरा जन्म प्राप्त करता है–

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मोञ्जिबन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिवोदनात्।।[4]

गुरु शिष्य को ज्ञान प्राप्त कराते हैं लेकिन साथ में उन्हें प्राप्त ज्ञान या विद्या सत्पात्र को ही देने का उपदेश करते हैं क्योंकि मनु के अनुसार–विद्या की अधिष्ठात्री देवी ने स्वयं अध्यापक से कहा है–

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम्
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने।[5]

गुरु आगे उपदेश करते हैं–

विद्ययैव समं कामं कर्तव्यं ब्रह्मवादिना।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत्।।[6]

महाकवि कालिदास ने भी गुरु के इसी उपदेश का वर्णन मालविकाग्निमित्र में किया है। गुरु गणदास नृत्य सीखने के लिए महारानी

---

1. मनुस्मृति॰ 2/218
2. वही 2/164
3. मनुस्मृति॰ 2/166
4. वही 2/169
5. वही 2/115
6. वही 2/113

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा भेजी हुई मालविका को देखकर उसे विद्या देने हेतु उचित एवं योग्य पात्र मानकर प्रसन्न होते हैं तथा बकुलावलिका द्वारा मालविका की योग्यता के विषय में पूछे जाने पर गुरु गणदास उससे कहते हैं–

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य।।[1]

भवभूति ने उत्तररामचरित में गुरु द्वारा राजा राम को उपदिष्ट कराया है। सभी गुरुजन जामाता ऋषयङ्ग के यज्ञ में गये हुए हैं वहां से वे संदेश वाहक द्वारा राजा राम को प्रजानुरञ्जन के लिए सावधान रहने का उपदेश देते हुए कहते हैं–

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।।[2]

मनु ने भी क्षत्रिय का परम धर्म प्रजापालन ही बताया है।[3]

महावीर चरित में भवभूति ने स्थान-स्थान पर उपदेश-परम्परा का निर्वाह किया है। जामदग्न्य क्रोधित होकर धनुष भंग करने वाले राम से युद्ध करने को उत्सुक हैं तथा प्रत्येक जन उसको पृथक्-पृथक् शान्त करने का प्रयत्न करता है, लेकिन उन पर किसी की बात का कोई प्रभाव न देखकर गुरु वशिष्ठ उन्हें युद्ध न करने व समाधिवृत्ति द्वारा आन्तरज्योति के दर्शन करने का उपदेश देते हैं–

"अयि वत्स! किमनया यावज्जीवमायुधपिशाचिकया। श्रोत्रियोऽसि जामदग्न्य। पूतं भजस्व पन्थानम्। आरण्यकश्चासि। तत्परिचितुचित्तप्रसादनीश्चतस्त्रो मैत्र्यादिभावनाः प्रत्यासीदति हि ते विशोका ज्योतिष्मती नाम योगवृत्तिः। तत्प्रसादजं ऋतंभराभिधानं नामाबहिः साधनोपधेयसर्वार्थसामर्थ्यमपविद्धविप्लवोपरागमूर्जस्वल. मन्तर्ज्योतिषो दर्शनम्। यतः प्रजानमभिसंभवति तद्ध्याचरितव्यं ब्राह्मणेन। तरति येनापमृत्युं पाप्मानम्। अन्यत्र ह्यवभिनिविष्टोऽसि।"[4]

---

1. मालविका॰ 1/6
2. उ॰रा॰चरि॰ 1/11
3. मनुस्मृति॰ 7/144
4. महा॰चरि॰ 3/पृ॰ 108

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपुरोहित शतानन्द भी, कोपावेग से राम का वध करने को उद्यत परशुराम पर क्रोध करने लगते हैं। तब गुरु विश्वामित्र उन्हें शान्त करते हुए समझाते हैं–

न तस्य राष्ट्रं व्यथते न रिष्यति न जीर्यति।
त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोपः पुरोहितः॥[1]

अन्यत्र भी, क्रोधित जामदग्न्य व शतानन्द के मध्य कटु वार्तालाप होता है जिससे क्रोधित होकर शतानन्द परशुराम को भस्म करने को उद्यत होते हैं तभी दशरथ द्वारा उन्हें शान्ति ग्रहण करने का उपदेश दिया जाता है–

श्लाघ्यो गुणैर्द्विजवरश्च निजश्च बन्धु-
स्तस्मिन् गृहानुपगते सदृशं किमेतत्।
विद्वानपि प्रचलितस्तु यदेष मार्गा-
त्क्षत्रं हि तत्र विनियाय शमं भज त्वम्॥[2]

गुरु वशिष्ठ भी उन्हें शान्त करने के लिए शान्तिहोम करने के विषय में समझाते हुए कहते हैं–

यत्कल्याणं किमपि मनसा तद्वयं वर्तयाम-
स्त्वं जाबालिप्रभृतिसहितः शान्तिमध्यग्नि न कुर्याः।
जेतुं जैत्रानथ खलु जपन्सूक्तसामानुवाका-
नस्मच्छिष्यैः सह स भगवान् वामदेवो गुणातु॥[3]

मनु ने भी जप द्वारा समस्त सिद्धि प्राप्त करने का वर्णन किया है।[4]

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में भी गुरु मारीच द्वारा शाप का प्रभाव दूर होने पर राजा दुष्यन्त व शकुन्तला के पुनर्मिलन के समय, शकुन्तला को पति द्वारा परित्यागजन्य दुःख को विस्मृत करने हेतु उपदेश देने का वर्णन है। वे कहते हैं–

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरुक्षे
भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तत्रैव।

---

1. महा०चरि० 3/18
2. महा०चरि० 3/22
3. वही 3/23
4. मनुस्मृति० 2/87

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाया न मूर्च्छति मलोपहत प्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा।।[1]

ब्राह्मण वेशधारी रावण वन में श्राद्ध करने वाले राम को तर्पण करने की सामग्री बताते हैं तथा उचित प्रकार से पुत्र द्वारा किये गये तर्पण से प्राप्त परिणाम का गुरु रूप में उपदेश देते हुए कहते हैं–

तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते,
हित्वा जरां समुपयान्ति हि दीप्यमानाः।
तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवासमावर्तिभिश्च
विषयैन बलाद ध्रियन्ते।।[2]

महावीरचरित नाटक में परशुराम के क्रोधित होकर राम को मारने के लिए उत्सुक होने पर गुरु विश्वामित्र उन्हें उपदेश देते हैं–

अनुत्पन्नं ज्ञानं यदि यदि च संदेहविधुरं
विपर्यस्तं वा स्यातपरिचर वसिष्ठस्य चरणौ।
ध्रुवं ज्ञाने दोषः कथमपरथा दुर्व्यवहृति-
र्विशुद्धौ चेत्पापं चरसि न सहन्ते नृपतयः।।[3]

इसी नाटक के प्रारम्भ में गुरु विश्वामित्र यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षसों का वध करने के लिए लाए हुए राम व लक्ष्मण को, राजा कुशध्वज के यज्ञ में सम्मिलित होने की इच्छा से पधारने पर, उनके प्रति नम्र व्यवहार का उपदेश देते हैं–

"तदस्मिन् राजन्यश्रोत्रिये वत्साभ्यां प्रश्रयेणवर्तितव्यम्।"[4]

क्रोधित परशुराम को, क्षत्रियत्व से हटकर ब्राह्मण होने का स्मरण वसिष्ठ गुरु द्वारा कराया जाता है। गुरु वसिष्ठ उन्हें श्रोत्रिय होकर पवित्र मार्ग अपनाने का उपदेश देते हैं।[5] वे उस सभा में उपस्थित सभी विद्वानों का परिचय देते हुए तथा उन सभी के द्रोह रहित होने पर शान्त रहने का उपदेश देते हैं–

---

1. अभि०शा० 7/32
2. प्रति०ना० 5/10
3. महा०चरि० 3/38
4. महा०चरि० 1/पृ० 16
5. वही 3/पृ० 108-109 : अभिवत्स...ह्यभिनिविष्टोऽसि।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषदियमृषीणामत्र वीरो युधाजित्सह नृपतिरमात्ये रोमपादश्चवृद्धः।
अयमविस्तयज्ञौ ब्रह्मवादी पुराणः प्रभुरपि जनकानामद्रुहो याचकास्ते।।[1]

गुरु द्रोण अपने शिष्य दुर्योधन से यज्ञ समाप्ति पर गुरु दक्षिणा में पाण्डवों के लिए आधा राज्य मांगते हैं तथा दुर्योधन को परस्पर सम्बन्धियों में विद्रोह समाप्त करने का उपदेश देते हैं–

त्वं वन्व्यसे यदि मया न तवात्र दोष-
स्त्वां पीडयामि यदि वास्तु तवैष लाभः।
भेदाः परस्परगता हि महाकुलानां,
धर्माधिकार वचनेषु शमीभवन्ति।।[2]

इस प्रकार महाकवियों के नाटकों में उपदेश परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ है।

❧❧❧

1. महा॰चरि॰ 3/5
2. पंच॰ 1/41

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

महाकवि भास, कालिदास एवं भवभूति के सम्पूर्ण नाटकों का अवलोकन करने के उपरान्त वैदिक-संस्कृति के उज्जवल रूप के दर्शन प्राप्त हुए। मानव जाति के आदि ग्रन्थ मानव की प्रेरणा के आधार-स्तम्भ हैं तथा इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर विभिन्न कलाओं का आविर्भाव हुआ। इन्हीं कलाओं में से एक नाट्यकला है। वैदिक-संस्कृति का ही परिष्कृत व परिमार्जित रूप आदि काव्य रामायण व महाभारत में मिलता है। इन महाकाव्यों से ही कथा-प्रसंग लेकर विभिन्न कवियों ने अपनी कल्पना व कला के रंगों से सजाकर नाटकों की रचना की। अतः प्राचीन पुराणों, उपनिषदों, वेदों व काव्यों के कथानकों पर आधारित इन नाटकों में तत्कालीन संस्कृति का प्रभाव भी स्पष्ट है। भारतीय-संस्कृति, वैदिक-संस्कृति ही है, जो नाट्यविधा के रूप में जनमानस को अत्यधिक प्रभावित करती है। भास, कालिदास व भवभूति के नाटकों में भी वैदिक-संस्कृति का सम्यक् निरूपण हुआ है। वेदों में वर्णाश्रम व्यवस्था, यज्ञ, धार्मिक-कर्मकाण्ड व कर्तव्यों का सुन्दर प्रसंग दृष्टिगोचर होता है जो मानव-समाज को संयमित व संगठित करने के लिए नितान्त आवश्यक हैं। वैदिक संस्कृति के इन्हीं प्रसंगों के अन्तर्गत भास, कालिदास एवं भवभूति के नाटकों का अवलोकन करने पर हमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा वर्णेतर जातियों की समाज में स्थिति व उनके कर्मों का बोध होता है यथा वेदों के अनुसार ब्राह्मण का धर्म-अध्ययन व अध्यापन, क्षत्रियों का कर्म प्रजारक्षण, वैश्यों के लिए व्यापार तथा शूद्रों की उत्पत्ति ब्राह्मण के चरणों से होने के कारण ही इनके लिए उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा सुश्रुषा निहित किया गया है।

भास, कालिदास व भवभूति के नाटकों में वैदिक-संस्कृति में वर्णित प्रत्येक वर्ण के कर्तव्यों के दर्शन होते हैं। मानव की चतुर्वस्थाएं व चारों आश्रमों के अन्तर्गत उनका धर्म क्या होना चाहिए, इन सबका विस्तृत विवेचन इन नाटकों में परिलक्षित होता है।

वेदों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गई है तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासाश्रम, प्रत्येक आश्रम के लिए 25 वर्ष निर्धारित किये गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उपुर्यक्त तीनों कवियों के नाटकों में चारों आश्रमों को विभिन्न चरित्रों के माध्यम से सुन्दर रूप में रखा गया है।

वैदिक युग यज्ञों का युग था। वेदों में यज्ञों का विशेष महत्व है। मनु ने भी यज्ञ धर्म से वर्षा ऋतु का होना प्रदर्शित किया है, जिससे प्रजा की रक्षा हेतु अन्न उत्पन्न होता है। भास, कालिदास व भवभूति के नाटकों में मनुष्य के लिए करने वाले नित्य व नैमित्तिक यज्ञों का निरूपण किया गया है।

मानव जीवन में धर्म का विशेष महत्व है। धार्मिक-कर्मकाण्डों के अंतर्गत तप, दान, पुरश्चरण, व्रत, प्रायश्चित्त आदि को करने की विधियों एवं इनसे होने वाले परिणामों का वर्णन मिलता है। वेद समाज को प्रेरणा देते हैं अत: इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर बनाये गये नाटकों में भी वेदों के अन्तर्गत वर्णित सामाजिक व पारिवारिक कर्तव्यों का समावेश है। मानव को समाज में सामञ्जस्य बनाने व परिवार को संगठित रखने हेतु आवश्यक है, उसे कर्तव्यों से अवगत होना। वेदों में पति, पत्नी, पुत्र, माता, पिता व गुरु के कर्तव्यों को वर्णित किया गया है। भास, कालिदास व भवभूति के नाटकों के उत्तम पात्र राम, लक्ष्मण भरतादि रामायण से व महाभारत से भी उत्तम चरित्रों का चयन किया गया है। जिनका अनुकरण कर मानव आदर्श व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण करता है।

उपदेश मनुष्य के लिए वह अमूल्य निधि हैं, जो उसके निर्माण में सहायक हैं। गुरु, माता-पिता व मित्र मनुष्य के जीवन रूपी रथ के वे सारथि हैं, जो जन्म से मृत्यु तक की गाड़ी को उचित मार्ग पर ले जाते हैं तथा समय-समय पर अपने उपदेशों से मानव का पथ आलोकित करते हैं। वेदों में गुरु, माता व पिता परम पूजनीय तथा उच्च-सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किये गये हैं एवं इनकी वाणी देववाणी के सदृश मनुष्य को उसके कर्तव्याकर्तव्य का बोध कराती है। भास, कालिदास व भवभूति के पात्रों के माध्यम से उपदिष्ट होकर मानव अपना मार्ग प्रशस्त करता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक-संस्कृति में मानव जीवन की सच्ची उन्नति निहित है। संस्कृत साहित्य में भास, कालिदास व भवभूति आदि कवि सर्वमान्य रहे हैं। इन कवियों ने अपने नाटकों में स्थान-स्थान पर वैदिक-संस्कृति को मानव-जीवन से संयुक्त किया है। वेद-शास्त्रादि ग्रन्थों में वर्णित संस्कृति उक्त कवियों की नाट्यकृतियों में यथा-स्थान प्रतिबिम्बित हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र० सं०	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
1.	अविमारक	भास	त्रिवेन्द्रम गवर्नमेण्ट संस्कृत प्रकाशन, 1912 ई०
2.	अभिषेकनाटक	भास	त्रिवेन्द्रम गवर्नमेण्ट संस्कृत प्रकाशन, 1913 ई०
3.	अभिज्ञान-शकुन्तलम्	कालिदास	सम्पा० पं० कान्तानाथ शास्त्री 1960 ई०
4.	अथर्ववेद-संहिता		दयानन्द संस्थान नयी दिल्ली संवत् 2031
5.	अभिनव भारती		
6.	आपतम्ब-धर्मसूत्र		सं० चिन्नास्वामी रामानाथ शास्त्री, 1989
7.	आरिष्टोटिल थ्योरी आफ पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट	अरस्तु	
8.	उरुभङ्गम्	भास	त्रिवेन्द्रम गवर्नमेण्ट संस्कृत प्रकाशन, 1921 ई०
9.	उत्तररामचरितम्	भवभूति	वाराणसी चौ० संस्कृत सीरिज 1962 ई०
10.	ऋग्वेद-संहिता		पूना वैदिक संशोधन मण्डल 1963 श०सं०
11.	कर्णभार	भास	त्रिवेन्द्रम गवर्नमेण्ट संस्कृत प्रकाशन, 1921 ई०
12.	काव्य-प्रदीप	गोविन्द ठाकुर	सम्पा० रामशास्त्री भगवताचार्य, 1889 ई०
13.	कामसूत्र	बोधायन व वात्स्यायन	
14.	गोभिल-स्मृति		क्या० उदयनारायण सिंह मुजफरपुरशास्त्र-प्रकाशभवन 1934 ई०
15.	ग्रिफिथ	कोरिया	
16.	चारुदत्त	भास	त्रिवेन्द्रम गवर्नमेण्ट संस्कृत प्रकाशन, 1922 ई०
17.	चित्रसूत्र		टी० अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ पणशीकर काव्यमाला 38, 1901 ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18. छान्दोग्य उपनिषद आनन्दगिरीकृत टीका गीता प्रेस गोरखपुर 1873 ई०
19. दूतवाक्यम् भास चौ० विद्याभवन वाराणसी 1960 ई०
20. दूतघटोत्कचम् भास चौ० विद्याभवन वाराणसी 1960 ई०
21. दशरुपक धनन्जय चौखम्बा प्रकाशन 1962 ई०
22. नारदस्मृति
23. नाट्यशास्त्र भरतमुनि पाण्डुरंग पर काव्यमाला 42, 1894 ई०
24. पंचरात्र भास चौ० विद्याभवन वाराणसी 1960 ई०
25. प्रतिमानाटकम् भास चौ० संस्कृत सीरिज 1958 ई०
26. प्रतिज्ञायौगन्धरायण भास चौ० विद्याभवन वाराणसी 1960 ई०
27. बोधायन धर्मसूत्र बोधायन चौ० विद्याभवन वाराणसी 1972 ई०
28. बालचरित भास चौ० विद्याभवन वाराणसी 1962 ई०
29. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण पूना आनन्दाश्रम मुद्रणालय, 1895 ई०
30. भगवद्गीता वेदव्यास गीता प्रेस गोरखपुर, 1873 ई०
31. मध्यमव्यायोग भास त्रिवेन्द्रम गवर्नमेण्ट संस्कृत प्रकाशन, 1921 ई०
32. मालविकाग्निमित्रम् कालिदास मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
33. मालती-माधव भवभूति चौ० संस्कृत सीरिज, बनारस
34. महावीर चरित भवभूति चौ० विद्याभवन वाराणसी 1960 ई०
35. मनुस्मृति मनु संस्कृति संस्थान बरेली, 1970 ई०
36. मुण्डकोपनिषद् गीताप्रेस गोरखपुर 1993 सं०
37. महाभारत वेदव्यास दिल्ली महाभारत प्रकाशक मण्डल, सं० 1991 वि०
38. यजुर्वेद संहिता दयानन्द संस्थान 1956 सं०
39. याज्ञवल्क्य-स्मृति टीका विज्ञानेश्वर नारायण शास्त्री चौ० संस्कृत सीरिज 1930 ई०
40. व्यास-स्मृति चौ० संस्कृत सीरिज 1930 ई०
41. विक्रमोर्वशीयम् कालिदास मोतीलाल बनारसीदास पटना, 1961 ई०
42. भाव प्रकाश शारदातनय भावना प्रकाशनम् 1978 ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

43. शतपथ ब्राह्मण — अजमेर वैदिक यन्त्रालय 1959 सं॰

44. सोसायटी — मैकाइवर व पेज

45. संस्कृत-साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय

46. साहित्य-दर्पण — विश्वनाथ दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1977 ई॰

47. सामवेद-संहिता — आर्य कन्या गुरुकुल नरेला दिल्ली, वि॰सं॰2030

48. सुश्रुत-ग्रन्थ — धन्वन्तरिकृत आयुर्वेद तत्त्व संदीपिका 1959 ई॰

49. स्वप्नवासवदत्तम् — भास चौ॰ संस्कृत सीरिज 1956 ई॰

50. हिन्दू धर्मकोश — सं॰ राजवली पाण्डेय उ॰ प्र॰ हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1978 ई॰

♣♣♣

137826

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Access on		22-3-05
Class on		2-4-05
Cat on		14.5.05
Tag etc.		11
Filing		14.5.05
E.A.R		14.5.05
		11

ADD Works in Catalogue Cards
By..............

Recommended By.......... Gyan Prakash

Entered in Database

Signature with Date
14.5.05

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बिका पुस्तक सदन

शङ्कर आश्रम, ज्वालापुर

हरिद्वार, (उत्तराञ्चल)

दूरभाष : ०१३३४-२५४७८९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar